ॐ

श्री ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला का

एकादशम पुष्प

स्व० कविवर प० बनारसीदास रचित

छन्दोबद्ध—

समयसार—नाटक।

(हिन्दीभाषा वचनिका सहित)

टीकाकार—

स्व० प० रूपचंद जी पांडे

प्रकाशक—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला

भिण्ड—ग्वालियर

प्रथम संस्करण ११००

आश्विन वीर सं० २४७६

वि० सं० २००७।

मूल्य पांच रु० ५)


मुद्रक
अजितकुमार जैन
शास्त्री
अकलंक प्रेस,
पान मण्डी
सदर बाजार
देहली

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥
भूयात् प्रस्तावना रम्या शुद्ध-बुद्ध-स्वभावजा ।
चिदानन्दमयी मूर्त्ति स्तस्या गुणप्रकाशिका ॥२॥

यह नाटक समयसार भारतीय हिन्दी भाषा पद्यमय सुन्दर शब्दावली और निजानन्द रस से पूरित अर्थ सन्दोह (अर्थावली अभिधेयावली) समन्वित है। यद्यपि वर्त्तमान में इस अध्यात्मरस के वेत्ता चिद् विलास में रमण करने वाले बहुत कम होंगे तथापि अपनी वस्तु को कौन नहीं चाहता ? इस को सुनकर सुप्त प्राणी भी सजग हो जाते हैं। यह अपूर्व आनन्द की चीज है कभी सुनी नहीं, देखी नहीं, अनुभवी नहीं ऐसा चित् चमत्कार ज्योति की कथा जिस समय प्राणियों के कर्ण गोचर होती है उस समय उन्हें अवश्य सचेत करती है और वे सुख शान्तिमय भावना से स्वच्छ हो जाते हैं। सुन्दर भक्ति से सुनाने वाले होने चाहिये।

यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषाटीकायें कई हो चुकी हैं एक तो नाना साहब ने की है, एक पं० बुद्धलाल जी श्रावक ने छापी थी परन्तु ये विवरण हो चुकीं मिलती नहीं, अलभ्य हैं। तीसरे वे टीकायें आधुनिक समय की हैं यह टीका जो छपी है वह प्राचीन विद्वान श्रीमान् रूपचन्द जी पांडे की है, जिन्होंने पंच

मङ्गल पाठ बनाया है जो कि सारे जैन समाज में प्रचलित है अर्धशुक्रन दिखाकर शब्दशुक्रन व अभिधेय को निरूप किया है व्यवहार और निश्चयनयका विषय स्पष्ट रीति से दिखाया है।

यद्यपि श्रीमान् पं० रूपचन्द जी पाडे पं० बनारसीदास जी के गुरु थे इन्होंने श्री गोम्मटसार आदि का अध्ययन कराकर निश्चयनय का एकान्त हटाकर स्याद्वाद पथपर लाये थे। तथापि आत्मा के विकाश में गुरु शिष्य का कुछ विचार नहीं ज्ञान की कोई छटा ऐसी होती है कि एक बालक भी अनूठी अपूर्व एक ऐसी बात कह देता है जो बड़े २ शास्त्र पाठी विद्वानों से नहीं मिलती सो आत्मा अनन्त ज्ञान का धनी है। गुरु शिष्यपना निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध है। पांडे जी ने कवि के अभिप्राय को स्याद्वाद मार्ग से विशद किया। जिससे लोग एकान्त प्र०ग्र कर डूबें नहीं स्याद्वादनयस का कि जिनवाणी, व्यवहार नय और निश्चय नय इन दोनों न भीत में जो विरोध मालूम होने लगता है उस विरोध को मेटक वस्तु का असली स्वरूप का प्रकट करती है। आत्मा जब अप आत्म स्वरूप का चिन्तवन करता है और अन्तरदृष्टि स्वता है ज्ञान से अनुभव करता है, कर्मोपाधि की ग को गौण करता है तब अपने को सिद्ध समान पाता शुद्ध देखता है आत्मा की जब तादात्म्य सम्बन्ध से देखा प तब कर्मजनित आत्मा के साथ जितने औपाधिक भाव व सब संयोग सम्बन्ध से भय विकारीभाव विभाव-भाव उनके साथ आत्मा का तद्रात्मपना कहा है ? तद्रात्मपना ज के साथ होता है जो तीनों काल सदा सत्स्वरूप पाये ऐ सो नहीं है विभावभाव कादाचित्क है, परनिमित्त जनित

वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। स्वपरोपादानापोहन-व्यवस्थामात्र हि खलु वस्तुनो वस्तुत्वम्।

यानी वस्तु का वस्तुपना यही है जो स्व-निजका उपादान-ग्रहण और परका अपोहन-त्याग जिसमें होय। तब वस्तु अपनी चीज छोड़ती नहीं और परकी ग्रहण नहीं करती तो शुद्ध निश्चय नय से त्रिकालवर्ती शुद्ध, अशुद्ध पर्यायों का समुदाय द्रव्य में रहो तो भी तादात्म्य सम्बन्धसे-स्वरूप दृष्टि से उन पर्यायों में भी चिदाकार के आकार परिणमन के साथ ही तादात्म्य रहता है, न कि नरकारकादिपर्यायों के साथ। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदिया जीव के जहां एक श्वास में १८ बार जन्म मरण होता है वहां इतना जघन्य ज्ञान रह गया है कि उसमें कम ज्ञान फिर नहीं होता उस पर्यायज्ञान को आचार्य श्रीकुन्दकुन्द स्वामी ने नियमसार में "परम पारिणामिक भाव टङ्कोत्कीर्ण कारण समयसार स्वभाव ज्ञान, बिना घड़ा हुआ सुघटवत्" और वही ज्ञान बढ़ता २ केवलज्ञान होकर कार्य समयसार होता है ऐसा दिखाया है। वस्तु की स्वरूपदृष्टिसे तो शुद्धनिश्चयनय से आत्मा सिद्धसमान शुद्ध है ही।

यों ही श्री आलाप पद्धति में श्रीदेवसेनाचार्य जी ने कहा है "कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्वे जीवाः सिद्धसमा"

यानी—कर्म की उपाधि की अपेक्षा को न करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय तो सब ही जीव सिद्धसमान शुद्ध ही है तो भी इसका ऐसा एकान्त न कर लेना 'जो हम तो सदा काल शुद्ध ही हैं। अतः हम कुछ करना ही नहीं चाहिए। यह तो वेदान्त की तरह, फाइफानूस की तरह ऊपर शरीर का

खोली चढ़ी है हमारे अन्दर कुछ विकार ही नहीं" तो फिर धर्मोपदेश मोक्ष के लिये जप तप संयम धर्म व्यवहार सब झूठा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यानी एक ब्रह्म ही सत्य है और सब झूठा व्यवहार है।

यद्यपि तादात्म्य से कर्मोपाधि आत्मा की नहीं तथापि संयोग सम्बन्ध से अनादिकालीन पुद्गल सम्बन्ध से आत्मा के गुणों में विकार हो रहा है। उसी विकार में ही प्राणी दुःखी है और उसी विकार को दूर करना ही मोक्ष है और उस विकार दूर करने का उपदेश देना ही धर्मोपदेश विधि है। यह जो शरीर का सम्बन्ध अनादि काल से हो ही रहा है माना झूठा फालतू नहीं है। इन कर्मों का सम्बन्ध आत्मा के असंख्यात प्रदेशों को आच्छादित कर चारों तरफ से वेढ़कर घेरकर के आत्मा के प्रदेशों पर अवस्थित है जिससे कि आत्मा के गुणों में विकार संयोगजनित है। यह संयोग सम्बन्ध ऐसा नहीं है जैसा इस जीव के साथ काल, आकाश, धर्म, अधर्मादिक का है, इस संयोग सम्बन्ध से संसार में बन्ध्य बन्धक भाव होकर आत्मा दुःखी होता है। उस दुःख को दूर करने का उपाय ही यह ग्रन्थ है। जैसे जल स्वच्छ सफेद है पर मिट्टी मिश्रित होने से जल में गदलापन हो गया है वह एकदम अलीक झूठा नहीं है, वह मिट्टी का संयोग दूर होने से ही स्वच्छ शुद्ध होगा। उसी प्रकार आत्मा के गुणों में मलिनता कर्म जनित है, जब कर्मों को दूर कर देता है तब ही स्वच्छ शुद्ध हो सकता है, यह मलिनपना जल में झूठा नहीं है यद्यपि जल का असलीयत से स्वरूप देखें तो जल में मलिनता का तादात्म्य नहीं, मिट्टी जनित मलिनता है, इसी प्रकार आत्मा स्वभावतः शुद्ध ही है, पर शरीर-संयोग जनित कर्म

की उपाधि से मलिन है, दुखी है हाँ। इसी दुःख को मेटने का धर्मोपदेश तथा धर्माचरण व नियमादि हैं। तब नय विभाग की अपेक्षा दृष्टि से विरोध दूर हो जाता है। यह नय विभाग ही स्याद्वाद है, इसी बात को दिखाते हुए श्री अमृतचन्द्राचार्य जी पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखते हैं—

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥

जैसे गोपी—ग्वालिन मथानी जो रई है उसको दही में डालकर एक हाथ से मथानी को खींचती है और दूसरे हाथ से ढीली करती है तो थोड़े से ही परिश्रम से मक्खन को निकाल लेती है। इसी प्रकार जैनी नीति—स्याद्वाद अनेकान्तनिष्ठा से वस्तु स्वरूप को प्रकट करता है, आत्मा थोड़े ही परिश्रमसे अपने निज स्वरूप को तथा पर पदार्थों की इयत्ता को जान लेता है, अनुभव करलेता है। ऐसी स्याद्वादनीति जैन न्याय है। वह जयको प्राप्त होता है, यह स्याद्वाद ही व्यवहार और निश्चय नय है, विरोध को दूर करता है।

पदार्थ अनन्तधर्मा है एक धर्म कहते और धर्मों का अभाव जाना जाय इससे 'स्यात् कथञ्चित् ऐसा है और स्यात् कथञ्चित् ऐसा भी है' जैसे एक मनुष्य मामा भानजे, पिता पुत्र, भाइ जमाइ स्वसुर अनेक धर्म लिये है। पर एक ही धर्म मानते अन्य धर्मों का लोप हो जावे सो होता नहीं। इसलिये अपेक्षा से सब धर्म सिद्ध होते हैं। जैसे मामा की अपेक्षा भानजा और भानजे की अपेक्षा मामा, पुत्र की अपेक्षा पिता और पिता की अपेक्षा पुत्र है। एक को गौण, एक को मुख्य कर सब धर्म सिद्ध होते हैं, और वस्तुका स्वरूप समझ में आ जाता है, और यदि

अपेक्षा (दृष्टि) छोड़ देवे, एक तरफ देखे तो वस्तु की स्थिति को कदापि नहीं समझ सकते।

इसी तरह इस ग्रंथ में श्री कविवर बनारसीदास जी की कविता के अभिप्राय को निश्चय और व्यवहार की दृष्टि को पृथक् विशद करते हुये श्रीमान् पं० रूपचन्दजी पांडे विद्वद्वरने विशद करके टीका में दिखाया है। आप प्राचीन प्रामाणिक विद्वान् थे, इसी से हमने जनता के लिये विशेष उपयोगी समझ इस टीका सहित मुद्रित कराकर अपूर्व लाभ कराने के अभिप्रायसे आप पाठक लोगों के समक्ष इस ग्रन्थ को रक्खा है। उपयोगी समझ लाभ उठायेंगे और कोई ख्याति लाभ पूजादि लौकिक स्वार्थ की आकांक्षासे नहीं, परमार्थ लाभका ही प्रयोजन है। ऐसा समझ विद्वद्गण तथा हमारे सर्वसाधारण भाई पढ़कर हमारे प्रयास को सफल करेंगे। इत्यलं पल्लवितेन।

झम्मनलाल, तर्कतीर्थ मिपड

निम्न लिखित सज्जनों ने इस ग्रन्थ माला को जो उदारता पूर्वक, द्रव्य-दान देकर अपना धर्म प्रेम दिखाया है, उन महाशयों को शतशः धन्यवाद है। अन्य भाई भी इनका अनुकरण करके अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में द्रव्य दान देकर अपने धनको सफल करेंगे।

१२००) श्रीमान् बा० काशीरामजी जैन, एम० ए० एल एल० बी०
सुपुत्र सेठ जगन्नाथजी जैन, फीरोजपुर
(पूर्वी पंजाब) हा० मु० कलकत्ता।

२०१) मनीपुर-पंचान (आसाम)

२००) पलास बाड़ी पंचान (आसाम)

१०८) गोहाटी, बड़ीम, डीमापुर, मलबाड़ा पंचान (आसाम)

११७) डिबरूगढ़ पंचान (आसाम)

१०१) श्रीमान सेठ गंभारमल जी पाड्या (कलकत्ता)

१०१) श्रीमान सेठ मदनचन्द नेमिचन्द जी पाड्या (कलकत्ता)

१०१) श्रीमान सेठ महेन्द्रकुमार जी सेठी (बंबई)

१०१) श्रीमान बा० निर्मलकुमार जी जैन, (कलकत्ता)

१००) श्रीमान बा० ताराचन्द जी जैन सरावगी कलकत्ता

३३५१)

अनुभवाष्टक

—:०:—

(दोहा-छन्द)

१

अनुभव रस निज पीजिये,
अनुभव का जो सार।
अनुभव ज्ञान सम्हारिये,
अनुभव का भंडार ॥

२

अनुभव शुद्ध सुहावना,
अनुभव स्वाद अपार।
अनुभव भव थिति को हरे,
अनुभव निज आधार ॥

३

अनुभव का अनुभव नहीं,
अनुभव आदि न अन्त।
अनुभव ज्ञान सुधार सो,
अनुभव सरस अर्हत ॥

४

अनुभव आत्म स्वभाव है,
अनुभव शुद्ध प्रभाव।
अनुभव सुक्ख अनन्त है,
अनुभव रस ही साध्य ॥

५

अनुभव निज रस संचरे
अनुभव शिव करतार।
अनुभव सम नहिं और है,
अनुभव ज्ञान अपार ॥

६

अनुभव का नहिं मरण है,
अनुभव में नहिं व्याध।
अनुभव सदा अमोल है,
अनुभव सहजो साध्य ॥

७

अनुभव में वैराग्यता,
अनुभव पास हो पास।
अनुभव पञ्चम गति गहै,
अनुभव महिमा खास ॥

८

अनुभव मय निज पेखना,
अनुभव निज विलसन्त।
अनुभव नाम अनाम है
अनुभव आनन्द-मगन ॥

विषय-सूची।



पृष्ठांक

बंध द्वार

६ मोक्षद्वार

ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति



श्रीमान बा० काशीनाथ जी जैन
M.A LL.B
सुपुत्र श्रीमान सेठ जगन्नाथ जी जैन
फीरोजपुर [वर्तमान] कलकत्ता।

ॐ

नमः समयसाराय ।

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-मालाका एकादश पुष्प ।

स्व० शिरोमणि कविवर प० बनारसीदास विरचित

छन्दोबद्ध

समयसार नाटक

स्व० प० रूपचन्दजी पाँडे कृत

हिन्दी भाषाटीका सहित



मङ्गलाचरण

दोधक वृत्त ।

श्रीजिन-वचन-समुद्रको, कौलग होय बखान ।
"रूपचन्द" तोहू लिखै, अपनो मति अनुमान

अथ श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति ॥ झझरा को चाल ॥
सवैया ३१ सा

करम भरम जग तिमिर हरन खग,
उरग लखन पग शिव-मग दरसी।
निरखत नयन भविक जल बरषत,
हरषत अमित भविक जन सरसी ॥
मदन कदन जित परम धरम हित,
सुमिरत भगत भगत सब डर-सी।
सजल जलद तनु मुकट सपत फनु,
कमठ दलन जिन नमत "बनरसी"॥

टीका--अब ग्रथके आदि मगलाचरणरूप श्रीपार्श्वनाथ-स्वामीजीकी स्तुति आगराको वासी श्रीमालवसो बिहोलिया गोत्री बनारसीदास करत है। श्रीपार्श्वनाथ स्वामी कैसे हैं? करम भरम कहते करम सो आठों ही करम, भरम सो मिथ्यात, सोई जगतमै तिमिर कहता अंधकार तार्के हरनकौं खग सूर्य है। अरु जाके पगमै उरग लखन कहतें सर्पको लाछन है अर मोक्ष मारगके दिखा-

वन हार हैं। अरु जाको नयन कर निरखैं, भनिक कहता कल्यानरूपी जल है सो वरषै तातैं अमित कहता परिमान विना, भविक जन सरसी कहता भव्यलोक सरोवर हैं सो हरषत हैं, जिन कहत जिहि कारण, मदन कदन कहता कदर्पके भयकारक हैं अरु जाको उत्कृष्ट सहज सुखरूपो धर्मके हेरा भगत लोग हैं सो सुमिरत कहतैं सुमिरन करैं हैं तातैं सब डरन्सो कहतैं सातों भयरूपी मोत हैं सो भगत कहतें भाग जाई हैं। सजल कहतैं जल सहित, जलद कहतैं मेघ ताकै समान तनु कहता जाको सरोर है नील वर्ण, जाके मुकुट विषै नाग फण हैं ऐसे कमठ असुरके दलन कहता मान भजन हार, जिन कहता श्रीपार्श्वनाथ तोर्थंकर ताको बनारसोदास नमस्कार करइ ।

सर्व लघु एक स्वर चित्र। छप्पय छंद ॥

पुन श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति ॥

सकल कर्म खल दलन,
कमठसठ पवन कनकनग।
धवल परम पद रमन,

जगतजन अमल

परमत जलधर पवन,
सजलघन सम तन शमकर।
पर अघ रजहर जलद,
सकलजन नत भवभयहर॥
यमदलन नरकपद छय करन,
अगमअतट भव जल तरन।
वर सबल मदन वन हर दहन,
जय जय परम अभय करन॥२॥

टीका—अब सर्व लघु अक्षराकरि एक अकार लिये सर्व अक्षरतैं चित्रालंकार लिये छप्पयछंद कहै हैं और श्रीपार्श्वनाथजीको स्तुति करै हैं, ये मनमुख स्तुति।

समस्त जो करम खल कहतैं कर्मरूप वैरी ताकूं दलन हार हौ। सठ कहता ढीठों जो कमठ असुर ताहूतैं उपाए जो पवन ताकै आगैं अडिग, कनकनग कहतैं मेर पर्वत समान हौ, धवल परम पद कहतैं निर्मल जो सिद्ध स्थान ताकै विषै रमनहार हौ, जगत जन कहतैं जगतवासी लोक सोई, अमल कमल

कहता उज्जल-कमल ताके निकासनेकों राग कहता सूर्य। एकात नय वादोरूप जो पराये मत सोई जलधर कहतें मेघ ताकू मेटन पवन समान है। सजलघन कहता सजलमेघ घटा ताके सम कहता समान तनु कहता सरीर जाको। शमकर कहता उपशमके करनहार हो, पर कहता शत्रूरूप जो, अघ कहता पाप सोई रज ता हरनको जलद कहता मेघ समान हैं। नकुल लोगनि नत कहता नए हैं एतें त्रिभुवन पूज्य हो, भवभयके हरनहार हो। यम कहता मृत्यु ताहि दलनहार हो। भव्यलोगनकै नरकपदके क्षय करनहार हो। अगम कहता अथाह अतट कहता अपार जैसोजु भवजल कहता—संसार समुद्र ताहि तरनहार हो। वर कहता सर्वदोषमै प्रधान अरु सबल कहता बलवान ऐसो जो मदनवन कहता कर्दपवन ताकौ दाह करनको, हर-दहन कहता रुद्रके नेत्रकी अगनि, ऐसे भगवान तुम जयवंत होऊ। परम अभयके करनहार हो। एतें भयके भजन हार हो ॥२॥ पुन, पार्श्वनाथजीकी स्तुति —

सवैया ३१ सा

जिन्हिके वचन उर धारत जुगल नाग,
भये धरनिंद पद्मावती पलकमें।

की नाम महिमा सौं कुधातु कनक करै
पारस पाषाण नामी भयो है खलकमैं॥
न्हकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम,
आपनौ स्वरूप लख्यौ भानसौ भलकमैं॥
ई प्रभु पारस महारसके दाता अब,
दीजे मोहि साता दृग लीलाकी ललकमैं॥३॥

अर्थ—कुमार अवस्था माहि "ओं ऊ मि आ उ सा नम"
ते जिह्विक वचन हिये मैं धारत ही जुगल नाग पहुंतैं
गनिमें जलत नाग नागिनी मो एक पलकमैं धरनिंद
द्मावती भए। ये दिगम्बर सम्प्रदायतैं है। श्वेताम्बर
म्प्रदायमें एक नाग है। अरु पारस पाषान खलकमें नामीकहै।
ो कुधातु कहत लोह ताको कनकरूप करै है सो पा
ापानमैं ऐसी महिमा कहांते उपनी। याकौ ए उत्तर।
ारस ऐसो श्रीपार्श्वनाथजीको नाम याहूनें पायौ। ता नाम
महिमामौ ऐसो भयौ। अरु जाकी जनमपुरी बनारसी सोऊ
नाम हमहौ पायौ। ता नामके प्रभावत हम हौ अपनौ
आत्मस्वरूप लख्यौ। कैसौ एक लख्यौ सौ दृष्टान्त करि कहै
ै लख कहता परमात भान सौ कहता सूर्य सो, सोई प्रभु

पारसनाथजी तुम महारसके दाता कहत महाशांतिरसके दातार हौ। अब मोहि दयालीलासो ललकमैं सो, आखिमृद उवारिसो एत कालको सतावीमैं मोहि माता दीजे ॥३॥

अथ सिद्धकी स्तुति। छंद अडिल्ल

अविनासी अविकार परमरस धाम है।
समाधानसरवंग सहज अभिराम है॥
सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है।
जगत-सिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत है॥४॥

अर्थ—अब अडिल्ल छंद करके श्री सिद्धभगवानकी स्तुति करत हैं। जाको विनाश नहीं, जामें विकार नहीं ऐसो जो परमरस कहतें-कोऊ केवलीगम्य महज सांतिरस, ताको धाम कहत घर है, तातें सरव जगविषे सहजकी जो समाधि अनन्त सुखपनी, वाकरके अभिराम कहत बहुत मनोग है। सर्व दोषतें रहित तातें शुद्ध, सर्वज्ञपनो पायो तातें बुद्ध, सर्वके ईस्वर तातें अविरुद्ध ऐसो अवस्थासो अनादि अनंत, चौदहराजू लोकके उपरि विराजमान तातें जगत सिरोमनि कहिये। ऐसे सिद्ध भगवान सदा सर्वदा जयवंत होउ ॥४॥

अथ साधुकी स्तुति । सवैया ३१ सा

ग्यानको उजागर सहज सुखसागर,
सुगुन रतनागर विरागरस भर्यो है।
सरनकी रीति हरे मरनको भै न करे,
करनसों पीठ दे चरन अनुसर्यो है।
धरमको मंडन भरमको विहंडन व्है,
परम नरम व्हैकें करमसों लर्यो है।
ऐसो मुनिराज भुअलोकमें विराजमान,
निरखि "बनारसी" नमस्कार कर्यो है ॥५॥

अर्थ—मुनिराज ऐसे हैं—ग्यानको उजागर कहतें उद्योत करनहार, आत्मद्रव्यको जो सहज सुख ताको सागर कहतें-समुद्र है और सुगुन कहतें ज्ञान, दर्शन, चारित्र ताकी खानि। पंचेंद्री विषय परि जो वैराग्यरस ताकरि भरयो है। परीसह उपजै गृहस्थकोसी नाइ सरनकी रीति न राखै। आत्माको शास्वत द्रव्य जानकर मरनको भय छाडै। करन कहतें इन्द्रिय ताको पीठि दैनी सो ताके विषयसो विमुख है, तो यो करिकें चरन कहता चारित्र सोई जिन अनुसर्यो है—

आदर्यो है। जाकी आश्रयलिये धर्म पदार्थ विराजै तातैं धरम। भरम सो मिथ्यामति ताकौ विशेष खण्डनहार है। परम नर्म कहे कै कहतां परम दयावन्त व्है कैं कर्म सो युद्ध करै है। दयावन्तको युद्ध नाहीं बनै है ये विरोधालकार। ऐसी विशेषता लिये जो मुनिराज कहतैं ऋषीश्वर भुवलोकमें ४५ लाख मनुष्य क्षेत्रविषयहो विराजमान हैं ताकौ हृदय मैं नैनतैं निहारके बनारसोदासनमस्कार करै है।५।

अथ सम्यक् दृष्टिकी स्तुति। सवैया ३१ सा।

अथ पच अणुव्रत लिये जो समकिती ताकी स्तुति करै है---

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट,
सीतलचित्त भयो जिम चन्दन।
केलि करै शिव मारगमें,
जगमाहि जिनेश्वरके लघुनन्दन॥
सत्य स्वरूप सदा जिन्हके,
प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन॥
संत दशा तिनकी पहिचानि,
करै कर जोरि बनारसी वंदन॥६॥

टीका—मन्द बुद्धि है सो जीव सरीरको एक ही जाने है पै भेद नहीं जानता। अरु जिनि समकित पायो है ताके हिएमें जड़ चेतनको भिन्न भिन्न ज्ञान भयो सो भेदज्ञान जाग्यो याते चित्त चदन ज्यों सीतल भयो, सिव मारगमें सो मुक्तिमारगमें केलि करे सो खेल कर रहे हैं। याते जगतविषै श्रीजिनेस्वरके लघुनदन हैं छोटे पुत्र हैं, साधु हैं, सो सर्वज्ञपुत्र कहावे सो बड़े हैं। निश्चै तो आतमा सदा सत्यस्वरूपम ही है पै मिथ्यातमें मलिन हुई गयो है सो फिरि सत्यस्वरूप जिनके अवदात कहतां निर्मल प्रगट्यो अरु मिथ्यातको निकदन भयो, चार अनतानुबधी जड टूटी, ऐसी तिनकी सत दसा कहता शुद्ध दसा पहिचानिके बनारसीदास कर जोरिके बदना करे है ॥६॥

पुन सम्यग्दृष्टि वर्णन ॥ सवैया ३१सा

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त,—
साचे साचे वैन कहे साचे जैनमती है
काहूके विरुद्धी नाही परजाय बुद्धी नाही,
आतम गवेषी न गृहस्थ है न यती है

रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा,
अंतरकी लक्षसौं अजाचे लक्षपती हैं ॥
दास भगवतके उदास रहै जगत सौं,
सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं ॥

टीका—या ग्रथमैं समकित ही की दृढ़ता है। तातैं और पूर्ण समकित ही की स्तुति करै है।

स्वारथके साचें कहतैं-आत्मपदार्थविषै साची प्रतीति है। परमार्थ कहतैं-मोक्ष पदार्थ ता विषै जिनकी साची प्रतीति है। चित्त साचे सो निर्मल चित्त है। साचे वचनके कहनहार हैं। साचौ जिनमत लिये रहत है। पैं मत कल्पना नाही करत हैं। सातौं नयकी सुरूप जानै तातैं काहू दर्शनके विरोधी है नाहीं। जैसे बोद्धके परजाय बुद्धि है, पै द्रव्य बुद्धि नाही तातैं जीवकौं छिन भगुर मानै हैं। ए समकिती पर्यायबुद्धि नाही, आत्म द्रव्य ही की गवेषणा है तातैं याकौ परवस्तुसौं मोह नाही, यातैं ए गृहस्थ हू नाहो। महाव्रत न लिये तातैं यति हू नाहीं। अपने घटमें शुद्ध आत्मद्रव्यकौं सिद्ध समान हो देखे है। तातैं घटमे ही प्रगट सिद्धि देखे है। अरु ज्ञान दर्शन चा

भूल्यौ अभिमानमैं न पाव धरै धरनीमैं
हिरदैमैं करनी विचारै उतपातकी ॥
फिरै डावाडोलसौ करम के कलोलनिमैं
ह्वै रही अवस्था ज्यू बघूलाकैसे पातकी।
जाकी छाती तातो कारी कुटिल कुवातो भारी,
ऐसौ ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥६॥

टीका—जब जिन समकित न पायौ, मिथ्यातहीमें रहे है ताकौ वरनन करै है —

धर्म कहत वस्तुको स्वभाव ता जानै नहीं, भरमरूप मिथ्यात ताको वखानै अरु ठौर ठौर आप सौ आपनो मत स्थापन सोई पक्षपात कहावै ताका लडाई ठानत कहते ठहरावै। अरु अपने अभिमानमें भूल्यौ धरती धरती पर पाउ धरै नहीं। आपहीको तत्त्ववेत्ता जानै। याकै अधर पाँउ कहे सो उत्प्रेक्षालकार है। अरु हियेमें ऐसी ही करनी विचारै जातै उत्पात उपजै। अरु या भव- समुद्रमैं करम किलोलनि धकायौ सन्तो चारो गतिमें डावाडोल करतौ फिरै। याकी अवस्था कैसी है जैसे बघूलाके पात आकाशमें उड्यो ही फिरै, ठहराव कहीं

न पावै तैसी याकी हू अवस्था है रही है। जाकी छाती राग द्वेषतैं तातो व्है रहो है सो याही तापतैं कारी भाया राखनैकू कुटिल व्है रही, बुरी बातकी चिन्तनहार तातैं कुनातो पापसों भारो तातैं भारी। ऐसी जाकी छाती है सो ब्रह्मघाती कहतैं जीवघातको करनहार मिथ्याती महापातक युक्त है ॥६॥

दोहा

बंदों सिव अवगाहना, अरु बन्दों शिवपंथ।
जसु प्रसाद, भाषा करों, नाटक नाम गिरंथ ॥१०॥

टीका—सिव अवगाहना कहतैं जहां सिद्धकी अवगाह ह्वै रह्यो है ता क्षेत्रको वंदौ। अरु ज्ञान दर्शनचरित्र ए मोक्ष मार्ग है ताकों वंदौ। ए मंगलाचरण करि अब अपनो प्रयोजन कहै हैं। जाके प्रसादतैं समयसार नाटक नाम ग्रंथ प्राकृत संस्कृत है सो भाषारूप करों हों ॥१०॥

अथ कवि वर्णन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध
समान सदा पद मेरौ
मोह महातम आतम अंग,
कियो परसंग महातम घेरौ

माचौ चद्रमा जानि हाथ नीचौ करै तौ वाके हाथ चन्द्रमा कैसे वनि आवै। तैसे मैं अलप बुद्धि हौं अरु इस नाटक ग्रथ कौ आरम्भ कीनों है सो यो मेरौ आरभ सफल नहीं होइगौ तब और गुनी जन मोहि हसेगे। यहु कहेंगे जू या ग्रथकौ एआरम्भ करै है सु वावरौ है ॥१२॥

पुन सवैया ३१ स।

जैसे काहू रतनसों वीध्यौ है रतन कोऊ,
तामैं सूत रेशमकी डोरी पोई गई है।
तैसे बुध टीका करि नाटक सुगम कीन्हौं,
तापरि अलप बुद्धि सूधि परनई है॥
जैसे काहू देशके पुरुप जैसी भाषा कहैं,
तैसी तिनहूके वालिकनि सीखि लई है॥
तैसै ज्यो ग्रथको अरथ कह्यो गुरु,
त्यों हमारी मति कहिवेको सावधान भई है॥

अर्थ—यहु अर्थ करिवेकौ साहस करै है, जैसे कोई हीराकी कनीसौं कोऊ कठिन रतन पहिले ही वींधि राख्यौ है अरु पीछै पटुआ सूत रेशमकी डोरीसौं पोवै है। वा रतनमैं वा

सूत रेशमको डोरा सुगम चली जाइ है तैसे एहू कार्य होइगो। जु अमृतचन्द्र मुनि अरु पांडे रानमछस बुध कहत पण्डित भये तिनि पाटतनि या ग्रन्थको टीका वालबोध करिए नाटक ग्रन्थ सुगम कीन्हौं। तापरि हमारी अलप बुद्धि है तौ हू या ग्रन्थमें खरो परिनमि गई है। अरु या कार्यविषै अपनी समर्थाईको दृष्टान्त दिखावै है जैसें काहू देशको रमइया पुरुष अपने देशकी भाषामैं बोलै अरु वाकी बालक होइ सोऊ वाकै ढिग वाहू भाषा सीखि लेइ है, तैसे यौहू कार्य है। ज्यौं हमारै गुरुने या ग्रन्थको अरथ हमकौं कह्यौ, त्यौंही या ग्रन्थको अरथ कहिवेकी हमारी बुद्धि गानगान होइ है। इतने पीछलौ पश्चात्ताप मेट्यौ, १३॥

सवैया ३१ सा

कबहौं सुमति ह्वै कुमति को विनाश करै,
　　कबहौं विमल ज्योति अन्तर जगति है।
कबहौं दयाल ह्वै चित करति दयाल रूप,
　　कबहौं सुलालसा ह्वै लोचन लगति है।
कबहौं कि आरती ह्वै प्रभु सन्मुख आवै,
　　कबहौं सुभारती ह्वै वाहरि वगति है॥
धरै दशा जैसी तब करै रीति तैसो,

ऐसी हिरदे हमारे भगवतकी भगति है ॥१४॥

अर्थ—अब अपनी समर्थाई कर दिखावे है। हमारे हियेमें भगवतकी भगति रहै है सोई कवहीं सुमति ह्वैके कुमतिको विनाश करै है। कवहीं वाही भगति अन्तरनिषैं निमल ज्योतिरूप ह्वै के जगति है। इतनै सम्यक चेतना सो भगवतकी भगति हो है। अरु वाही भगवतकी भगति हमारे हीयेमें रहे है मो कवहीं दयालरूपे परिनमे है। अरु दयारूपहै कै चित्तकों त्यालरुप करे है। अरु वाही भगवतकी भगत रहै है मो कवहो आपना ईश्वर निहारनाकी लालसा कहवें लोचन लगति है। इतने लग लागनितैं लोचन थिर ह्वै है। अरु वाही भगवतकी भगति कवहीं कि आरतो कहतै अतिरग लिये प्रभुके सन्मुख ह्वै रही है। दूजै अर्थ—आरती प्रभु सन्मुख करिये है। अरु वाही भगवतकी भगति कवहीं कि सुभारतो कहतै भलीभांतीरूप ह्वैके वाहिर पगति है सो शब्द करि रही है। जसी जसी दसा धारै है तब तैसी रीति की करनहार है। सोतो ऐसो हमारै हियेमें एक भगवत ही की भगति है। यातै नाटक ग्रथ रचनारूप कार्यमें एक भगवतकी भगति सोई कारन है। यह तात्पर्य ॥१४॥

अथ नाटक वर्णन। सवैया

मोक्ष चलिवेकौ सौन करमकौ करै वौन,
जाके रस भौन बुध लौन ज्यौं घुलत है।
गुनकौ गरथ निरगुनकौ सुगमपथ,
जाकौ जस कहत सुरेश अकुलात है॥
याहीके जु पच्छी ते उडत ज्ञानगगनमें,
याहीके विपच्छी जगजालमें रुलत है।
हाटकसौ विमल विराटकसौ विसतार,
नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है॥१५॥

अर्थ—अब या ग्रंथकी महिमा बखानै हैं। जैसे भले सौंन (शकुनसौं) कारजकी सिद्धि होइ तैसें यौ ग्रंथ मोख चलनहारकौ कार्यसिद्धिकौ करनहार है। अरु यौ ग्रंथ कर्म कफ-जाल निरारिवेकौं वमनकी ओषध है। अरु जिन—ग्रन्थकौ रस सोई भौन कहतें पानी तामैं बुध कहतें-पंडित लौंन ज्यौं घुलि रहे हैं। गुन कहियै ज्ञानदर्शन चारित्र ताकौ ग्रन्थ है-रचना है। परमतीकी अपेक्षातैं निरगुन कैसा है सो कहे हैं। जाकौ जस अक्षय सुरसपनकौ सुनत कहत सुरेस कहतैं इन्द्र है सोऊ अकुलावि

। इतनें या पन्थको इन्द्रहू अकुलानों है। अरु या ग्रथके सु पधी हैं या ग्रथको पक्ष लियें रहै हैं सो तो ज्ञान आकाशमें उडि रहे है। इतने पक्षी होइ सा अगाश उडे। अर या ग्रन्थके सु विपक्षी हैं पक्ष न राखें ह सो जगत-जालमें रुलें फिरें हैं। कबल टूटयें जालमें हो परें। तो यों नाटक हाटक कहवें मो) सुवर्णमों निमल है। अरु गीता ग्रन्थमें कृष्णजू विराट-रूप दिखायो सो यहाँ ही विस्तार दिखायो। तैसें याको बडो विस्तार है। ऐसा यह नाटक ग्रन्थ सुनत हियेंके फाटक कहवें किवार खुलि जाइ है ॥१५॥

दोहरा

कहों सुद्ध निहचे कथा, कहों सुद्ध विवहार।
सुगति पथ कारण कहों, अनुभोंको अधिकार ॥१६॥

अर्थ—जो शुद्ध निश्चयरूप कथा है सो अब कहौं। अरु शुद्ध व्यवहार है सोऊ कहौं। अरु मुगति पथको कारण अनुभौको अधिकार है सोहू कहौं सो ॥१६॥

अथ अनुभौ वर्णन, दोहरा

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभो याको नाम ॥१७॥

अर्थ—अब अनुभव पदार्थको लक्षण कहै हैं। अज्ञानी वस्तु जानिवेको मनमे विचारै-ध्यावैं। ऐसे खोजत खोजत मनम ठीक ठहराउ पावै, तब साच पायाको रस स्वाद पावै तातैं सुख ऊपजै। याको नाम अनुभव है ॥१७॥

अनुभौ चिन्तामनि रतन, अनुभौ है रस कूप।
अनुभौ मारग मोख को, अनुभौ मोख सरूप ॥१७॥

अर्थ—अनुभौ कहतै जानिवो सोई चिन्तामनि रतन है। सोई अनुभौ रसायन को कुई है सोई अनुभौ मोक्षको मारग है। अरु अनुभौ मोक्षरूप ही है ॥१७॥

अथ सवैया ३१ सा ॥

अनुभौके रसको रसायन कहत जग,
अनुभौ अभ्यास यहु तीरथकी ठौर है।
अनुभौकी जो रसा कहावे सोइ पोरसा सु,
अनुभौ अधोरसा सु ऊधरकी दौर है ॥
अनुभौकी केलि इहे कामधेनु चित्रावेलि,
अनुभौ स्वाद पच अमृतको कौर है।
अनुभौ ‒‒‒ तोरे परमसो प्रीति जोरे,

अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥१८॥

अर्थ—यह अनुभौको महिमा बखानै है ॥ जगत वासी लोक है सु अनुभौके रसकौ रसायन ही कहत हैं। जैसैं रसायन लोहकौं मटि सोवन (सुवर्ण) करै तैसैं अनुभौ ही मिथ्यात कौं मटि समकित करै। जैसैं तीरथकी ठौर पायैतैं अपावनतैं पावन होइयै तैसैं यह अनुभौको अभ्यास अजानको जान करै है। अरु जो अनुभौकी रमा कहत पृथ्वी सोई सोवन पोरमा है। इतने अनुभौकी उत्पत्ती है सो सोवन पुरस ज्यु बढती है। अरु अधोरसा कहियै पाताल लोक सोई अनुभौ रूपमैं है। अरु ऊर्द्धलोकको दौर सोई अनुभौ रूपमे हैं। इतने अपने अनुभौ ही मैं सुरग नरक हैं। अरु अनुभौकी केलि कहियै रामवि है सौ कामधेनुरूप है। अपने ऋद्धिकी बढावन है। अरु या ही अनुभौकी केलि है सौ अक्षयऋद्धि करिये कौं चित्रावेलि है। अरु याही अनुभौ कौ स्वाद आवै है सो पचामृतके कवल है ग्रास है। अरु याही अनुभौ हैं सु करमकौ तौरै हैं। परम कहतैं परमात्मामौं प्रीति जोरै है। इतनैं अनुभौहोतैं पौ(सो)जो परमात्मा पाइयै। तातै सब धर्म धरवं मै अनुभौ समान औ कोऊ धम है नहीं। इतने जानिनै ही तैं मोक्ष है ॥१८॥

अथ षट् द्रव्य वर्णनं

॥ दोहरा ॥ जीव द्रव्य यथा ।

चेतन वत अनन्त गुन, पर्यय सकति अनन्त ।
अलख अखडित सर्वगत, जीव दरव विरतत ॥१६॥

अर्थ —जसे जीव द्रव्य है तैसौ दिषावै । जानिवो मात्र सो चेतना शक्ति सहित है जाकै अनन्त गुन हैं । पयाय कहियै नामातर पाइवौ जामें नाहू शक्ति अनत इन्द्रिय अगोचर है तातै अलक्ष्य है । देहखड भएतै ही अपडित है । सर्व लोकमैं भरयौ हैं, तातै सर्वगत है ।ऐसौ जीव द्रव्य कौ वृत्तात कहतैं सरूप है ॥१८॥

अथ पुद्गल द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

फरस वर्ण रस गध मय, नरद पास सठान ॥
अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥२०॥

अर्थ—अन पुद्गल द्रव्यकौ लक्षण कहै हैं। स्पर्शवर्ण रस गध गुनमई सदाई रहै । नरदरामतिके पासा मैं (१) वृत्त सूक्ष्म (२) त्र्यस्र (३) चतुर (४) आयत ए सस्थान है । तैसैं याकी सम्या आप अपनी वर्गना योग्य रूप गृहै है तातै ॥ पुद्गल द्रव्य अनुरूपी अथवा परमाणुरूपी हैं । सर्व आकाश प्रदेश जैमै अनन्त है तैसे पिण अनन्त प्रमाण है । ॥२०॥

अथ धर्मद्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

जैसें सलिल समूह में, करे मीन गति कर्म ॥
तैसें पुद्गल जीव कौं, चलन सहाई धर्म ॥२१॥

अर्थ—अब धर्म द्रव्यको लक्षण कहे हैं जैसैं पानी के भराऊम मच्छ जीव हैं सो गति कर्म कहतें गमन क्रिया करै है। तहा क्रियाकी कर्त्ता मच्छ है अरु सलिल समूह सो पानी की भराऊ वा क्रियाकी साधक है। तैसें पुद्गल द्रव्य अरु जीव द्रव्यके चलन क्रिया को सहाई कहतें साधक धर्मास्तिकाय द्रव्य है ॥२१॥

अथ अधर्म द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

ज्यों पथिक ग्रीषम समै, बैठें छाया माहि ॥
त्यों अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहराहि ॥ २२ ॥

अर्थ—अब अधर्मास्तिकाय द्रव्यको लक्षण कहे हैं ॥ जैसें कोऊ बटाऊ उन्हालिकाल छाया पाय बैठै, बैठक क्रिया को कर्त्ता तो बटाऊ है, पै वा क्रियाकी साधक छाया है तैसें अधर्मास्तिकायकी भूमि कहवा अवगाहना तामैं जड सो पुद्गल चेतन सो जीव ए दोनो थिर होत हैं। यातैं अधर्मास्तिकाय द्रव्य थिरताको कारन है ॥२२॥

अथ आकाश द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

सतत जाके उदर में सकल पदारथ वास ॥
जो भाजन सब जगतको सोइ दरब अकास ॥ २३ ॥

अर्थ—अब आकाश द्रव्यकी लक्षण कहै हैं ॥ सतत कहते निरतर जाकै उदरमैं समस्त पदारथ वसि रह हैं। अर जो सब जगतकौ भाजन कहतें आधार भूत है सोई आकाश द्रव्य जानियै ॥२३॥

अथ काल द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

जो नवकर जीरन करै, सकलवस्तु थिति ठान ॥
परावर्त्त वर्त्तन धरै, काल द्रव्य सो जानि ॥ २४ ॥

अर्थ—अब काल द्रव्यकौ लक्षण कहै हैं ॥ अब जोई द्रव्य सकल वस्तुकी थिती साधै। पहिलैं सकल वस्तुकी नवापनौ दिखावै, पीछे वाही वस्तुकौ जीरनपनौ करै। अर उलटि पलटि वर्त्तिवा यह दसा धरै॥ सोई काल द्रव्य जानियै ॥२४॥

अथ नव तत्त्ववर्णन ॥ दोहरा ॥

समता रमता ऊरधता, ज्ञायकता सुखभाव ॥
वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास ॥ २५ ॥

अथ—अब ज्ञानतत्त्व समुझाइयतु है। सब जीव सम वरो-
रि हैं ए समता ॥ घटघटमैं रमि रहे हैं ए रमता ॥ ऊर्ध्वदिसि
गमन करिवौ ए ऊर्द्धता ॥ सब ही कौ जाननहार ए ज्ञायकता।
सुषमई भावै कहियै सुषदुष वेदै सो वेदकता। चेतना गुनतें
चेतनता ए सब जीवतत्त्वको ही विलास है ॥ २५ ॥

अथ जीवतत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

तनता मनता वचनता, जडता जड समेल ॥
लघु गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल ॥ २६ ॥

अर्थ—अब अजीवतत्त्वकी पहिचान करावै है॥ तनपनौ
मनपनौ वचनपनौ जडपनौ। जड वस्तुमे एकमेक होतौ। लघु-
पनौ गुरपनौ गमनपनौ ए सब अजीवतत्त्वके खेल हैं ॥ २६ ॥

अथ पुण्यतत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जो विशुद्ध भाविनि वधे, अरु ऊरधमुख होय ॥
जो सुषदायक जगतमै, पुन्य पदारथ सोय ॥ २७ ॥

अर्थ—अब पुन्यतत्त्वकी पहिचान करावै है ॥ जोई पदा
विसुद्ध परिनामही तैं वधै अरु जा को ऊरध मुख है। ऊरधगा
ही को दौरै। जोई पदारथ जगतमैं सुषदायक है सोई पुन्
पदारथ जानिय ॥ २७ ॥

अथ पापतत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

सकलेश भावनि बंधै, सहज अधोमुख होइ ॥
दुखदायक संसार में, पाप पदारथ सोइ ॥ २८ ॥

अर्थ—अब पापतत्त्वकी पहिचान करावैं हैं ॥ जोई पदारथ सकलेश भावकरि कषाय तीव्रता करि बंधै। सहज ही जाके अधोमुख है। नीची गति सामुहो मुख है। अर जगत में दुख-दायक है सोई पाप पदारथ कहावैं हैं ॥ २८ ॥

अथ आस्रव तत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जोई करम उदोत धरि, होइ क्रियारस रक्त ॥
करषै नूतन करम कौं, सोई आस्रव तत्त्व ॥ २९ ॥

अर्थ—अब आश्रव तत्त्वकी पहिचान करावैं हैं [illegible] की उदौ धरकै शुभ तथा अशुभ क्रिया कै रसमै [illegible] करषै कहता खैंचै नूतन करम कौ सो नए [illegible] नए करम को खैंचिनो है सो आश्रव तत्त्व [illegible] ॥ २९ ॥

अथ संवर तत्त्व यथा ॥ [illegible] ॥

जो उपयोग सुरूप धरि, [illegible]
रोकै [illegible] करम कौं, [illegible]

अब संवरतत्वकी पहिचान करावें है ॥ जो उपयोग सरूप धारिकै मनवचन काययोग मैं निरक्त थकौ वरतैं । अरु नए नए आस्रव करम कौ रोकै । सोई संवर तत्त्व कहावें ॥ ३० ॥

अथ निर्जरातत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरन आउ ॥
खिरिवे कौं उदित भयौ, सो निर्जरा लखाउ ॥३१॥

अर्थ—अब निर्जरा तत्वकी पहिचान करावें है ॥ जो पूरवकाल विषै सात सत्तारूप कर्म थे । अरु आयु कर्म वर्त्तमान-कालम सत्तारूप है ताकी थिति पूरन करिकैं पीछै नीरस कर्म देनिषै खिरनें का जीउ उद्यमवंत भयो सो निर्जराकौ लक्षण जानियें ॥ ३१ ॥

अथ बंधतत्त्व तथा ॥ दोहरा ॥

जो नव करम पुरान सौं, मिले गठि दिढ होय ॥
सकति वढावै वंसकी, बंध पदारथ सोय ॥ ३२ ॥

अर्थ—बंधतत्वकी पहिचान करावें है ॥ जो नए कर्म पुराने कर्म सौ आनि मिलें । अर वाकी गाठ दिढ होई । अरु आगें वाही कर्मकै वंसकी सगति वढती होई सोई बंध पदा-रथ कहावें ॥ ३२ ॥

अथ मोक्ष तत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

थिति पूरन करि जो करम, खिरे बंधपद भानि ॥
हंस अंस उज्जल करे, मोखतत्त्व सो जानि ॥३३॥

अर्थ—अब मोक्षतत्त्वकी पहिचान करावे हैं॥ करमकी थिति कौं पूरन करिकें करम को खेरें झारि डारे १७ बंधपद सो बंध स्थान ताकौ भानि कहले भावबंध इम कहतें परमात्मा ताकौ अंस अंमि २ उज्जल करें सोई मोक्ष तत्त्व जानि लीजे ॥३३॥

अथ नाममाला सूचनिका मात्र लिख्यते ।

अथ समुच्चय वस्तु के नाम ॥ दोहरा ॥

भाव पदारथ समय धन, तत्त्व वित्त वसु दर्व ॥
द्रविन अर्थ इत्यादि बहु वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३४ ॥

अर्थ—अब कवित्त छंद मैं पदार्थ के नाम ल्याइये कौं प्रयोजन वाले नाम तिनको नाममाला लिखिये हैं॥ अब सामान्य पने वस्तु के नाम कहे हैं ॥ भाव १ पदारथ २ समय ३ धन ४ तत्त्व ५ वित्त ६ वसु ७ द्रव्य ८ द्रविण ९ अरथ इत्यादि घनेरे ए मा वस्तु के नाम हैं ॥ ३४ ॥

शुद्धजीव दर्व्यके नाम ॥ सवैया ३१ सा ॥

परम पुरुष परमेसुर ज्योति परब्रह्म

पूरन परम परधान है।
अनादि अनत अविगत अविनासी
अज निरदु द मुकुत मुकु द अमलान है॥
निराबाध निगमनिरजन निरविकार
निराकार ससार सिरोमनि सुजानि है।
सरव दरसी सरवज्ञ सिद्ध साईं
शिवधनी नाथ ईस जगदीस भगवान है॥ ३५॥

अर्थ—अब शुद्ध जीव पदार्थ नाम कहै है॥ परम पुरुष कहिये परमेश्वर कहिये परम ज्योति कहिये परब्रह्म कहिये पूर्ण कहिये परम प्रधान है अनादि अनन्त कहिये अविगत कहिये अविनासी कहिये अज कहिये निद्व द कहिये मुक्त कहिये मुकुन्द कहिये अम्लान कहिये निराबाध कहिये निगम कहिये निरजन कहिये निर्विकार कहिये निराकार कहिये ससार शिरोमणि कहिये सुज्ञान कहिये सर्वदरसी कहिये सर्वज्ञ कहिये सिद्ध कहिये स्वामी कहिये शिवधनी कहिये नाथ कहिये ईश कहिये जगदीश कहिये भगवान कहिये॥३५॥

अथ ससारी जीवद्रव्यके नाम ॥ सवैया ३१ सा ॥

चिदानद चेतन अलख जीव समैसार,
बुद्धरूप अबुद्ध असुद्ध उपयोगी है।
चिद्रूप स्वयभू चिनमूरति धरमवत,
प्रानवत प्राणी जतु भूत भवभोगी है॥
गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी,
अगधारी सगधारी जोगधारी जोगी है।
चिन्मय अखड हस अक्षर आतमराम,
करमको करतार परम वियोगी है॥ ३६॥

अर्थ--अब कर्म व्याप्त अशुद्ध जीव द्रव्यके नाम कहे हैं चिदानन्द कहिये, चेतन कहिये, अलख कहिये, जीव कहिये, समयसार कहिये, बुद्धरूप कहिये, अबुधरूप कहिये, अशुद्धोपयोगी कहिये, चिद्रूप कहिये, स्वयभू कहिये, चिन्मूर्त्ति कहिये, धरमवत कहिये, प्राणवत कहिये, प्राणी कहिये, जतु कहिये, भूत कहिये, भव भोगी कहिये, गुणधारी कहिये, कला धारी कहिये, वेषधारी कहिये, विद्याधारी कहिये, अगधारी कहिये, सगधारी कहिये, योगधारी कहिये, योगी

चिन्मय कहिये, अखंड कहिये, हंस कहिये, अक्षर कहिये, आतमाराम कहिये, करतार कहिये, परम वियोगी कहिये। ३६।

अथ आकाशके नाम ॥ दोहरा ॥

ख विहाय अम्बर गगन, अन्तरिच्छ जगधाम।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ये आकाशके नाम ॥ ३७॥

अर्थ—अब आकाश द्रव्यके नाम कहे हैं—ख कहिये, विहाय कहिये, अम्बर कहिये, गगन कहिये, अन्तरिक्ष कहिये, जगद्धाम कहिये, व्योम कहिये, वियत कहिये, नभ कहिये, मेघपथ कहिये ॥ ३७॥

अथ कालके नाम ॥ दोहरा ॥

यम कृतांत अन्तक त्रिदश, आवर्ती मृतथान।
प्राणहरण आदित तनय, काल नाम परवान ॥ ३८॥

अर्थ—अब काल पदार्थके नाम कहे हैं—यम कहिये, कृतांत कहिये, अन्तक कहिये, त्रिदश कहिये, आवर्ती कहिये, मृतस्थान कहिये, प्राणहरण कहिये, आदित्य कहिये, तनय कहिये, ऐसे कालके नाम प्रमाण हैं ॥ ३८॥

अथ पुन्यके नाम ॥ दोहरा ॥



पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकररोग शुभकर्म ।
सुखदायक ससारफल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥ ३९ ॥

अर्थ—अब पुन्यके नाम कहें हैं—पुन्य कहिये, सुकृत कहिये, ऊधवदन कहिये, अकररोग कहिये, शुभकर्म कहिये, सुखदायक कहिये, ससारफल कहिये, भाग कहिये, बहिर्मुख कहिये, धर्म कहिये ॥ ३९ ॥

अथ पापके नाम ॥ दोहरा ॥

पाप अधोमुख एन अघ, कपरोग दुखधाम ।
कलिल कलुस किल्विस दुरित, अशुभ करमके नाम ॥४०॥

अर्थ—अब पापके नाम कहें हैं—पाप कहिये, अधोमुख कहिये, एन कहिये, अघ कहिये, कम्पक कहिये, राग कहिये, दुखधाम कहिये, कलिल कहिये, कलुष कहिये, किल्विष कहिये, दुरित कहिये, अशुभ करमके ये नाम जानिये ॥ ४० ॥

अथ मोक्षके नाम ॥ दोहरा ॥

सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवमुकुट अविचलथान ।
मोख मुकति वैकुठ शिव पचमगति निरवान ॥४१॥

अर्थ—अब मोक्षके नाम [illegible] त्र कहिये,

त्रिभुवन मुकुट कहिये, शिवमुक्त कहिये, अविचल स्थान कहिये, मोक्ष कहिये, मुक्ति कहिये, वैकुंठ कहिये, शिव कहिये, पंच-मगति कहिये, निर्वाण कहिये ॥ ४१ ॥

अथ बुद्धिके नाम ॥ दोहरा ॥

प्रज्ञा धिसना सेमुखी, धी मेधा मति बुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥४२॥

अर्थ--अब बुद्धिके नाम कहे हैं—प्रज्ञा कहिये, धिष कहिये, सेमुखी कहिये, धी कहिये, मेधा कहिये, मति कहि बुद्धि कहिये, सुरति कहिये, मनीषा कहिये, चेतना कहि आशय कहिये, अंश विशुद्धि कहिये ॥ ४२ ॥

अथ विचक्षण पुरुषके नाम ॥ दोहरा ॥

निपुन विचच्छन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥

अर्थ—अब पण्डित पुरुषके नाम कहे हैं—निपुन क विचच्छण कहिये, विबुध कहिये, बुद्ध कहिये, वि कहिये, विद्वान कहिये, पटु कहिये, प्रवीण कहिये, कहिये, चतुर कहिये, सुधी कहिये, सुजन कहिये, म कहिये ॥ ४३ ॥

पुन —दोहरा

ग्रवत कोविद चतुर, सुमन दक्ष धीमत ।
ञा सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणीजन सात ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्त्लावत कहिये, कोविद कहिये, चतुर कहिये, न कहिये, दक्ष कहिये, धीमान कहिये, ज्ञाता कहिये, जन कहिये, ब्रह्मविद् कहिये, तद्न कहिये, गुनीजन कहिये, कहिये ॥ ४४ ॥

अथ मुनीश्वरके नाम ॥ दोहरा ॥

नि महन तापस तपी, भिच्छुक चारितधाम ।
तो तपोधन सयमी, व्रती साधु ऋषि नाम ॥४५॥

अर्थ—अब मुनीश्वरके नाम कहैं हैं—मुनि कहिये, त कहिये, तापस कहिये, तपी कहिये, भिक्षुक कहिये, रित्रधाम कहिये, जती कहिये, तपोधन कहिये, सयमी हिये, व्रती कहिये, साधु कहिये, ये ऋषिके नाम निये ॥ ४५ ॥

अथ दर्शनके नाम ॥ दोहरा ॥

रस विलोकन देखनो, अवलोकिन दृग चाल ।
लखनि दृष्टि निरखनि जुवनि, चितवनि चाहनि भाल ४६

अर्थ—अब देखिवेके नाम कहें हैं—दर्शन कहिये, विलोकन कहिये, दरसनो कहिये, अवलोकनो कहिये, दृग चालन कहिये, लखनो कहिये, दृष्टि कहिये, निरीक्षण कहिये, जोवनो कहिये, चितवन कहिये, चाहन कहिये भालनो कहिये ॥ ४६ ॥

अथ ग्यानके नाम तथा चारित्रके नाम ॥ दोहरा ॥

ग्यान बोध अवगम मुनन जगत भान जग जान ।
सयम चारित आचरन, चरन वृत्त थिरवान ॥४७॥

अर्थ—ग्यानके नाम कहे हैं-पीछे या ही दोहरेमे चारित्रके नाम कहे हैं-ज्ञान कहिये, बोध कहिये, अवगम कहिये, मनन कहिये, जगद्भानु कहिये, जगद् ग्यान कहिये, अब सयमके नाम कहे हैं--सयम कहिये, चारित्र कहिये, आचरण कहिये, चरण कहिये, वृत्त कहिये, स्थैर्यवान् कहिये ॥ ४७ ॥

अथ साचके नाम ॥ दोहरा ॥

सम्यक सत्य अमोघ सत, निसदेह निरधार ।
ठीक यथारथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ४८

अर्थ—अब सत्यके नाम कहे हैं—सम्यक् कहिये, सत्य कहिये, अमोघ कहिये, सत कहिये, नि सदेह कहिये, निर्धार

कहिये, ठीक कहिये, यथातथा कहिये, उचित कहिये, तथ्य कहिये, आदितें अकार अक्षर लगाइके मिथ्या शब्द पढिये इतने मिथ्या नाम ॥ ४८ ॥

अथ झूठके नाम ॥ दोहरा ॥

अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक ।
मुधा मोघ निफल वितथ,अनुचित असत अठीक।४९।

अर्थ—अब झूठके नाम कहें हैं—अयथार्थ कहिये, मिथ्या कहिये, मृषा कहिये, वृथा कहिये असत्य कहिये, अलीक कहिये, मुधा कहिये, मोघ कहिये, निफल कहिये, वितथ कहिये, अनुचित कहिये, असत् कहिये, अठीक कहिये, ॥ इति नाटक समयसार मध्ये नाममाला सूचनिका ॥ ४९ ॥

अथ समयसारके द्वादश द्वार ताको वर्णन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जीव निरजीव करता करम पुन्य पाप,
आस्रव संवर निरजरा बंध मोष है ।
सरव विशुद्धि स्यादवाद साध्य साधक,
दस दुवारा धरै समैसार कोष है ॥

दरवानुयोग दरवानुजोग दूरि करै,
निगमकौ नाटक परम रस पोप है।
ऐसे परमागम वनारसी वखानै जामैं,
ग्यानकौ निदान सुद्ध चारितकी चोप है ॥ ५०॥

इति कहवाँ सपूर्ण भई समैसार ग्रन्थ विषै सूचिनिका मात्र नाम माला सपूर्ण ॥

अर्थ—अव समयसारकी व्याख्यान बारह द्वार करिकै कहै है जीवद्वार, अजीवद्वार, कर्त्ता कर्म क्रियाद्वार, पुन्य पापद्वार, आस्रवद्वार, सवरद्वार, निर्जराद्वार, बधद्वार, मोक्षद्वार, सर्व विशुद्धिद्वार, स्याद्वनाद्द्वार, साध्यसाधकद्वार ये १२ द्वार धरिकै समयसार रूप कोप रहत कोठार है। या ग्रन्थमैं द्रव्यानुयोग कहतै द्रव्यको विचार करिवो, पीछे द्रव्यानुयोग दूरि करिवौ, शुद्ध आत्मा सत्ता ही को विचार। निगम कहिये परमात्मा ताकौ नाटक है, परम शात रसकौ यामे पोप है, ऐसौ ए परम सिद्धान्त वनारसीदास वपानत है। या ग्रन्थनमे ग्यान हा को निदान कहते मूल व्यौरा अरु या ग्रन्थम शुद्ध चारित्रकी चोरस कहतं चोथी क्रिया ॥ ५० ॥

॥ इति सूचनिका सम्पूर्ण ॥

अथ ग्रन्थारम्भको नमस्कार ॥ दोहरा ॥

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानन्द भगवान ।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ १ ॥

अर्थ—अब ग्रन्थारम्भके विषे समुचितष्ठ देवता परमात्मा ताकों नमस्कार करें हैं—जोई पदार्थ निज अनुभूति कहते अपनीं अनुभवता करि युक्त थको सोभित हैं, चित् कहिये चेतना अरु आनन्द तिनमैं सो चिदानन्द कहिये भगवान कहिये ग्यानवन्त ऐसो सारभूत पदार्थ संसारमैं आत्मा ही है, जातें समस्त पदार्थको जानन-हार है ग्याता है ॥ १ ॥

अथ नमस्कार ॥ सवैया ३१ सा ॥

जो अपनी दुति आपु विराजत,
है परधान पदारथ नामी ।
चेतन अङ्क सदा निकलङ्क,
महा सुखसागरको [illegible] ॥

जीव अजीव जिते जगमें,

तिनकौ गुण ज्ञायक अन्तरजामी ।

सो सिवरूप वसै सिवथानकि,

ताहि विलोकि नमें सिवगामी ॥ २ ॥

अर्थ—अब आत्माका वर्णन करिके नमस्कार करै है—जो अपनी दुतिमौ आपु ही विराजि रह्यो है, इतर्न आपु ही तैं आपु भासि रह्यो है पै और पदार्थ तें जाको भास नाही ऐसौ कोऊ प्रधान पदार्थ नामीक है, प्रसिद्ध है चेतना, जाकौ अङ्ग कहवै लक्षण है, सदाई निकलंक है, निरंजन है, महा सुखसमुद्रमें जाको विश्राम है, रहिवो है, सहज समाधि सुरस जोई रमि रह्यौ है। जैते जगतमे जीव अजीव पदार्थ हैं तिन्हिके गुनको ग्यायक है अरु अन्तर जामी है, घटघटमे विराजमान है, सोई शिवरूप कहते सिद्ध स्वरूप भयौ छतो शिवथानक वसै है, लोकाग्र भागै सिद्धस्थानक वसै है, ताहि विलोकि कैं, ग्यान दृष्टितैं देखिकै, शिवगामी सो मुक्तिगामी जीव नमस्कार करैं ॥ २ ॥

अथ जिनवानी वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न,

अनन्त गुनातम केवल ज्ञानी ।

ताशु हृदै-द्रहसों निकसी,

सरितासम ह्वै श्रुति-सिन्धु समानी ॥

यातैं अनत नयातम लच्छन,

सत्य स्वरूप सिधत वखानी ।

बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि

सदा जगमाहि जगै जिनवानी ॥ ३ ॥

अर्थ—अब भगवतकी वानीकों नमस्कार करै हैं—तीनौं योगको धारै हैं पै मन वचन काय जोगतैं भिन्न रहै है, अलिप्त है; अनत गुन प्रगटता लियें जाको आतमा है ऐसी कोऊ केवल ग्यानी पुरुष है ता केवलग्यानीको हृदैरूप द्रह है तहातै जो निकसी, सरिता सम ह्वै कहतै नदी रूप ह्वै कै श्रुत-सिधु समानीसौ शास्त्र रूप समुद्रमे जाइ पैठो है, और नदीहू द्रहतें समुद्रमै जाइ, याहितै अनत नय स्वरूप लक्षण लिये सत्यता सुरूप सिद्धान्तमै वषानो है । या वानीकों वुद्धि कहतै वुद्धि-वन्त तत्त्वदर्शी होई सोई लषै अरु दुरबुद्धि मिथ्यामती होइ सो नाही। ऐसी जिनेश्वरकी वानी जगतमैं सदा जागि

अथ जीव द्वार लिख्यते, कवि व्यवस्था कथन ॥

छप्पय छंद ॥

हो निहचै तिहुकाल, सुद्ध चेतनमय मूरति ।
पर परनति सजोग, भई जड़ता विसफुरति ॥
मोह कर्मपर हेतु पाइ, चेतनपर रच्चइ ॥
ज्यों धतूर रस पान करत, नर बहुविधि नच्चइ ॥
अब समयसार बरनन करत,
परम सुद्धता होहु मुझ ।
अनायास बनारसि दास कहि,
मिटौ सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ४ ॥

अर्थ—अब प्रथम जीवद्वार हा कौ विचार लिखिये है, अब जीव ही कथाधार है सो अपनी व्यवस्था सो तरयोयत कहे है—शुद्ध निश्चै नयकरि अतीत अनागत वर्त्तमान काल विषै हौं शुद्ध चेतना मई पिण्ड हौ, यही मेरा मूरति है, ऐसी है तौ शुद्ध स्वभाव छाडिकै विभावमै कैसे परिनयौ है? ताकौ उत्तर-यातै कर्मादिक पर है ताकौ इहा परिनमन भयौ तातै ताकी जडता इहा विस्फूरित भई, वाकी जडता फैली। शिष्य पूछै-ऐसौ शुद्ध स्वभाव हौं तौ पर परिनति कैसे ग्रही? ताकौ

उत्तर—मोहकर्म रागद्वेष रूप हैं सोई पर हेतु उत्कृष्ट कारण चेतन आत्मापर-सेती रान्यौ, याकौ दृष्टान्त कहै—ज्यों धतूरे कौ रस पान करिकै नर मनुष्य बहुत भांति नाचै, तैसैं अनादिसैं मोह कारन पाइकै चेतन अपनो सुदृढ स्वभाव छाँडि विभाव वासैं मूर्छित ह्वै रह्यौ है। अब समयसार कहिये आत्मा ताके वर्नन करत ही मुझकौं परम शुद्धता होहु। अपनैं शुद्ध सुभावकी पहिचानि तें विभावता भागौ। अनायास कहते बहुग्रन्थ पढ़िवैंके प्रयास बिनाही बनारसीदास ज्ञाता कहै है। महा कहते आत्माके संगि अनादि साथि लगी भ्रमकी अरुझसैं मिथ्यातमै मगन तासौ मेरी मिटि जाउ॥ ४॥

अथ आगम व्यवस्था वरनन॥ सवैया ३१ सा॥

निहचैंमैं रूप एक विवहारमे अनेक,
याही नै विरोधमैं जगत भरमायौ है।
जगके विवाद नासिबेकौं जिन आगम है,
जामैं स्याद्वादनाम लच्छन सुहायौ है।
दरसनमोह जाकौ गयौ है सहजरूप,
आगम प्रवान ताकैं ...

अनैसौं अखंडित अनूतन अनन्त तेज,

ऐसौ पद पूरन तुरन्त तिन्ह पायौ है ॥ ५ ॥

अर्थ -जब या जीवकी शुद्धताका आगम ही मूल पाइये तातै आगम कहिये सिद्धान्त ताकी व्यवस्था वरनिये है- सबही आगम ज्ञान पन ग्रहीये तौ निश्चनयमें एक ही रूपही दीसै है, अरु व्यवहार नयकी अपेक्षात अनेक रूपमें है, पर या व्यवहार नयमें नयकौ विरोध बडो भी है। काऊ आगम कोऊ नय लिया है कोऊ आगम कोऊ नय भी है, याही नय विरोधमें जगत भरमाना है, अरु याही भरममें जगतमें वाद विवाद उपज्यो है, ताते जगतके विवाद नासिवेकौ बीचम प्रमाणिक साक्षी रूप जिनेश्वर को आगम है, जा आगममें स्याद्वाद नाम लीनैं सर्व पदार्थकौ लक्षणसबहीसै सुहावनौ है। स्यात् कहते सबही द्रव्यदृष्टि दषिये तौ ये नय साचो, अरु ही पर्यायदृष्टि दषियै ये नय साचो, एसो कहै। शिष्य पूछै- ऐसा स्याद्वाद सहित जिन आगम प्रमाण है तो सबही के हियेमें क्यौं आ नहीं ? ताको उत्तर -जा पुरुषको सहज रूप कहते अनादि ह को मिथ्या दर्शन मोह गयौ है ताके हियैमैं ये जिन आगम प्रमानरूप आयो है। मिथ्यादर्शन मोहयारेके हीयैमै ये आ

नाहीं। अब स्याद्वादके जाननहारका फल कहे- जोई पद अनैसौ है, जैसे नय है तैसे तो नाही है, नय तो एकांश ग्राही है तो पूरन पद को ग्राहक नय कैसे होई या तैं अनैसो है अर पूर्ण पद पनातें अखंडित है, अर ऐसो अनादि काल तैं है तातैं अनूतन कहतैं पुरान है, एसा अनंत तेजवाला पूरन पद तिन ही तुरत पायो है॥ ५ ॥

अथ निश्चै व्यवहार कथन ॥ सवैया २३ ॥

ज्यौं नर कोऊ गिरै गिरिसौं तिहि,
सोइ हितू जो गहे दिढवाहीं।
त्यौं बुधकौ विवहार भलौ,
तबलौं जबलौं शिव प्रापति नाहीं॥
यद्यपि यौं परवान तथापि,
सधै परमारथ चेतनमाहीं।
जीव अव्यापक है परसौ,
विवहारसौं तौ परकी परछाहीं॥ ६ ॥

अर्थ—अब आगम तो निश्चय-नय अरु व्यवहार नय लिया कहे है शिष्य पूछै दोनोंमें कार्य सिद्धकारी नय

कौन है ? ताकौ उत्तर गुरु कहै है—जैसैं कोऊ नर मनुष्य गिरिमौं पहार मौं गिरतौ होइ तिहि थानक वा पुरुषकौं गाढौ बाह पकरिकैं गहि रहैं, माई पुरुष वा पुरुषकौ हितू हित बछक जानियै। तैसैं बुधकौ, सौ पण्डितकौ व्यवहार भलौ तौलौ है जौलौ मिर प्रापति नाहिं है। चौथा गुनथानातैं लैकरि चौदमा गुन थानामसे जैसी लौ करन व्यवहारकौ भलौ, सौ आलम्बन है। यद्यपि कहते जांप ऐसे व्यवहार आलम्बन प्रमान है, तथापि कहतैं तोषिण परमाथ ग्यान दर्शन चारित्रकौ शुद्धपनौ चेतन माहि ही सधैगौ और तै न सधैगौ। अरु जीव है सौ अपनैं गुनम व्यापक है व्यापिरह्यौ है। पर पर कहियै कर्मादिक जड जीव सत्तातें न्यार तामौ जीव अव्यापक है। अरु व्यवहार है सुतौ परहीको परिछाहीमैं है। इतनै परकी निश्रा बिना व्यवहार न होइ, तातैं व्यवहार तैं निश्चय नय शुद्ध है ।६।

अथ सम्यग्दर्शन व्यवस्था ॥ सवैया ३१ सा ॥

शुद्धनय निहचै अकेलो आपु चिदानंद,
अपने ही गुन परजायकौं गहतु है।
पूरन विग्यानघन सो है विवहारमाहि,
नव तत्त्वरूपी पंच दर्वमैं रहतु है॥

च दर्व नव तत्त्व न्यारे जीव न्यारौ लखै
सम्यक दरस यहै और न गहतु है।
सम्यक दरस जोई आतम सरूप सोई
मेरे घट प्रगट्यो बनारसी कहतु है ॥ ७ ॥

अर्थ—अब शुद्ध निश्चय नयतें वर्तमान दर्शन प्रगट ताको व्यवस्था वहतें विशेषपने उनकौं सौं कहे है—शुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षा जीवरौं सौ चिदानन्द स्वरूप चेतनामई आनन्दमई जो पदार्थ है सो अपना सत्ता लिये आपु एकेलो ही है, अरु अपने ही ज्ञानादिक गुनके पर्यायसौ अवस्था भेद ताकौं गहै है अरु याही सामान्य ज्ञानमें घट-पट यादिककौ विशेष ज्ञान सौ विज्ञान कहिये ताको एकत्व सौ कहतें पिट सौ ये व्यवहार नय माहि दीसै हैं, अरु याही व्यवहार नयतें नवतत्त्व लिये धर्मादिक पाच द्रव्य एक ठौर हैं अरु ऐसो ही विचारमें शुद्ध निश्चय नयकरि पंच-द्रव्य न्यारेई लखै, अरु नव-तत्त्व न्यारेई सौं अरु जीव न्यारो ही लखै। ऐसी द्रव्यदृष्टितें और कोऊ अभिप्राय गहै ही नहीं सो ही सम्यक दर्शन कहिये अरु जो सम्यक दर्शन है सोई आत्म स्वरूप

है अरु सोई आत्म सरूप मेरे घट पिंडमें प्रगट्यो है। ऐसें बनारसी दास कहै॥ ७॥

अथ जीव द्रव्य व्यवस्था अग्निका दृष्टान्त॥ सवैया ३१ सा॥

जैसे तृण काठ वास आरने इत्यादि और,
इंधन अनेक विधि पावकमे दहिये।
आकृति विलोकित कहावै आग नानारूप,
दीसै एक दाहक सुभाव जब गहिये॥
तैसे नव तत्त्वमें भयो है बहु भेषी जीव,
शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये।
जाही छिन चेतना सकतिको विचार कीजे,
ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये॥ ८॥

अर्थ—शिष्य पूछ्यो जीवद्रव्यतें नवतत्व पंच द्रव्य न्यारे कैसें लखिये तब गुरु कहै है—जीव द्रव्यकी व्यवस्था अग्निके दृष्टांत करि न्यारी है। जैसे पावक कहतें अग्निमें तृण काठ वास और आरने कहत वनके उपलने इत्यादिक अनेक विध कहतें घनी भांतिके इंधनादि दहिये है, जालिये है। जैसी जैसी इंधनकी आकृति कहत आकार तैसी तैसी आकृति लिये

अग्नि विलोकिये ऐसें विलोकत तो आगि है सो नाना रूप कहतें नई नई भांतिकी आगि कहावै, अरु सबही आगिको दाहक स्वभाव एक है ऐसे जो गहिये तो आगि सबही एक है। तैसें नव तत्त्वनिमें जीव है सो भांति भांतिके भेष धारि रह्यो है तातें जीव बहु बहु भेषो नाना प्रकारको भयो। यातें शुद्धरूप जीव है सो और सो मिश्रित भयो। तब योंही जीव अशुद्धरूप कहिये यह व्यवहार नय है। अरु जाही क्षणमें नव तत्त्वनि विषैं एक चेतना सकति विचारियो ताही छिन विषै शुद्ध निश्चय नयके बलतें नव तत्त्वको प्रपंच असुरत्य रयिकै अलखरूप जीव है सो सर्वत्र अभेदरूप पाइये। ये शुद्ध निश्चय नय है॥ ८॥

अथ जीव व्यवस्था वनवारी दृष्टांत॥ सवैया ३१॥

जैसें वनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम,
नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है।
कासकै कसौटी लीकु निरखै सराफ ताय,
वानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है॥
तैसें ही अनादि पुद्गलसों सजोगी जीव,
नव तत्त्वरूपमें अरूपी

दासैं उनमान सौं उदोतवान ठौर ठौर,
दूसरो न और एक आतमाई राम है ॥ ६ ॥

अर्थ—अब औरो ही शुद्ध जीव व्यवस्था दिपाइवेंकी बनारसी कहतैं सुनारकी मूस ताकी दृष्टांत दिपावै है—जैसे सुनारको मूसमा है शुद्ध हेम गाल्यौ अरु सोनातैं हीन धातु सौ कुधातु कहियें कौन कौन ? रूपा, तांबा, सीसा, जसद, कथीर लोह याकौ न्यारो २ हेममें मिलाप भयौ, तातें न्यारी न्यारी भांति भई तौहू सौ तौ एक नामैं कहावै अरु वा अशुद्ध सोनाकौ सराफ होइ सो कसौटो पाषानमौ कसैं अरु वाकी लीक निरखै, अरु वाकी लीक कू परिष हेमकी वानीकौ प्रमान करै, जैसे ये सौनौ दसवानीकौ या ग्यारह वानीकौ। ऐसे प्रमान करि वाकै दाम देतु है लेतु है। तैसैही अनादिकालमें जीव पुद्गल द्रव्यतें सयोगी भयौ, तातें इन जीव नवतत्त्व-रूप व्यवस्था धारी, गति पनै, स्थिति पनै, भाजन पनै, वर्तना पनै, आधार पनै, पाचौ द्रव्यमय है। अरु नव तत्त्वरूप धारै पै यामैं कोऊ अरूपी महा तेजवंत द्रव्य दीसै सोतौ कोऊ प्रत्यक्ष प्रमान सौंतौ ग्रह्यौ न जाई है, अरु अनुमान सौं ग्रहियै है। शिष्य पूछै—कैसौ अनुमान कीजै है ? गुरु कहै—ठौर ठौर

उद्योतवान, प्रकाशवान द्रव्य दीमें मोतो और द्रव्य कोऊ नाहीं, एक आतमाराम ही जानिये। एहु शुद्ध निश्चय नय सो कह्यौ ॥ ९ ॥

अथ—अनुभव व्यवस्था सूर्य दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसें रविमंडलके उदै महि-मण्डलमें,
आतप अटल तम पटल विलातु है।
तैसें परमातमाको अनुभौ रहत जौलौं,
तौलौं कहौं दुविधा न कहौं पच्छपात है ॥
नयको न लेस परवानको न परवेस,
निच्छेपके वसको विधुंस होतु जातु है।
जेजे वस्तु साधक हैं तेऊ तहां वाधक हैं,
बाकी राग दोषकी दशाकी कौन वातु है ॥१०॥

अर्थ—अब ऐसे खोजितें जो परिचो पायो सो अनुभव कहिये, ताकी व्यवस्था कैसो भावि है ये शिष्य पूछ्यो ? तब गुरु कहैं है सो सूर्यको दृष्टांत दे करि याकी व्यवस्था कहै है—जैसें सूर्य मण्डलके उदयतें महि-मण्डलमें सो पृथ्वी मण्डलमें आतप कहतें [illegible] अटल होइ अरु तम पटः

पटल सौ तौ विलय जायै, तैसेही शुद्ध निश्चय नयके नक्तैं जौलौं अन्तरातमामैं परमातमाको अनुभव रहतु है तौलौं कहाँ दुविधा, दुभाति न पाइयै, अरु पक्षपात न पाइयै। आप अपने मतकौ पक्षपात न रहै, अरु इहा नयकौहू लेश कहतें अश न पाइयै। नयनौं तौ वस्तुको साधन कीजै। अरु अनुभव तौ सिद्ध वस्तुकौ होइ, तातें यहां अनुभव विषै नयकौ लेस नहीं। अरु यहा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमानकौ प्रवेस नहीं ? प्रमान होइ सौ तौ असिद्धको साधन करै, सिद्धकौ कहा साधैगौ ? अरु नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ये चार निक्षेपके वमकौ विध्वंस ही भयौ। जैसे सूर्यके आतपतैं अन्धकार उडि जाइ तैसे इहा ये सब विलय जाइ या परमात्मामें जे जे वस्तु नय प्रमान निक्षेपा साधक हैं तेऊ या परमात्माके अनुभव विषै बाधक भए। जौलौं नय प्रमाण निक्षेपाकौ परिवार होइ, तौलौं शुद्ध अनुभौव न होइ, तातें ये बाधक है ताकी रागद्वेषकी कौन बात कहिये। एतौ इहा कहा पाइयै॥ १०॥

अथ—जीव व्यवस्था वचनद्वार ॥ अडिल्ल छन्द ॥

आदि अन्त पूरन सुभाव-संयुक्त है,
पर सरूप पर जोग-कल्पना मुक्त है।

सदा एक रस प्रगट कही है जैनमें,
शुद्धनयातम वस्तु विराजे वैनमें ॥ ११ ॥

अर्थ—अब अनुभव्रम शुद्ध स्वरूप जीव लख्यौ, सो ताकी व्यवस्था वचन गोचर जैसें होइ तैसें कहे हैं—आदि तें निगोद, अन्त सौ सिद्ध अवस्था, इतनें वीचि चेतनारूपी अपने पूरन स्वभाव करि सयुक्त है। अरु या चेतनातें पर स्वरूप सो जड स्वरूप, अरु परजोग सौं पुद्गल सयोग, ताकी कल्पना विचारना ताहू करि मुक्त है। आदि अतलौ एही स्वभावमें है। सदा एक चेतना रसमई प्रगट वस्तु है, सो शुद्ध निश्चय नयकौ आलम्बन लियो जैन आगममें कही, अरु जैसी कही तैसी वचन व्यवहारमें ही विराजै ॥ ११ ॥

अथ हितोपदेश ॥ कवित्त छद ॥

सद्गुरु कहै भव्य जीवनसौं,
तोरहु तुरत मोहकी जेल।
समकित रूप गहौ अपने-गुन,
करहु शुद्ध अनुभवकौ खेल ॥
पुद्गलपिड भाव रागादिक,
इन्हसौं नहीं तिहारौ मेल।

ये जड प्रगट गुपत तुम चेतन,
जैसें भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

अर्थ—अब ऐसोई स्वरूप वचनद्वारकर गुरु हितोपदेश रूप कहे है—भव्य जीवनि सौं सद्गुरु उपदेश देहै, अहो-भव्य-लौंको ! सवान होहु ! मोहको बन्ध तोरो, अरु तुहारो अपनो समकित गुन है सोई गहो, अरु सोई गहिकै अपने शुद्ध अनुभवको पेल करहु । अरु ये देपिनैमैं सरीर हैं, पुद्गल पिंड है, अरु कर्महू पुद्गल पिंड है, अरु या पुद्गल पिंडके राग द्वेषादिक भाव सौं स्वभाव है, इन वस्तुनीं तुहारो मिलाप नहीं छै, जु एतो वस्तु जड है अरु प्रगट है अरू तुम्ह चेतन हौ, अरु गुप्त हौ, तब या पुद्गल पिंडको अरु तुम्हारा भिन्नताहो ठहरो । जैसे तोय कहत पानी अरु तेल ये भिन्न है ॥ १२ ॥

अथ–ग्याता विलास ॥ सवैया ३१ सा ॥

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखै सरीर-घर,
भेदग्यान दृष्टिसौं विचारै वस्तु वासतो ।
अतीत अनागत वरतमान मोहरस,
भीग्यो चिदानंद लखै बंधमें विलासतो ॥

बधकौ वीदारि महा मोहकौ सुभाउ डारि,
आतम कौ ध्यान करैं देखैं पर गासतौ।
करम कलक-पक रहित प्रगट रूप,
अचल अराधित विलौकैं देव सासतौ॥१३॥

अर्थ—अब ऐसो उपदेश मुनिकै पुरुष ग्याता भयौ, ताकौ विलास कहै हैं—कोऊ बुद्धिवत सम्यग्दृष्टी मनुष्य हैं सो अपने सरीरकौ पर करि निरषैं अरु जड चेतनकौ भिन्न-भिन्न स्वभाव जानिवौ सु भेदग्यान कहियें। तामैं दृष्टि देकरि वस्तुकौ सासता कहैं तैं भाव स्वभाव सोई विचारैं, अतीत कालविषैं, अनागत काल विषैं, वर्त्तमान-काल विषैं मोह-रसमैं भोग्यौ थकौ कर्म-बंधमें विलास करतौ, अपने चिदानद परमात्माको लखैं। ता पीछैं क्रमि क्रमि बधकौ विडार तौ ही जाइ। अरु मोहकौ स्वभाव डारतौ हो जाइ। ऐसौ कार्य करि आपनें आतमा ही कौ ध्यान करैं, अरु अनुभवमैं प्रकाश-रूप देषौं, तब करम कलक सोई पक कहतैं कर्दम ता करि रहित प्रकट-रूप अचक अराधित, सो सर्व बाधा रहित, ऐसो शाश्वतदेव आपहा आप देषैं॥१३॥

अर्थ—गुनगुनी अभेद कथन व्यवस्था॥सवैया २३ सा॥

शुद्ध-नयातम आतमकी,
अनुभूति विज्ञान-विभूति है सोई।

वस्तु विचारत एक पदारथ,
नामके भेद कहावत दोई ॥
यौं सरवग सदा लपि आपुहि,
आतम ध्यान करै जब कोई ।
मेटि अशुद्ध विभाव दसा तव,
सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥१४॥

अर्थ—शुद्ध अनुभव है सो गुनहै अरु आत्मा गुनी है। अब या गुन गुनीकी जैसे अभेद स्वरूप है तैसी अभेद अवस्था कहि दिखावै है—शुद्ध नयातम कहतैं शुद्ध निश्चै स्वरूप आत्माकी अनुभूति कहतैं अनुभव है, सोई विज्ञान विभूति कहत विशेष-रूप ग्यान संपदा है। इहां आत्मा गुनी है, अनुभव ग्यान गुन है। अब दोनू वस्तु कौन है? ऐसैं जो विचार कीजै तौ एक ही पदार्थ आप है। आत्मा पदार्थ आप है अरु एक ही पदार्थमैं सो गुन गुनी ऐसै दोनू नाम भेद कहा है। ऐसैं सरवाग कहतैं सर्वप्रकारैं आपुहो कौ गुन गुनी-रू लखिकै जब कोऊ आतम ध्यान करै तब अशुद्ध विभाव दशामैं यहु याको गुन अरु यहु इनको गुनी ऐसी विभाव द मेटिकै सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होइ ॥ १४ ॥

अर्थ—ज्ञाता चितवन स्वरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

अपने ही गुन परजाय सौं प्रवाहरूप,
परिन यौं तिहूँ काल अपने आधार सौं ।
अन्तर बाहर-परकाशवान एकरस,
खिन्नता न गहै भिन्न रहै भौ-विकार सौं ॥
चेतना के रस सरवग भरि रह्यौ जीव,
जैसे लौन काकर भर्यौ है रस खार सौं ।
पूरन सरूप अति उज्जल विग्यान धन,
मोकौं होहु प्रगट विसेस निरवारसौं ॥१५॥

अर्थ—अब या ही बात ज्ञाता-लोक जैसें मनमैं चिन्तवैं, तैं सोई स्वरूप कहै है—यहु जो कोऊ आतमा कहावै सो सौ विग्यान धन है, विशेष ग्यान मई है, सो तीनु हो-अतीत, अनागत, वरतमान काल विषै प्रवाह रूप करि, सौ अविछिन धारायें, अपने ही गुन पर्याय करि, सौ अपने ही ग्यानादिक गुनके अवस्था भेदतामौं, अरु अपने आधारमौं परके आश्रय विना परिनयौ रहै है। अरु या विग्यान-धनकी ऐसी महिमा है तासौं माहि बाहिर एक रस, सौ एक चेतना रस लिये पर-

काशवान यौ आपुकौ जानेसौ अन्तर प्रकाश, बाहर वस्तुकौ जानैसौ बाहिर प्रकाश। ऐसे कार्यमें खिन्नता गहै नहीं। अरु भर विकारसौं भी भिन्न रहे। सरवाग कहते सर्वप्रदेशनि विषैं चेतनाके-रससौ जीव भर रह्यौ है। याकौ दृष्टान्त कहे है—जैसे लौनकौ काकर अरु क्षार लौन रसमें भरि रही है, तैसे चेतना-रससौ जीव भर्यौ है। ऐसौ पूरन मरूपसौ अखंडित, अति हो उज्जल, ऐसौ चिद्घान धन पूर्ण वरयानी तैसी मोक्ष प्रगट हो है। विशेष निरधारमौं। सो समस्त विभाव दसाकौ निवारन करिकै। ऐसौ ग्याता मनमैं अरु याही मे थिर होइ ॥ १५ ॥

अर्थ—द्रव्य पर्याय अभेद कथन व्यवस्था ॥ कवित्त-छन्द

जाहि ध्रुव धर्म कर्मछय लच्छन,
　　　　सिद्धि समाधि साधि पद सोई।
सुध्दोपयोग जोग महि मंडित,
　　　　साधक ताहि कहे सब कोई ॥
यौं परतच्छ परोक्ष रूपसौं,
　　　　साधक साधि अवस्था दोई।
दुहौ कौ एक ग्यान सचय करि,
　　　　सेवै सिव वछिक थिर होई ॥१६॥

अर्थ—यहा विग्यान घन है सो तौ द्रव्य है अरु ग्याता कहावै सो पर्याय है। पै विग्यान घन अरु ज्ञाता येही हैं, तातैं द्रव्य पर्याय कौ अभेद दिखावै है—जहा सकल कर्मकौ क्षय लखियै ऐसी जहा ध्रुव धर्म करता निश्चल स्वभाव है ऐसी कोऊ सिद्धि समाधि कहतैं सिद्ध ऐसें होनौ सो तौ पद साध्य कहावै। अरु शुद्ध उपयोग लीनौ थकौ, अरु मन वचन काम, जोग मै मंडित थकौ तीर्थंकर साधु प्रमुख पर्याय लियै रहै है, ताकौ सबकौऊ साधक कहै हैं। ऐसौ साधकपनौ प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। अरु साध्यपनौ परोक्षस्वरूप हैं। ऐसें दोनू अवस्था लियै एक विज्ञान घन है ये मिर बाऊकमी मोक्षको चालनहार दुहूँको सो साधक साध्य दोनु ही कौ एक ज्ञान सचय करि सेवो ? सो दोनु पदमैं विज्ञान-घन एक है। ऐसें यासौ सेवामैं थिर होइ रहै ॥ १६ ॥

अथ—द्रव्यगुन पर्याय भेद व्यवस्था कथन ॥कवित्त छंद॥

दरसन ग्यान चरन त्रिगुनातम,
समल रूप कहिये विवहार।
निहचै दृष्टि एकरस चेतन,
भेदरहित अविचल अविकार॥

सम्यक दरस प्रमान उभै नय,

निर्मल समल एक ही वार।

यौं समकाल जीवकी परिनति,

कहैं जिनेद गहै गनधार ॥ १७ ॥

अर्थ—शिष्य पूछै। स्वामी ऐसी तुम अमेद व्यवस्था कही तौ यह मेद व्यवस्था कौन नयके बलतैं कहत हौ, गुरु कहै—व्यवहार नयतैं द्रव्य गुन पर्यायरूं भेद व्यवस्था है। दर्शन, ज्ञान चरण, कहते चरित्र ये तीनौं आतमा हीके गुन हैं, या सरूप सौ जु व्यवहार कहियै सो समल रूप है, अरु इहि निश्चय दृष्टि देखत ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र एक चेतना ग्यानई देखियै है। अरु चेतना ही चतन हैं, तातैं मेद रहित अविचल अविकार ये निर्मल रूप है उभै नय कहतैं ये दौनु ही नय, निश्चय अरु व्यवहार नय सम्यक दशामैं प्रमान हैं। नय है मोती अभिप्राय विशेष है, तातैं एकही वार अवक्तव्य रूप निर्मल समल रूप जानियै। ऐसे समकाल ही निर्मल समलनी थकी परिनति ह्वै रही सौ जिनदेव ही कहै, अरु गनधरदेव ही गहै ॥ १७ ॥

अथ-व्यवहार कथन ॥ दोहरा ॥

एकरूप आतम दरव, ग्यान चरन दृग तीन।
भेदभाव परिनाममौं, विवहारै सु मलीन ॥ १८ ॥

अर्थ—अब ग्यान दर्शन चारित्रकी त्रिकहै सो व्यवहार नय है ये कहै सौ—आतम द्रव्य है सो एक रूप है, एकता लियै है। ग्यानदर्शन चारित्र ये तौ तीन है, ये तीनों ही भेद-भाव परिनाम है, तब एक ही विषै तीन भेद भए, तातैं ये व्यवहार नयतै समलरूप भयौ ॥ १८ ॥

अथ निश्चै स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

जदपि समल विवहारसौं, पर्यय-सकति अनेक।
तदपि नियत नय देखियै, सुद्ध निरंजन एक ॥१६॥

अर्थ—अब निश्चै नय करिकै निर्मल स्वरूपमें ही ध्याइबौ भलौ है ये कहै है—जो पै व्यवहार नयकी अपेक्षामें आतमामें अनेक शक्ति अनेक पर्याय पाइयै, तातैं समल है, तो निश्चै नयकी अपेक्षातैं शुद्ध निरंजन एक ही देखियै ॥ १६ ॥

अथ-शुद्ध कथन ॥ दोहरा ॥

एक देखियै जानियैं, रमि रहियै इक ठौर।
समल विमल न विचारियै, यहै सिद्धि नहिं और ॥२०॥

अर्थ—अब शुद्ध-रूपही उपादेय है यह कहे हैं—शुद्ध चेतनामई, ऐसे एकरूप ही दरसिये ? यों तौ दर्शन एकरूप ही जानिये ! सौ ग्यान । याही मैं रमि रहिवौ ए चारित्र । नयकी अपेक्षा करि समल विमल रूप विचारिये ही नाही, याही सिद्धि कहिये । और स्वरूपमैं सिद्धि नहीं ॥ २० ॥

अथ अनुभव प्रशंसा ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाकै पद सोहत सुलच्छन अनन्त ग्यान,
विमल विकाशवत ज्योति लहलही है ।
यद्यपि त्रिविध रूप विहारमे तथापि
एकता न तजै यों नियत अग कही है ॥
सो है जोव कैसेंहो जुगतिकै सदीव ताके,
ध्यान करिवैकौं मेरी मनसा उमही है ।
जातैं अविचल रिद्धि होतु ओर भांति सिद्धि,
नाहीं नाहीं नाहीं यामें धोखो नाहीं सही है ॥२१॥

अर्थ—अब ऐसे स्वरूपकौ अनुभव थिर रहिवौ दुर्लभ है । पै ज्ञाताकौ मनोरथ कहे हैं—जाके पद रूहव जाके विषै अनन्त ज्ञानरूप स्वलक्षण कहतं वस्तुको लक्षण सोहतु है ।

…रू निमल विकाशवत ज्योति कहतैं आपकौ परकौ जानवौ, …ाही ज्योति जामैं लहलही है। अरु व्यवहारमे यद्यपि कहतै …ी पै त्रिविधिरूप है—बाह्यात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा …ऐसे त्रिविध रूप है। नियत अग कहतें निश्चै नयकी अपेक्षातैं …एकता तजै नाहीं, सौ एक रूप ही कह्यौ। सोतौ ऐसौ पदार्थ …ीन है। अब कैसे हौ जुगति करिकै? सौ जुगति आगैं कहैंगौ …ा करिकै सदीव कहतैं निरन्तर ताके ध्यान करिवेकौ मेरी हू …नसा उम ही रही है। जाहीके ध्यान तैं अपनी ऋद्धि ज्ञान, …र्शन, चारित्र रूप अविचल होतु है। याही भाति सिद्धि है। …रु और भाति सौ सिद्धि नाहीं नाहीं नाहीं, यामैं धोखौ …ाहीं, सु झूठ नाही, याही बात सही है ॥ २१ ॥

अथ ज्ञाता की व्यवस्था वरनन ॥ सवैया २३ सा ॥

…कै अपनौ पद आपु सभारत,
कै गुरुके मुखकी सुनि वानी।
…भेद विग्यान जग्यौ जिन्हिकै,
प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥
…भाव अनत भए प्रतिबिम्बित,
जीवन मोख दशा ठहरानी

ते नर दपन ज्यों अविकार,
रहै थिररूप सदा सुखदानो ॥२२॥

अथ—भेद विज्ञान तें याकों अनुभव होइ, तातें मोक्ष होइ इहु कहै है—कै तौ अपनौ पद, अपनौ निरालय स्वरूप आपही सभारि लै है। आपुही तें ग्र थी भेद करि आपुकौं पहिचानै है। कै तो गुरुकै मुखको-वानी सुनिकै अपनपौ सभारै है। अरु जिनकै घटमैं जड चेतनको भेद गिग्यान जाग्यौ, तातें स्वविवेक कला कहतें अपनें चेतन स्वरूपकी न्यारीही कला, ताकी राजधानी, सौ ताकी ईस्वरपनी जाकै घटमैं प्रगट्यौ। अरु याकी राजधानीमैं अनत भाव पदार्थ प्रतिबिम्ब भए—ताके ग्यायक भए, यातौ जीवन ही मोक्ष दशा ठहरानी, मुक्त स्वरूप ही भए। अरु यामैं अनत भाव प्रतिबिंबित भए, तौहू समलरूप न भए, तातें वे मनुष्य दर्पन, आरीसा ज्यौं निकार रहित भए, थिररूप भए, सबके सुखदायक भए ॥२२॥

अथ भेदग्यान प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

याही वर्तमान समै भव्यनिकौ मिटो मोह,
लग्यौ है अनादिको पग्यौ है कर्म मलसौं ।

उदौ करौ भेदज्ञान महा रुचिको निधान,
उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसौ ॥
जाते थिर रहै अनुभौ विलान गहै फिरि,
कबहौं अपन पौ न कहै पुद्गल सौ ॥
यहै करतूति यौं जुदाई करै जगत सौं,
पावक ज्यौं भिन्न करै कंचन उपल सौं ॥२३॥

अर्थ अन भेद विग्यानकी उत्पत्ती अरु भेद विग्यानकी महिमा कहै है—याही वर्तमान काल विषै भव्य-लोगनिकौं मोहु भ्रम मिटि जावौ। जोई मोह-कर्म आत्माकै अनादि हीकौ लग्यौ है, अरु कर्म मलसौ पग्यौ है, सौ व्यापि रह्यौ है। अरु मोह भ्रम मिटिवैतैं, भेदविग्यान है सौ उदौ करौ, उदै होहु पै भेदविग्यान कैसो है सौ कहै है। महारुचिको निधान है या भेदविग्यान्मैं महारुचि पाइयै है। अव महारुचिकौ कारव है। या भेद विग्यानतै भारो कहतैं गरिष्ट उज्यारौ होतु है अन उजियारोहू कैसौ ? दुंद-दलसौ, सो घाम धूम सौ न्यारौ जातैं सा भेद विग्यानतैं दुंद-दशा सौं छूटि थिरतामैं रहै। अ

फिरि या भेदविग्यान पायैतैं सरीर कर्मादिक पुद्गल रूपी जानिकैं, याकौं अपनयौं न कहै, अत्मा रूप न कहै। याहै करतुतिसौं याही भेदविग्यानकी क्रिया यौंही जगत सौं जुदाई करै, सौ पाच द्रव्यसौं जुदाइ करै। इहा दृष्टात दिखावै है— जैसो पावक कहत्तैं अगनि है सौ उपल कहियै माटी पाषान तासौं कचन भिन्न करै ऐसे ॥२३॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन पर ॥ सवैया ३१ सा ॥

बनारसी कहै भैया भव्य सुनौ मेरी सीख,
कैहौ भाति कैसे हूंकै ऐसौ काजु कीजियै।
एकहौ मुहूरत मिथ्यातकौ विधुंस होइ,
ग्यानकौ जगाइ अंस हंस खोजि लीजियै॥
वाहीकौ विचार वाकौ ध्यान यहै कौतूहल,
योही भरि जनम परमरस पीजियै।
तजि भव-वासकौ विलास सविकाररूप,
अन्तकरि मोहको अनतकाल जीजियै ॥२४॥

अर्थ—अब शुद्ध जीव द्रव्यमैं रहिवौ यौंही परमार्थ है यातैं सिक्षादि है-बनारसीदास कहै है—अहो! भैया भव्य, मेरी

सोय सुनौं। कैहा भांति करिकैं, कैम होकै, कहवै कोऊ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पायकें, ऐसो कार्य कीजै। सो कार्य कैसो? यहु कहै है। एक महुरतकाल माहि मिथ्यात मोहको निध्वम होइ, अरु ग्यानको जम जगाइ लीजै, अरु मोह हस, ऐसी ध्वनि करितौ हस, सौ आत्मा खोज लीजै। पीछैं वाहीको लक्षण विचार कीजै। पीछैं वाको पहिचानिकैं वाहीको ध्यान कीजै। अरु याकी कला खोजगौ, कौतूहल खेल करियो करियै। यौंही जनम भरिसो ज्ञानज्योत परम रस पीजै। याही भांतितैं सनिकार रूपसौ फैलि रह्यो। ऐसी भव्य वासको विलास सौ समार निलास ताको तजिक अरु मोहको अन्त करिकैं अनत-काल लौं जीजियै। इतनें याही विधि सिद्धि होइयै ॥२४॥

अथ तीर्थंकरको स्तुति बाह्यरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाकी देह-दुतिसौं दसौं दिसा पवित्र भई,
जाके तेज आगैं सब तेजवंत रुकै हैं।
जाकौ रूप निरखि थकित महा रूपवंत,
जाकी वपु-वाससौं सुवास और लुकै हैं॥
जाकी दिव्य-धुनि सुनि श्रवणको सुख होतु,
जाके तन लच्छन अनेक आइ ढुकै हैं।

तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन,
निहचै निरखि सुद्ध चेतनसौं चुके है ॥२५॥

अर्थ अव चेतन महिमावान भयें पुद्‌गल भी महिमावान् हो
यातें कवीश्वर वाह्यरूप पुद्गलकी माहिमा दिखावती परमात्मा
की महिमा कहै हैं—जाकी देह द्युति ऐसी परी जातें द
दिसा पवित्र भई, सो सोभायमान भई, अरु जाके तेज आ
सबही तेजवत छिप रहे, इतने सब देवता मद तन भए। अ
जाकौ रूप निरखिकै महारूपवत पचानुत्तरवासी देवता भि
थकित व्है रहे, जाकी सरीर वासनों, और सुवास वस्तु
लुप गई। जाकी दिव्यधुनि सुनिकै श्रवणको सुख होतु है
भव्य अभव्य सवही कौं वानी मीठी लागै। अरु जाकै
शरीरमें अनेक शुभ लक्षण आन ढुके हैं। ऐसे श्री जिनराज
है, पै याकै एते गुन कहे सौ अशुद्ध व्यवहार नय आश्रय लि
कहे। पै निश्चै दृष्टि देखत ये जो गुन कहे सौ शुद्ध चेतनकै
सौं न्यारे ही कहे ॥२५॥

अथ जिन स्तुति व्यवहाररूप ॥ पुन: सवैया ३१ सा ॥

जामें बालपनौ तरुनापौ वृद्धपनौ नाहि,
आयु परजत महारूप महाबलु

विनाही जतन जाके तनमें अनेक गुन,
अतिसै-विराजमान काया निरमलु है ॥
जैसैं विनु पवन समुद्र अविचलरूप,
तैसे जाको मन अरु आसन अचल है ।
एसौ जिनराज जयवंत होउ जगतमें,
जाकी सुभगति महा मुगतिको फलु है ॥२६॥

अर्थ—अब बहुरी हू व्यवहार नय लियौ । जिन स्तुति करै है—जामैं आठ परजत कहैं, जनम सो लेकरि सम्पूर्ण आउमालो, महारूप अरु महाबल ममान हो रहै । पुनि बालपनौ, तरुन पनौ, वृद्धपनौ ये तीनौ अवस्था भेद, याके रूपमें नलमें भेद न पावें । विना ही जतन जाकै सहज सुभाव ही मैं जाके तनमैं अनेक गुन आन बसें, अरु जाके ढिग ३४ अतिशय गुन विराजमान हुई रहै । अरु जाकी काया, प्रस्वेद रहित निर्मल रहै है, जैसे पौनकी झकोर विना समुद्र अचल रूप होइ रहै, तैसे ताको मन अचल है । इहा गति अपेक्षा विना आसन अचल रह्यौ है । पै निरंतर अचल हो आसन ये असमर्थ है । ऐसौ जिनराज देव है सौ जगतमें जयवंत होउ । जाकी सुभगति कहतें जु भली भक्ति करियै, सौ वौ, महा मुक्ति फल देनहारी है ॥ २६॥

अथ यथार्थ कथन ॥ दोहरा ॥

जिन पद नहीं सरीर कौ, जिनपद चेतनमांहि ।
जिनवर्नन कछु और है, यह जिनवर्नन नाहि ॥२७॥

अथ—व्यवहार स्तुति करिकै सत्यारथ वात कहै है—ये जु जिन नाम है सो जीव विपाकी है। पै पुद्गल विपाकी नाही। तातैं जिन पद सरीर का नाही। जिनपद चेतन ही कौ है। यातैं जिनेश्वरकी स्तुति कछु और कहावै है। ए यहतौ पूर्वे जिनेश्वर की स्तुति कहा, सो जिन स्तुति नाही है ॥ २७ ॥

अथ जड चेतन भिन्नभावदृष्टांत कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

ऊचे ऊचे गढके कगूरे यौं विराजित है,
मानो नभलोक लीलिनेकों दांत दियो है।
सोहे चहू ओर उपवन की सघनताई,
घेरा करि मानो भूमिलोक घेरि लियो है ॥
गहरी गभीर खाई ताकी उपमा वनाई,
नीचो करि आनन पाताल जल पियो है।
ऐसो है नगर यामें नृपको न अंग कोऊ,
यो ही चिदानन्द सो शरीर भिन्न कीयो है ।२८

अर्थ—यहां सरीर जड है अरु आत्मा चेतन है ये दोनु मान भिन्न स्वभावमें है, याकौ दृष्टांत कहै है—जैसै काहूगढकै ऊंचे ऊंचे कगुरे ऐसे विराजत हैं। इहां उत्प्रेक्षा कवीस्वर करै, ये गढके कागुरे नहीं हैं? मानौं इहां नगर मैं नभलोक कहतें स्वर्गलोक ताके लीलिवेकौ, मों लोलिवेकौ दाव दियें है। स्वर्गलोककौं मानौ गिलि जाइगौ। अरु याकै चहूं और मौ चारुतरफली उपवनकी सो बागबागेकी सघनताई ऐसी सोहि रही है। इहां हों कवीस्वर उत्प्रेक्षा करें। मानौं भूमि लोक सो मनुष्य लोक, ताकौ घेराकरि समस्त घेरी लीनौ है, इतने समस्त मनुष्यलोक, इहां हो घेर राख्यौ है। अरु या नगरकै चौक फेर गहरी गम्भीर, सौ बहुत ऊंडी खाई बनी, ताकी उपमा ये बनै है। मानौं या नगर नैं नोची आनन करि पाताल जल पियौ। इतनें पातालकौ पानी सोमा सोसि लीनौ। ऐसें तीनोंलोक जीतै। ऐसौ नगरकौ वर्नन कियौ। पै या नगर वर्ननमैं नृप-राजाके अङ्गकौ वर्नन कोऊ नाहीं। इतनें नगरकौ वर्नन कियौ। राजाकौ वर्नन भयौ नहीं। या चिदानन्दसौं सरीर भिन्न कियौ है ॥२८॥

अथ—तीर्थंकरकी स्तुति स्वरूपकथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जामैं लोकालोकके सुभाव प्रतिभासे सब,
जागी ग्यान सकति विमल जैसो आरसी ।
दर्शन उद्योत लियो अंतराय अन्त कीयो,
गयो महा मोह भयो परम महारिसी ॥
सन्यासी सहज जोगी जोगसौं उदासी जामैं,
प्रकृति पचासी लगि रही जरि छारसी ।
सोहै घट मंदिरमैं चेतन प्रगट रूप,
ऐसो जिनराज ताहि वंदत बनारसी ॥२६॥

अर्थ—अब तीर्थंकर पद लिये जु वस्तु है ताके स्वरूपको वर्नन करै है—जामे लोक अरु अलोकके स्वभावसो षट् द्रव्य भाव प्रतिभास रहे। ऐसी ग्यानकी सक्ति निर्मल जगी है। जैसे आरसीमैं भाव पदार्थ भासै तैसी भांति जाके ग्यानमे सबही भासै है, ये ८ ज्ञानावरण गयौ अरु दर्शनावरण गयै तैं केवल दर्शन उद्योत भयौ। अरु अन्तराय कर्मको नास कीनो, अरु अनन्त वीर्यधारी भयो, महामोह कर्म तोड गयो, परम उत्कृष्ट महाऋषि भयो, यथा ख्यात चारित्रसो सन्यास ताको धरनहार

ग्यान दर्शन चारित्र ये सहज जोग ताकौ ४० मन १ वचन २ काय ३ जोगसौं उदासी भए। अरु अघातिक ४ कर्मनि की ८५ प्रकृति रही है सौऊ जरजरिकै ठारसी लगि रही है। अरु जाके घट माहि रमैं, चेतन देव प्रगट ही सोभि रह्यौ है। प्रत्यक्षरूपी भयौ। ऐसौ श्रीजिनराजदेव ताहि बनारसी दास वदतु है। ए निश्चै स्तुति कहियं॥ २९॥

अथ—निश्चै व्यवहार कथन॥ कवित्त छद॥

तनु चेतन विवहार एकसे,
निहचै भिन्न-भिन्न है दोइ।
तनु अस्तुति विवहार जीवथुति,
नियत दृष्टि मिथ्या थुति सोइ॥
जिनसो जीव जीव सो जिनवर,
तन जिन एक न माने कोइ।
ता कारन तनकी अस्तुति सौ
जिनवरकी अस्तुति नहि होइ॥ ३०॥

अर्थ—ऐसे शुद्ध चेतनकी स्तुतिको दृष्टांत दिखायकै अब निश्चै व्यवहार कौ निर्णय करेहै—तनु कहतै शरीर अरु

चेतन कहिये आत्माको दोउ व्यवहारमें एकसे हैं। अरु निश्चै दृष्टि देखिये तो दोनु भिन्न भिन्न हैं। यातें तनुकी अस्तुति करतौ जीवकी स्तुति करै सो व्यवहार है। अरु नियतदृष्टि कहतें निश्चै देखत सो तौ मिथ्या स्तुति है। ये जु जिन पद कर्म है, सो जीव विपाकी है, पै पुद्गल विपाकी नाहीं, तातें इहा जु जिन कहावै सो जीव है, अरु जीव सोऊ जिन है। पैं तनु जिन एक करन मानिये ताहोके कारन तनकी अस्तुति किया जिनवरकी अस्तुति होइ नाही ॥३० ॥

अथ—वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांत करि दिढावतु हैं
॥ सवैया २३ सा ॥

ज्यों चिरकाल गडी वसुधा मधि,
भूरि महा निधि अन्तर गूझी।
कोऊ उखारि धरै महि ऊपरि
जे दृगवंत तिन्हें सब सूझी ॥
त्यों यह आतमकी अनुभूति,
पयो जड भाव अनादि अरूझी।
नै जुगतागम साधि कही गुरु,
लच्छन वेदि विचच्छन बूझी ॥ ३१ ॥

अर्थ—शिष्य पूछै ! ऐसौ अनुपम महिमा धारक जीव दमा सरीरमैं कैसै पाइये। तब गुरु हूं सौ दृष्टात दिखायकैं न्यारी ही अदभुतरूप वस्तु या शरीरमैं हो दिढावै है—जैसैं कोऊ भूरि महानिधि कहतैं धनीमी लक्ष्मी घने कालतैं धरती मीतरि गडो रही, सौ अन्तरगुप्त रही। पीछैं कोऊ नै निधानकौं उखारिकैं धरती ऊपर धरै, तब जे दृगवन्त है सौ नेत्रवत हैं तिन्हैं सब सूझन लागी। तैसैं यहु आत्माकी अनुभूति कहतैं अनुभवसौ अनादिकालतैं जडभावमैं, सो पुद्गलद्रव्य अरूझ रही है, सोई अनुभूति नय जुगति, सौ नय सहित आगम सिद्धान्त, तातैं ये गुरु साधु कही, साधिनैं लायक कहो। तब विचक्षण पुरुष लक्षण सूझिकै सब जानी ॥ ३१ ॥

अथ भेदग्यान स्वरूप कथन धोबीके दृष्टात ॥ सवैया ३१सा ॥

जैसै कोउ जन गयौ धोबीके सदन तिन्ह,
पहिरचौ परायौ वस्त्र मेरो मानि रह्यौ है।
धनी देखि कह्यौ भैया यहु तौ हमारौ वस्त्र,
चीन्हौ पहिचान सही त्याग भाउ लह्यौ है ॥
तैसै ही अनादि पुदगलसौ, सयोगो जीव,
सगके ममत्त्वसौ विभाव तामैं वह्यौ है।

भेदग्यान भयौ जब आपौ पर जान्यौ तब,
न्यारौ परभावसौं स्वभाव निज गह्यौ है ॥ ३२ ॥

अर्थ—अब यातकौ भेद पायें उपादेय वस्तुकौ उपायकौ उपादान करिवौ आवै ताकै परि धौबीकौ दृष्टांत दिपावै है—जैसै कोऊ मनुष्य है सु धौबीके सदन कहता घरा गयौ, अरु पराया वस्त्र भूलिमैं लीनौ, अरु पहिरयौ, पै अपनें मनमैं यहु वस्त्र मेरो ही है ऐसैं मानि रह्यौ है। इतनेंमे वा वस्त्रकौ धनी मिल्यौ। दखिक कह्यौ, भैया! जु तुम जौ वस्त्र पहिरयो है सोतौ वस्त्र हमारो है। तब वाहूनें अपनी पहिचानि निरखी, निरखें परायौ ही चीन्हौ। वही सो तबही वा वस्त्रकौं त्याग भाव हुवौ। इतने वस्त्र छाड्यौ। तैसैंही जीव अनादि-कालतें पुद्गल सयोगी भयौ, इतनें शरीर कर्मसौं सयोगी जीव अनादि कालको है, यातै सगके ममत्वसौं विभाव तामैं उलटें भावमैं रह्यौ रह्यौ। अरु जब जड चेतनकी भिन्न ताकौ ग्यान भयौ तब आपनौऊ स्वरूप जान्यौ, अरु परकौऊ स्वरूप जान्यौ, अरु जानिकें पर भावसौ न्यारौ भयौ, अरु अपनौ स्वरूप गह्यौ ॥३२॥

अथ निश्चै स्वरूप कथन ॥ अडिल्ल छंद ॥

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं ।
अपने रससौं भर्यो आपनो टेक हौं ॥
मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमकूप है ।
शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ॥२३॥

अर्थ निश्चै अपनौ स्वरूप पायौ, तब ग्याता एमैं विचारि वा लागौ सो कहै है—विचच्छन पुरुष कहै हैं—हौं सदा एकत्व लिये रहौ हौं । और मेरौ सदाई कोऊ नाहीं । अपनौ चेतना रस सौं भर्यो, आपने टेकसौं, सो अपने आधारसौ रहौं हौं, मेरौ औरको आश्रय नाहीं । अरु जौ भांति भांतिकौ मोह-कर्म प्रपंच है सौ मेरौ स्वरूप नाहीं है । अरु भ्रमरूप कूप सोऊ मेरौ स्वरूप नाहीं है । अरु शुद्ध चेतनाकौ सिंधु कहतै समुद्र सौ हमारौ रूप है ॥२३॥

अथ ग्यान व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

तत्त्वकी प्रतीतिसौं लख्यो है निजपरगुन,
दृग ज्ञान चरन त्रिविधि परिनयौ है ।

विसद विवेक आयौ आछौ विसराम पायौ,
आपुहीमें आपनौ सहारौ सोधि लयौ है ॥
कहत बनारसी गहत पुरुषारथकौं,
सहज सुभावसौं विभाव मिटि गयौ है ॥
पन्नाके पकाये जैसे कंचन विमल होतु,
तैसें शुद्ध चेतन, प्रकाशरूप भयौ है ॥३४॥

अर्थ अब ऐसें अपने स्वरूप जानिवैतें कैसी अवस्था भई सो कहै है—एसी जीव तत्वकी प्रतीति पाई तातैं निज गुन ग्यानादिक अरु परगुणसौ और द्रव्यके गुन गति, स्थिति, अवगाह, वर्तना वर्णादिक ये सब लखे, लखिकै दृग कहते दर्शन, अरु ग्यान, चरन कहते चारित्र ये तीनौ गुनमैं परिनमि रह्यौ। विसद कहते निर्मल विवेक आयौ, तब आछौ विसराम पायौ थिरता पाई। आपुही मैं अपनौ सहारौ सौ सहज भाव सोऊ सोधिलीनौ। इहा बनारसीदास कहै है। तब पुरुषारथ सौं आत्मरूपी अर्थ ताकौ गहिकै, सहज स्वभाव ही मैं राग द्वेष मोहरूपी विभाव अनादि कालकौ होतौ मिटि गयौ। इहा दृष्टांत कहै है— पन्ना कहियै पाकी इंटामा पोहा तामैं

पकाशी छतौ जैसे कचन निर्मल स्वरूप ह्वैकै प्रकाशरूप भयौ ॥३४॥

अथ वस्तु स्वरूप कथन पात्रके दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसैं कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरन,
आवति अखारे निसि आडौ पट करिकै ।
दुहू ओर दीवटि सभारि पट दूरि कीजैं,
सकल सभाके लोक देखैं दृष्टि धरिकैं ॥
तैसें ग्यान सागर मिथ्याति ग्रन्थि भेदि करि,
उमग्यो प्रगट रह्यो तिहू लोक भरिकै ।
ऐसो उपदेश सुनि चाहियै जगत जीव,
शुद्धता सभारैं जग जालसौं निकरिकै ॥३५॥

अर्थ—अब ये विभाव छूटत अपनी ऋद्धि आप प्रगट पावै ता परि पात्र नटवीकौ दृष्टांत कहै है—जैसे कोऊ नटिनी पात्र है सो आडो पट परीछि करिकैं अपने आभरन वस्त्र बनावै, बनाइकै रात्रिके समयमें अखारेमें आइ ठाढी रहै पै आडे पटतैं न देखियै । अब यामै दोनू तरफ दीवटि (ममाल) जगाइके परीछि पट दूर कीजै, तब समस्त सभाके लोक याकौ

दृष्टि धरिके शामायमान प्रगट दरह। तैसें सो ग्यानको सागर सो आत्मा मिथ्यात रूप आडे पर्वत प्रछन्न रह्यौ है, सो काहू समय मिथ्या ग्रन्थि भेदि करि प्रगट्यौ—उमग्यो सो ग्यान समुद्र विहो लोक मझिके रह्यौ। तीनों ही लोक यामें भासि रहे। अब गुरु कहै, अहो जगतवासी जीव! मे अपूर्व उपदश दीना सौ तुमे सुनिके जगजाल सौं निकरिके अपनो शुद्धता समारियै ॥ ३५ ॥ इति श्री समयसार नाटक की जीवद्वार निरूपन बालबोध रूप सम्पूर्ण भयौ ॥

इति जीवाधिकार समाप्त ।

अजीव द्वार

(२)

अथ अजीवद्वार वर्णन करै हैं ॥ दोहरा ॥

जीव तत्त्व अधिकार यह, कह्यौ प्रगट समुझाइ।
अब अधिकार अजीवकौ, सुनो चतुर मन लाइ ॥१॥

अर्थ—जीवतत्त्व जैसे स्वरूपसौं है ताकौ यहु अधिकार तैसे ही स्वरूपसौं लक्षण गुन बनाईकैं प्रकट समुझाइ कह्यौ। अब दूसरा अजीव द्वारमैं अजीवकौ अधिकार मुख्यपनै कह्यौ। अहो चतुर लोगो! चित्त लगाइकैं सुनियौ ॥ १॥

अथ ग्यानकी व्यवस्था कथन ॥सवैया ३१ सा॥

परम प्रतीति उपजाय गनधरकीसी,
अतर अनादिकी विभावता विदारी है।
भेद ज्ञान दृष्टि सौं विवेककी सकति साधि,
चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है

करमको नासकरि अनुभौ अभ्यास करि,

हियैमें हरखि निज उद्धता सभारी है।

अन्तराय नास गयौ शुद्ध-परगास भयौ,

ग्यानकौ विलास ताकौ बदना हमारी है ॥२॥

अर्थ—अब अजीवको भी जानिवौ ग्यान ही तैं होइ अरु या ग्रथमैं अभिधेय ग्यान ही है तातैं सम्पूर्ण ग्यानकी अवस्था कहै है—जिनग्यानतैं प्रथम ही सौ भव्य लोगनिके आतमामैं गनधरकी नाईं तत्त्वको परम प्रतीति उपजाई, अरु ममथ-स्तनाल ही अतरात्मामें अन्तर जो अनादिकी विभावता कहता मूढता सौऊ विदारी, अरु चेतन ए दोऊ भिन्न है ऐसौ भेदग्यान प्रगट्यौ, ताकी दृष्टिसौ विवेककी सकति साधी। इतने न्यारै-न्यारै गुन परयाय जानै, अरु न्यारै-न्यारै जनिरै चेतन अरु अचेतन जडताकी दशा निरवारी, सो ठीक कीनी, ता पीछै गुण श्रेणी धरिकै छिनछिन करमकी निर्जरा बढती करनै लागी, सौ करिकै अनुभव अभ्यास कीनौ। इतने सत्य प्रत्ययमैं बैठौ, अरु हियैमैं हर्ष पायौ, अरु अपनी सक्ति उत्कट कीनी। या करमौ होतैं अतराय-कर्म भाग्यौ अरु शुद्धरूप, इतने केवल रूप

प्रकाश भयौ। ऐसौ कोऊ क्रमि क्रमि करि ग्यानकौ विलास जाग्यौ, ताकौ हमारो वंदना है ॥ २ ॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

भैया जगवासी तू उदासी ह्वै के जगतसौं,
एक छय महीना उपदेश मेरो मानु रे।
और संकल्प विकल्पके विकार तजि,
बैठिकै एकत मन एक ठौर आनु रे ॥
तेरो घट सरतामें तूही है कमल ताकौ,
तूही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वैहै कछू ऐसौ तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यौ ही जानु रे ॥३॥

अर्थ—शिष्य पूछै—स्वामी जैसौ तुम ग्यानविलास कह्यौ सोवौ तैसोई, पै इहु पाइबो मुसकल। तापरि गुरु परमार्थकी शिक्षा दे है। अहो जगतवासी भैया! तू जगतसौं उदासी होऊ। जगत कहियै भवभ्रमण, अरु ताकौ कारण शब्द, रूप रस, गंध, फरस एक आचारग सबके वचनतैं ... तिन्हतैं उदासीनता धरि. अरु एक छै महीनालौं ...

मेरो उपदेश सुनिकै मानु। इहा छै महीना कहे सौ उपलक्षण मात्र है, तातै ये नियम नाहीं। अरु आर्त रौद्र ध्यानतै अग्यान दशातै सकल्प विकल्प बहुत उठे हैं, तातैं आतमा मैं विकार उपजे। तातैं ताके विकार तजि देहु। अरु एकान्त आसन बैठि, अरु मनको एक ठौर प्राणायामसैं ल्याउ। तेरौ घट कहता शरीर सोई सरोवर देखि, तामें एक कमल उज्जल देखि सोइ कमल तू ही है अरु तामैं तू ही उज्जल रूप लिया मधुक भ्रमर होऊ। याके सहस्र दलमैं विलास करहु। ये पिण्डस ध्यान लगाऊ। इतने कार्य किये ही अपने सुरूपकी प्रा न होइगी ऐसौ तू कब ही विचारैगौ सो जिन विचारियो, ऐसे ही प्राणायामतैं कमल कोष खुलै अपने स्वरूपकी प्राप्ति होग यौही जानियौ, याही भांति ज्ञान खुलै ॥ ३ ॥

अथ वस्तु व्यवस्था वरनन ॥ दोहरा ॥

चेतनवत अनत गुन, सहित सु आतमराम।
यातै अनमिल और सब, पुदगलके परिनाम ॥४

अर्थ—अब जीव अजीव एकसे है रहे सो न्यारे क करि दिखावै हैं—चेतनावन्त होइ अरु अनन्त गुन सहित प है सोतौ आत्माराम जानियै अरु जो इन लक्षणतै अनं घहतैं मिलै नाहीं सौ सब और परिनाम पुदगलके जानने ॥

अथ अनुभव प्रशसा ॥ कवित्त-छन्द ॥

जब चेतन सभारि निज पौरुष,
निरखै निज दृगसौं निज मर्म ।
सब सुखरूप विमल अविनासिक,
जानै जगत शिरोमणि धर्म ॥
अनुभौ करै शुद्ध चेतनकौ,
रमै स्वभाव वमै सब कर्म ।
यह विधि सधै मुगतिकौ मारग,
अरु समीप आवै शिव मर्म ॥५॥

अर्थ—अब ऐसी पहिचान अनुभव बिना न होइ, तातैं अनुभवकी प्रशसा करै है–इह जो चेतन है सो जब अपनौ पौरुष कहतैं पराक्रम सभारै, सभारिकै अपनी दृष्टि करि अपनौ मर्म—चेतनपनौ निरखै तब अपनौ धर्म कहतैं स्वभाव सुखरूप पनौ, अविनासी पनौ, ऐसें जगत सिरोमनिपनौ सहज रूपी जानै । यौही अनुभव कहतें नि सदेह यथार्थ ज्ञान है, सोई चेतनकौ शुद्ध करै । अरु योंही अनुभव है सो अपनै स्वभावमैं रमैं, अरु सब कर्म दूरि करै । याही भाति अनुभव सौं मुक्ति

मार्ग सिद्ध होइ, अर सिवमर्म कहवैं मोक्षकौ सुख समीप आवै ॥ ५ ॥

अथ अनुभव प्रशंसा ॥ दोहरा ॥

वरनादिक रागादि यहु, रूप हमारौ नाहि ।
एक वस्तु नहि दूसरौ, दीसै अनुभव माहि ॥६॥

अर्थ—अब याही अनुभवतैं चेतन विषै अपनौ अस्तित्त्व साधिकैं, परकी नास्तित्त्व साधै है—या सरीर विषै जो वरनादिक कहियै वर्ण, गंध, रस, रूप, स्पर्श। रागादिक कहवै राग, द्वेष विमोह है सो हमारौ आत्मरूप नाही। अरु या अनुभव विषै एक वस्तु कहतैं अपनौ एक आतमनाहीकौ रूप देखै, वै दूसरौ रूप अपनौ न देखैं ॥ ६ ॥

अथ वस्तु विचार ॥ दोहरा ॥

खांडो कहिये कनककौ, कनक म्यान संयोग ।
न्यारौ निरखत म्यानुसौं, लोह कहै सब लोग ॥७॥

अर्थ—अब जीव अजीव एक क्षेत्रावगाही भए, सो न्यारे कैसे लखावै, तापरि दृष्टांत कहै हैं—जैसैं कोऊ सोनहरी खडग कहियै है, तहा सोनैंकी जोगतैं तहनाल मुहनाल कडी करिकै म्यान परि संयोग है, अरु वह खडग म्यान सौं निका-

लरु न्यारो देखिये तो लाहकों खडग, ऐसे सब लोग कहै।
ऐसो दृष्टांत अन्तरात्मा माझिनी जानिये ॥ ७ ॥

अथ निश्चै व्यवहार रूप वस्तु विचार कथन ॥ दोहरा ॥

वरनादिक पुदगल दसा, धरै जीव बहुरूप।
वस्तु विचारत करमसौं, भिन्न एक चिद्रूप ॥८॥

अर्थ—अब बाह्य आत्मा अरु अन्तरात्मा कहावै सो व्यवहार नय सों है, अरु इनहामें परमात्मा सो तो निश्चै नयसों है, ऐसें वस्तुको विचार कहिये मसुलावै है—वरनादि कहतें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, ये पुद्गल दशा कहतें पुद्गल स्वभाव है, सो ताको जीव नई नई भांति धारै है, तातें जीव बहुरूपधारी नाम कहावै है। अरु कर्म है सोऊ पुग्दल है। पै वस्तुको विचार करतें ये जु कर्म है सो तो अजीव है, अरु चिद्रूप चिदानंद है, सोतो सर्वत्र एकस्वरूपी, या अजीवतत्त्व है, भिन्न ही है ॥ ८ ॥

अथ दृष्टांत कथन ॥ दोहरा ॥

ज्यों घट कहियें घीवको, घटको, रूप न घीव।
त्यों वरनादिक नामसौं, जडता लहै न जीव ॥९॥

अर्थ—अब व्यवहारको दृष्टांत दिखावै है—जैसे

माटाकौ घरौ कहिये । पै जैसे घराकौ रूप माटी है तैसे घराकौ रूप घोव नाही । तैसें वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, प्रमुख नाम कर्म अजीव रूप हैं, जड है, ताके संयोग मों जीव जडपनौ लहै नाहीं ॥ ९ ॥

अथ चेतनकौ साक्षात स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

निराबाध चेतन अलख, जानै सहज स्वकीव ।
अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमें जीव ॥१०॥

अर्थ—अब प्रत्यक्षपनौ निरालौ चेतनकौ ही स्वभाव कहै है—जाको काहु भांति खंडन न होइ, तातें निराबाध, ऐसौ चेतन पुरुष इंद्रिय ग्यानतें लख्यौ न जाइ, तातें अलख कहें। अरु जो स्वकीय कहतें अपनौ सहज स्वभाव ग्यातापनौ, ताकौ आपुही जानें। पै और ग्यानांतरतें न जाने, ऐसौ अचल स्वरूप लियें, आदि रहित, अन्त रहित, नित्य, शाश्वत ऐसौ जीव जगतमें प्रत्यक्ष प्रमान है ॥ १० ॥

अथ अनुभव विधान कथन ॥ सवैया ॥ ३१ सा

रूप रसवंत मूरतिक एक पुदगल,
रूप विनु और यौं अजीव दर्व दुधा है ।

चारि है अमूरतिक जीव भो अमूरतिक,
याही तैं अमूरतिक-वस्तु ध्यान मुधा है ॥
औरसौं न कबहौ प्रगटै आपु आपुहीसौं,
ऐसौ थिर चेतन-सुभाउ सुद्ध सुधा है ।
चेतनको अनुभौ आराधै जग तेई जीव,
जिन्हकै अखंड रस चाखिवेकी छुधा है ॥११॥

अर्थ—अब जीव अपनो अनुभव आपुही करै, पै मीमासक, नैयायिक, प्रमुख जैसै परतै कहैं हैं तैसैं नाही, ये कहैं हैं-रूपवत रसवत जैसे कहे तैसैं गंधवत, फरसवत येहू लक्षण जानने। ऐसौ मूर्तिक, सो मूर्तिवत एक पुद्गल द्रव्य अजीव जानिबौ। अरु ये रूपादिक बिना और अमूर्तिक हैं, ऐसैं अजीव द्रव्य दुधा कहतैं दोइ प्रकारको हैं। अब या अजीव द्रव्यमैं धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये चार अमूर्तिक हैं, अरु जीव द्रव्य भी अमूर्तिक है। यातैं काऊ अमूर्तिक वस्तुको ध्यान किये मुक्ति है ऐसौ कहै। सोऊ मुधा कहतैं मूरखपनौ है। यातैं कोऊ और धर्मकौ आलम्बन लियैं, आत्म द्रव्य प्रगट न होइ। अरु आपु आपुहि सौं प्रगट होइ ऐसौ [illegible] स्वभाव है, [illegible] सुधा कहतैं निर्दोष [illegible] चेतनको

प्रगट करै है, ऐसे जो जगतमे चेतना स्वभावहीतै चेतनकौं अनुभौ करतौ यथार्थ ग्यान आराधै, सोई शुद्ध जीव पदके आराधक है ॥ ११ ॥

अथ मूर्ति वर्नन ॥ सवैया २३ सा ॥

चेतन जीव अजीव अचेतन,
लच्छन भेद उभै पद न्यारे।
सम्यकदृष्टि उदोत विचच्छन,
भिन्न लखै लखिकै निरधारे ॥
जे जगमाहि अनादि अखंडित,
मोह महामदके मतवारे,
ते जड चेतन एक कहैं,
तिन्हकी फिरि टेक टरै नहि टारै ॥१२॥

अर्थ –इहां अंगुष्ट प्रमान, तंदुल प्रमान इत्यादि कहिकै जीवकौं मूर्तिक थापै है, ताको मूढता दिखावै है—जीव है सो चेतना लक्षण सौ है। अरु अचेतन लक्षण सो है इतनै जडता रक्षन सौ है ऐसे लक्षण भेदतै उभै पद कहता दोनु पदार्थ न्यारे हैं। पै तिन्हके मर्म समकित दृष्टिकी उजियारो भयौ,

सोई निचच्छन पुरुष इन्हकौ भिन्न लखै। अरु भिन्न भिन्न लखिकै, ये दोऊ जीव निरधार करि राखै। अरु जे जगतमाहि अनादि-कालके अपण्डित हैं, मूरख हैं, अरु मोह महामदसौ मतवारे हैं, तेई लोक जड चेतनकौ एक कहे हैं। अरु जीवकौ मूर्तिक मानैं, सौ यौ मिथ्या दृष्टिकौ कारन है। बाकी टेक, टारीही टरै नाही ॥ १२ ॥

अथ ग्याता विलास कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

या घटमें भ्रमरूप अनादि,
विसाल महा अविवेक अखारौ।
ता महि और स्वरूप न दीसत,
पुग्गल नृत्य करै अति भारौ ॥
फेरित भेख दिखावत कौतुक,
सौजि लियें बरनादि पसारौ।
मोहसौ भिन्न जुदौ जड सौ,
चिनमूरति नाटक देखन हारौ ॥१३

अर्थ—अन पुग्गल अजीवमें जीव विलस न्यारौ ही है, पै अविवेकी न जानै, ग्यानी होइसो जानै इह कहै है—याही

पिण्ड अनादि कालको भ्रमरूप, सो मिथ्यात्व विसाल कहत विस्तारयत महा अविवेकको अखारो मंडि रह्यो है। तिस अखारेमैं और कोऊ शुद्ध सुरूप सोतो नाहीं दीसत, अरु पुद्गल द्रव्य है सोई अति भारी कहतें अति बडो नित्य करि रह्यों है। याही अविवेककी आग्यात अजीव पुद्गल द्रव्य है सोई एकेंद्रियादिकों भेष करि करि वर्णादिककी पमारी जु है सोई स्वांग कहतें सामग्री लियें कौतुक दिखाय रह्यों है। अब इहां अविवेक रूप मोहमा जु भिन्न है,पुद्गल नड मोहोजु जुग्यो है, सोई चिन्मूर्ति कहतें चेतन-राजा सुतौ इहां नाटकको देखनहार है ॥१३॥

अथ ग्यान कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे करवत एक काठ विच्चि खंड करै,
जैसे राजहंस निखारै दूध जलकौं।
तैसे भेदग्यान निज भेदक सकति सेती,
भिन्न भिन्न करै चिदानन्द पुदगलकौं॥
अवधिकौं धावै मनपर्येकी अवस्था पावै,
उमगिकै आवै परमावधिकैं थलकौं।
याही भांति पूरन स्वरूपको उदोतधरै,
करै प्रतिबिम्बित पदारथ सकलकौं ॥१४॥

अर्थ—अब जु जीव अजीवको एकता मिथ्या ग्यानतैं भासी हो, सोतौ ग्यान नढ्यो हो। अब भिन्नभिन्न रूप कहियैं यहु कहै हैं—जैसैं एक काठको काटिकै करवति है सो दो दो खण्ड करै। अरु दूध जल एकमेक भए, ताको राजहंस जैसैं निरारै जुदाजुदा करि डिरावैं, तैसैं काहूकै भव्यत्व परिपाकतैं भेदग्यान प्रगटै। सौतौ अपनो भेद सकतिसौं चिदानन्द अरु पुद्गल एकमेकमैं जानै है, ताको भिन्न करै। अरु यौही भेदग्यान अपनैं क्षयोपशम माफक अपनी अवधिकौ धावैं, इतनैं अवधि-ज्ञान रूप पर्याय पावै। अरु यौही भेदज्ञान, याहीतैं विशुद्ध भयौ मनपर्ययकी अवस्था पावै। अरु याहीतैं विशुद्ध भयौ परमावधिलौं उमगि जावै। याही भांति बढतौ बढतौ भेदज्ञान सोई पूर्ण स्वरूप उद्योतवंत धारै। इतने केवल अवस्था धारै। अरु सकल पदार्थकी प्रतिबिम्बित करै ॥ १४ ॥

इति श्री समयसार नाटककौ अजीवद्वार करि ग्रन्थकौ अर्थ बालबोधरूप सम्पूर्ण भयौ ॥

इति अजीवाधिकार समाप्त ॥

कर्त्ता कर्म क्रियाद्वार ।

(३)

प्रतिज्ञा ॥ दोहरा ॥

यह अजीव अधिकारको प्रगट वखान्यौ मर्म ।
अब सुन जीव अजीवके, करता किरिया कर्म ॥१॥

अथ अब यह द्वार अजीवको समुझाइकै कह्यौ, अरु याकौ मर्म जो रहस्य ये अजीव पदार्थ जानिकै जीव पदार्थ न्यारौ ही जानिवौ, सोई वखानौ । अजीव जीवकै विषै कर्ता, कर्म, क्रिया कौ विचार, अरु अजीव विषैहू कर्ता, कर्म, क्रियाकौ विचार कहौ, गुरु कहै—हे शिष्य ! तू सुनि ॥१॥

अथ भेद महातम वरनन ॥ सवैया ३१ सा ॥

प्रथम अग्यानी जीव कहे मैं सदीव एक,
दूसरौ न और मैं ही करता करमकौ ।
अन्तर विवेक आयौ आपा पर भेद पायौ,
भयौ बोध गयौ मिटि भारत भरमकौ ॥



भासैं छहों दरवके गुन परजाय सब,
नासै दुख लख्यौ सुख पूरन परमकौ।
करमको करतार मान्यौ पुदगल-पिंड,
आपु करतार भयौ आतम धरमकौ ॥२॥

अर्थ—अब कर्तापनें मैं जीवकी मिथ्यादृष्टि है सौ भेदग्यानसौं ही छूटै, तातैं भेदग्यानको माहातम कहै है— प्रथम तैं अग्यानी जीव है ओ अपना सरूपकी भूलिमैं यौंही कहै। सदीव कहतं निरंतर करमकौ कर्ता एक मैं ही हैं, और कौहू नाही। ऐमें जीवकी अपेक्षालै करि कर्मकौ कर्ता होतु । अब घट माहि विवेक आयौ, भेदग्यान पायौ, तातैं आप वस्तु अपर वस्तुकौ भेद पायौ, तातैं बाधक भयौ सौ उज्जल ग्यान पायौ। अरु मर्मरूपी भारत, सो मिथ्यातकौ खेल सोतौ मिटि गयौ। अब भर्म भाजत ही छहों दर्वके गुन पर्याय आतमा विषैं ही भासैं। द्रव्यके जु सहचारी रहैं तेतौ गुण कहियै अरु छिनछिन अवस्था भेदसो पर्याय कहियै, सो सर्व भासैं, या भासनमैं सब दुख भागे अरु पूर्ण पुरुष जो कहावैं ताकौ सुख लख्यौ, तातैं कर्मकौ कर्ता पुदगल पिण्ड मान्यौ। आप जीव कर्मकौ अकर्त्ता भयौ, अरु आत्मिक धर्मकौ सौ

ज्ञायकता, वेदकता, चेतनता इत्यादिक धर्म स्वभावको आप ही कर्त्ता भयौ। इतनै कर्मकौ तौ अकर्त्ता अरु अपनै स्वभावकै कर्त्ता इहु ठहरायौ ॥ २ ॥

पुन सवैया ३१ सा ॥

जाही समै जीव देह बुद्धिकौ विकार तजै,
वेदत सरूप निज भेदत भरमकौ
महा प्रचण्ड मति मण्डन अखड रस,
अनुभौ अभ्यासि परगासत परमकौ
ताही समै घटमैं न रहै विपरीत भाव,
जैसे तम नासै भानु प्रगटि धरमकौ
ऐसी दशा आवै जब साधक कहावैं तव,
करता है कैसे करै पुग्गल करमकौ ॥३

अर्थ—औरु याही बातकौ दिढाव करै है—जिन प्रस्तावमैं जीव है सौ श्रेणीकौ आरोहण करै, अप्रमत्तता प देह बुद्धिकौ विकार तजै। इतनै वाह्यात्माकौ आप आ जानियौ, ये विकार छांडै, अरु अपनौ स्वरूप न्यारौ ही वे अरु मर्मकौ मेटै, महा प्रचण्ड मतिमडन कहवै महा वीर

बुद्धिकी सोभाकी करनहार। अरु जाकी अखड रस है। पूर्णरस स्वाद है। ऐसो जो शुद्धात्मकी अनुभव, ताकी अभ्यास करि अन्तै परमात्माको प्रकाश करै, ताही प्रस्तार घटपिंडमैं विपरीत श्रान रहै नाहीं। अह बुद्धि लियें जो अकर्त्ताकौं कर्त्ता करि माने कैसे। सौ दृष्टान्त करिसो कहै है—जैसे भानुकी धर्म कहतै सोछन तेज प्रगटत तम अन्धकार नासै तैसै ऐसो अप्रमत्त दशा जबही आवे तबतो आतम स्वभावकी साधक भयो। ताही समैकी कर्त्ता कैसे होइ? अह पुद्गल रूपी कर्मकौं कैसे करें! याकी इहा उपयोग है नहीं ॥ २ ॥

अथ ग्यान सामर्थ वरनन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जगमें अनादिको अग्यानी कहे मेरो कर्म,
करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है।
अन्तर सुमति भासी जोगसों भयो उदासी,
ममता मिटाइ परजाय बुद्धि नाखी है।
निरभै सुभाव लीनो अनुभौके रस भीनो,
कीनो विवहार दृष्टि निहचैमें राखी है।

भरमकी डोरी तोरी धरमको भयो धोरी,
परमसों प्रीति जोरी करमको साखी है ॥४॥

अर्थ—प्रथम आत्माकों कर्मकर्त्ता मनके जु अस्ता मानियें सुतौ ग्यानकी समथाई तें होइ, यह कहे है—इहि समारमैं अनादि कालकौ जीव अग्यानी हो है। यह शुभ अशुभ कर्म मेरो कियो है। या कर्मको कर्त्ता मैं हैं। क्रियाको प्रतिपाखी कहत कर्मकी क्रियाको पक्षी भयौ रहै। पीछे अन्तर कहतैं घटमाहि सुमति भासी, अरु मन वचन कायजोगमों उदासी भयौ, ये योग पररूप जानै, तातें या योगकी ममता मिटाई। अरु पर्याय बुद्धिसौं मन, वचन, काय जोगतें जो बुद्धि भेद सोऊ नाखि दीनौ, अरु द्रव्य बुद्धि राखी, अरु द्रव्य बुद्धि राखिनें आत्माको जो निर्भय स्वभाव है सोऊ गहि लीनों, अरु या स्वभावको जो अनुभव रस तामें भीनो, सो मगनहू रह्यो। अरु सब व्यवहार कीनो सो व्यवहारमें प्रवर्त्यो, पै दृष्टि करतैं श्रद्धामों तो निस्चै मैं राखो। ऐसे करत भरमकी डोरी तोरि दीनी, सो छद्मस्थपनो छोडि दीनो। अरु आत्मिक धर्मसौं अपने स्वभावको धोरी कहतं धरन हार भयौ। परमसौं प्रीति

जोरी, सो सिद्धपदसौं प्रीति राखो। कर्मको मारो भया। पुग्गल कर्मको करै ताकी सारकी मरनहार भयौ ॥ ४ ॥

अथ भेद ग्यानको समर्थपनौ यहु कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे जो दरव ताके तैसे गुन पर जाय,
ताहूसों मिलत पै मिले न काहू आनसौं।
जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद,
अमिल मिलाप ज्यों नितब जुरे कानसौं ॥
ऐसो जु विवेक जाके हिरदै प्रगट भयो,
ताको भ्रम गयो ज्यो तिमिर भागे भानसौं।
सोई जीव करमको करता सो दीसै पै,
अकरता कह्यो है सुद्धताके परमानसौं ॥५॥

अर्थ—शिष्य पूछे—चेतन अचेतन एक क्षेत्रमें रहे है, अरु कर्म करै है तो तहा चेतनको कर्मको अकर्त्ता कैसे मानिये। गुरु कहे है—ग्यान संगतिसौं अकर्त्ता मानिये। जो जैसो द्रव्य है ताके तैसै गुन पर्याय है सो वाहू द्रव्यसौं मिलित है, पै और काहू द्रव्य सौंनाहीं मिलित है। जैसे कोऊ स्निग्ध गुन लिये घृतादिक द्रव्य हैं, अरु ताके पर्याय ... स्निग्ध

नवाले द्रव्यमौ मिलै, पै रूक्ष गुनवाले सौं न मिलैं। तैसे ही जीव वस्तु है सो चेतन जाति हैं। कर्म है सो जड जाति । ऐसे जाति होकौ भेद है, तातैं चेतन जडकौ अमिल लाप है, सौ काहू जुगतिमौं मिलाप नाहीं। जैसे कटिभागमौं नीचे पंचक प्रदेश नितन है सो ऊपरि कानसौ कहा मिलै? सौ गुन पर्यायकौ विवेक जाके हियमैं प्रगट भयौ है ताके हियमैं पूर्व जो भ्रम उपज्यौ है, सो भ्रम गयौ। इहा दृष्टात कहे है-जैसे भानु-सूर्यके उदयतैं तिमिर-अन्धकार भागै, तैसे भागौ। सोई, ऐसौ विवेकधारी जीव है सो कर्मकौ कर्त्तावौ दीसै है, पै शुद्धता जो अपने द्रव्यकी गुन परिणति प्रमाणतैं जीव कर्मकौ अकर्त्ता ही कह्यौ ॥ ५ ॥

अथ जीव पुदगललक्षण भेद कथन ॥ छप्पय-छद ॥

जीव ग्यान गुन सहित, आपगुन परगुन-ज्ञायक ।
आपा परगुन लखैं नाहि पुद्गल इहि लायक ॥
जीवरूप चिद्रूप सहज, पुद्गल अचेत जड ।
जीव अमूरति मूरतीक, अन्तर वड ॥
जब लगु न होइ अनुभौ प्रगट,
तब लगु मिथ्यामति लसै ।

तार जीव जड करमको,

सुबुधि विकास यहु भ्रम नसै ॥६॥

अर्थ—अब जीव पुदगलके लक्षण भेद बताइकै याही बात करै है—जीव है सोतौ ग्यान गुन सयुक्त है। अरु आप-गुनकौ भी ग्यायक है। अरु परके गुनकौ भी ग्यायक है। याही गुनभेद करिकै आपकौ भी लखै, अरु परको भी, ऐसी कला शक्ति लायक पुदगल कैसै हो ? बनै नाहीं। वको स्वरूप सौतो चिद्रूप कहतैं चतनारूपी है। अरु पुदगल सौतो सहज भावै अचेतनारत है, यातै जड है। औरू ही तर है। जोलौं शुद्ध चेतनकी अनुभव प्रगट न होइ तोलौंतो ध्या मति लसै सो दीसित है। पै जड स्वरूपी कर्मको कर्ता व है सो भ्रम बुद्धि है, सो यहु अनादि कालको भ्रम, बुद्धि विकास भयै ही भाजै ॥ ६ ॥

अथ कर्ता कर्म क्रिया स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

करता परिनामी दरव, करम रूप परिनाम।

किरिया परजैको फिरनि,वस्तु एकत्रय नाम ॥७॥

अर्थ—अब कर्ताकौ कहियै, कर्मकौ कहियै, क्रिया कहियै, तीनो स्वरूप कहै है—रूपातरकौ भजमी

ऐसें द्रव्यसो कर्त्ता कहियै। रूपांतर होतो सौ परिनाम यौ कर्म स्वरूप कहियै। अरु पर्यायको क्रमक्रम फिरिनौंमो क्रिया कहियै। ये कर्त्ता, कर्म, क्रिया, नाम तोन है अरु वस्तु एक ही है ॥ ७ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया एकत्व कथन ॥ दोहरा ॥

करता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार
नाउ भेद बहु विधि भयौ, वस्तु एक निरधार ॥८॥

अर्थ—कर्त्ता, कर्म, क्रिया ये कहिवे मैं नाउ भिन्न-भिन्न है, पै वस्तु एक ही है इहु कहै है कर्त्ता तबही कहावै जब कर्मकी क्रिया करै, अरु क्रिया हू तबही कहावै जब कर्म करै, ऐसै नाउ भेद भांति-भांतिसो भयो पै करिवै ही तैं कर्त्ता, करिवैही तैं कर्म, करिवैही तैं क्रिया, सौ एकही वस्तु है ॥ ८ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया प्रति स्थापना ॥ दोहरा ॥

एक करम करतव्यता, करै न करता दोइ ।
दुधा दरव सत्ता सु तौ, एक भाव क्यों होइ ॥९॥

अर्थ -अब एक कर्म क्रिया परिकर्त्ता एकही होइ पा स्थापना करै है-ये बात प्रसिद्ध है। एक कर्मकी कर्त्तव्यता कहवैं क्रियासौ एकही होइ। अरु ताकौ कर्त्ताहू एक होइ, पै

दोइ कर्त्ता एक क्रिया न करै। इहा चेतन द्रव्य सत्ता, अरु पुद्गल द्रव्य सत्ता सु तौ दुधा कहवैं दोउ न्यारी भाति हैं तातैं एक भारक कर्म कैसे होइ ॥ ६ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया विवरण ॥ सवैया ३१ सा ॥

एक परिनामनिके न करता दरव दोइ,
दोइ परिनाम एक दरव न धरतु है।
एक करतूति दोइ दरव कवहों न करैं,
दोइ करतूति एक दरव न करतु है ॥
जीव पुदगल एक खेत-अवगाही दोऊ,
अपने अपने रूप कोउ न टरतु है।
जड परिनामनिको करता है पुदगल,
चिनानद चेतन सुभाव आचरतु है ॥१०॥

अर्थ—अब कर्त्ता कर्म क्रियाकी ब्यौरी--एक परिनामके दोइ द्रव्य कर्त्ता न होइ अरु एक द्रव्य है सो दोइ परिनाम धरै नाहीं। ऐसै दोउ द्रव्य मिलि एक करतूति सौं एक क्रिया कनहौं करै नाही। ऐसै एक द्रव्य दोइ क्रिया कनहौं न करैं, यह व्यवस्था वाधिकै कहिवे लायक कहे है। जीव अरु पुद्गल

एकमेक ह्वै रहे, सौ दोनू एक क्षेत्रावगाही भए, पैं अपने अपने स्वभावकौं कोऊ टरैं नाही। तातैं पुद्गल है सौ जड है, सौ जड परिनामकौं ही कत्ता होइ। अरु चिदानन्द चेतन है सौ चेतनता स्वभाव ही कौं आचरै ॥ १० ॥

अथ सम्यक्त मिथ्यात व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

महा धीठ दुखको वसीठ परदर्वरूप,
अन्धकूप काहूपै निवारौ नहि गयौ है।
ऐसौ मिथ्याभाव लग्यौ जीवकौं अनादि हीकौ,
याही अहबुद्धि लियें नाना भाति भयौ है॥
काहू समै काहूके मिथ्यात अन्धकार भेदि,
ममता उछेदि शुद्ध-भाव परिनयौ है।
तिनहीं विवेक धारि बंधकौ विलास डारि,
आतम सकति सौं जगत जीति लियौ है॥११

अर्थ—अब सम्यक्त अवस्थामें कर्मकौ अकत्ता, अ[...] मिथ्यात्व अवस्थामें कर्मकौ कर्त्ता यहु कहे हैं—महाधृष्ट अ[...] दुखकौ वसीठ सौ दुख पट्ट, आतम द्रव्यतें पर द्रव्यसो पुद्ग[...] द्रव्य, सो जाके रूप है, पिंड है। अरु यामैं सत्य दृष्टि पुह[...]

नहीं, तातैं अन्धरूप समान है। अरु काहूंपै निगरी नहीं जाती, ऐसी मिथ्या-भाव, सो मिथ्या मोह कर्म जीवकी अनादि ही की लग्यी है, याहीतैं पर द्रव्य पर जीवकी अह लागी, तातैं जीव नाना भातिसु बहु भाति भयौ। अरु काहू समै, सौ यथा प्रवृत्ति करण समै काहू भव्य जीवकै मिथ्यात अन्धकार भेदि, [सौं मिथ्यात्व ग्रन्थि भेदिकै अरु सब कार्यमैं अहबुद्धि लियै ममता हो, सोऊ उछेदिकै शुद्ध चिदानन्द भावमैं ही परिनमि रह्यौ, तब तिनही भव्य जीव भेद विग्यान सौं जड चेतनको विवेक धारिकै अविरति, कषाय, योग, प्रमाद, येऊ बध हेतु हैं, ताकौ विलास डारिकै, आतम सकति सौ अपने धीर्यमौ जगत जीति लियौ। सु ससार सौ निरालौ भयौ ॥ ११ ॥

अथ यथा कर्म तथा कर्त्ता कर्त्ता कर्म एकरूप कथन॥सवैया३१॥

शुद्ध-भाव चेतन अशुद्ध भाव चेतन,
दुहूकौं करतार जीव और नहि मानिये।
कर्म पिंडको विलास वर्न रस गध फास,
करता दुहूकौं पुदगल

यहु काकौ स्वाद है ? तब मतवारी अपनी उमंगमैं मगन रह्यो थको कहै, जुमे गऊको दूध पीनौ है, पै भिन्न रसकी खबरि नहीं। तैसैं मिथ्यामती जा जीव है सोतौ सदैव कहतां अनादि कालकौ ग्यानरूपी ही है। इसनै जोवतां ज्ञानमई है, पै पाप कर्म अरु पुन्न रससौं पग्यौ सौ व्यापि रह्यौ है, एकमेक ह्वै रह्यौ, तातैं सहज भांन सुन्न ह्वै ह्वै रह्यौ, वे खबरि ह्वै गयौ सब चेतन अरु अचेतन-पुद्गल, ये दोऊकी मिश्र कहतं एक पिंड लखिकैं एकमेक ही मानै। पुद्गलके मेल सौं चेतनकौं हू पुद्गलिक कर्मकौ कर्त्ता मानै। पै कछु विवेक कियौ जातु है ॥ १३ ॥

अथ भ्रम स्वरूप कथन दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसैं महा धूपकी तपतिमैं तिसायौ मृग,
भरम सौं मिथ्याजल पीवनकौं धायौ है
जैसे अन्धकार मांहि जेवरो निरखि नर,
भरमसौं डरपि सरप मानि आयौ है
अपनैं सुभाइ जैसैं सागर सुथिर सदा,
पवन सयोगसौं उछरि अकुलायौ है

तैसै जीव जडसौं अव्यापक सहज रूप,
भरमसौं करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

अर्थ—जीवकौं कर्त्ता मानियै सो भ्रमरूप है ताकौ ३ दृष्टांत करि दिढाइयै है—जैसैं वैसाख जेठकै महा धूपकी गरमीमैं मृग तिसायौ भयौ, अरु मृग तृष्णा देखी, वाकौं, मृग, जल भरयौ ताल मान्यौ, अरु मिथ्यारूपी जल पीनेकौ दौरयौ। अरु जैसैं अन्धकारमैं कोई जवरी परी है, ताकौ कोऊ मनुष्यकै भरम सौं डरयौ, अरु डरिकै वाका सरप मानि लीनौ। अरु जैसै अपनै स्वभाव तैं समुद्र है सो सदा स्थिररूप ही है, अरु पाताल कलसाकै पवन संयोगतैं उछरै है, अरु आकुल व्याकुल ह्वै है, तैसै ये जीव है सौ निश्चै नयतैं जडरूप वस्तुसौं अव्यापक है, पै अनादि कालकी सहजरूपी भ्रम है, वा करिकै कर्मकौ कर्त्ता कहावै है ॥ १४ ॥

अथ सम्यकदिष्टी स्वभाव वरनन, राजहंसकौ दृष्टांत
॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसै राजहंसके वदनके सपरसत,
देखिये प्रगट न्यारो छीर

सीतल ही है, अरु यामें उसनता स्पर्श ग्यानतैं लखी जाइ है, सो आगिकी उस्नता है। अरु स्वादवत व्यंजन कहतै तरकारी माहि भांति भांतिको स्वाद दीसै है, अरु लोनको स्वाद खारो न्यारौ ही लखियै है, सोतो जीभके ग्यानसौं प्रगट ही है। तैसें घट पिंडमें विभावता जो करमसौं चेतनाकौ मिलवौ, सोतौ जैसे मैं यहु कीनौ, ऐसो मानिवौ, यह सौ अग्यान रूप है। अरु जीव है सो शुद्ध ज्ञानरूपी है, याको शुद्ध जानवौ ही कार्य है या भांत भेदग्यान हीसों जान्यो जाइ। वे चिदानन्द जु है, सो कर्मको कर्त्ता मानिवौ भ्रमसौं है, पै द्रव्यको विचार करतें याकै कर्त्ताभाव बनै नही, याकै ग्याता भाव बनै ॥ १६ ॥

अथ कर्तृत्व विवरन ॥ दोहरा॥

ग्यान भाव ग्यानी करै, अग्यानी अग्यान।
दरव करम पुद्गल करै, यहु निहचै परवान ॥१७॥

अर्थ—अब निश्चै प्रमाणतैं जो जाको कर्त्ता है ताको व्योरो दिखावै है—ग्यानी होइ सोतो ग्यान भाव करै, जानिवौ रूप जो कार्य है ताको करै अरु अग्यानी है सोतो मैं कीनो ऐसो मानि अग्यान भाव करै। पै यो द्रव्यरूप जो कर्म है ताको पुद्गल ही करै है। निश्चै प्रमानमें ऐसो रहस्य है ॥१७॥

अथ व्यवहार कर्तृत्व कथन ॥ दोहरा ॥

ग्यान सरूपी आतमा, करे ग्यान नहिं और ।
दर्व कर्म चेतन करे, यह बिवहारी दौर ॥ १८ ॥

अर्थ—शिष्य पूछै—स्वामी ग्यान-भाव ग्यानी करै ये बात कहतैं ग्यानकौ कर्त्ता जीव क्यौं, सो कौन नयमाँ रह्यौ। गुरु कहै है—जो आतमा ज्ञान सरुपी है, तातैं ग्यानकौ तौ योही करै, पै और कोऊ नाहीं, ये निश्चै। अरु जो कहै है-द्रव्य-कर्मको भी चेतन ही करै, यौंतौ व्यवहार मैं दौरिवौ है ॥ १८ ॥

अथ शिष्य प्रश्न • कर्तृत्व कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

पुद्गल कर्म करे नहि जीव,
कहो तुम मैं समझी नहि तैसी ।
कौन करे यह रूप कहो अब,
को करतार करनी कहु कैसी ॥
आपुही आपु मिलै बिछुरै जड़,
क्यों करि मन संशय ऐसी ।

शिष्य संदेह निवारन कारन,
यात कहे गुरु है कछु जैसी ॥१९॥

अर्थ—अब शिष्य बूझे—यों जीव निश्चै ग्यानकी ही कर्त्ता कह्यो, अरु कर्मको अकर्त्ता कह्यो सो कैसे है ? हे गुरु, पुद्गल द्रव्यरूप कर्मको जीव करै नहीं, एसो जो बात तुम कही, मोवा बात में तैसी समुझी नहीं। या पुद्गल रूपी कर्मको स्वरूप कोन करै। इहा कर्त्ता कौन ठहरायो हो, अरु याकी करनी करतै क्रियामाँ कैसी है, वे कहो। अरु पुद्गल कर्मको कर्त्ता पुद्गल ही कहो हो, तो कर्त्ता कर्म दोनु जड भये, ताको आपु हो तें मिलिवो बिछुरिवो कैसे बनैगो। यह मेरे मनमें संदेह है। ऐसे प्रश्न पर शिष्यको संदेह हरिवेको जो कछु जैसी बात है सो तैसी बात गुरु कहै है ॥ १९ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन ॥ दोहरा ॥

पुद्गल परिनामी दरव, सदा परिनवै सोइ।
यातै पुद्गल करमको, पुद्गल करता होइ ॥ २०॥

अर्थ—अब गुरु है सो शिष्यके प्रश्नको उत्तर वचन कहै— हे शिष्य पुद्गल है सो परिनामी द्रव्य है छिन छिनमें औरसो

हुइ, सो परिनामी कहियै, सोतौ स्वभाव ही तैं सदा परिनामी रह्यौ है, याही जुगतितैं पौद्गलिक कर्मको कर्त्ता पुद्गल ही होई ॥ २० ॥

अथ पुन: शिष्य प्रश्न ॥ अडिल्ल छन्द ॥

ग्यानवतको भोग निर्जरा हेतु है।
अज्ञानीकौ भोग बधफल देतु है॥
यहु अचरजको बातु हिये नहि आवहि।
बूझै कोऊ शिष्य गुरु समुझावहि ॥ २१ ॥

अर्थ—अब भी शिष्य बहै है—ज्ञान-भाव ग्यानी करै, या कहिवे मैं ग्यानीको भोग निर्जरा रूपी ह्वै है सो कैसे है? ग्यानी भोग भोगनैसो कर्मकी निर्जरा करै है, तबतौ ग्यानीकौ भोग निर्जराको हेतु भयो। अरु अग्यानी भोग भोगनैसो कर्म बध करै है। तहातौ अग्यानीको भोग बध फलदायक कह्यौ। या तो अचरजकी बात है। भोग भोगनैमै समान है, तौ एकको निर्जरा एकको बध यों क्यों होइगो? ये बात हियेम नाही। तब शिष्य काऊ बूझिवा लाग्यो, तब गुरु [illegible]को समझावै है ॥ २१ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक,
दुहौं कर्म भोग पै दुहौंको एक खेत है।
ग्यानी मूढ कर्म करत दीसै एकसे पै,
परिनाम भेद न्यारौ न्यारौ फल देतु है॥
ग्याननत करनी करै पै उदासीन रूप,
ममता न धरै तातैं निर्जराको हेतु है।
वहै करतूति मूढ करै पै मगनरूप,
अन्ध भयो ममतासों बन्ध फल हेतु है ॥२२॥

अथ—अब गुरु उत्तर कहे है—दयाकी पालिबी, दानकौ देबौ, पूजा प्रभुकी करिबौ, एक ऐसी भातिको कर्म है। अरु पचेन्द्रियके विषयको सेवबौ, कषाय सेइबौ एक ऐसी भाति कर्म है, ये दोऊ कर्मको ससारमै भोग है, पै एक खेतु है, सो दोऊ बंध रूप है। सो दोऊ ग्यानीहू करै है अरु मूढहू करै है। ऐसै कर्म करते ग्यानी अरु मूढ एकसे ही दीसै है, पै याको परिनाम भेद न्यारो न्यारो है, तातैं एक कर्म न्यारे न्यार फल दे है। ग्यानवन्त कर्म क्रिया जो करै है सो उदासीन ह्वै कै करै है। आपु ही

तें उदे आयौ कर्म सौ करै है पै ममता धरै नहो, तातें निर्जरा
कारण है। अरु वही करतुति क्रियामूढ करै है पै वा क्रिया
मगनरूप रहै। आपकी शुद्धि भूलि गयौ, अरु याहीतें अंध भ
ममतासौं बंध फल लीनौ, याहीतैं अग्यानकौ कर्त्ता है॥ २२

अथ मूढ कर्त्तृत्व कथन, कुलाल दृष्टांत॥ छप्पय छंद

ज्यौं माटीमहि कलस हौनेकी, सकति रहै ध्रुव
दंड चक्र चीवर कुलाल, बाहिज निमित्त हुव।
त्यौं पुद्गल परवानु, पुंज वरगना भेष धरि।
ग्यानावरनादिक स्वरूप, विचरत विविध परि।
बाहिज निमित्त बहिरातमा,

गहि संसै अग्यान मति

जगमाहि अहंकृत भावसौं,

करमरूप ह्वै परिनमित॥ २३॥

अर्थ—अब मूढकौ कर्त्तापनौ दिखावे है कुम्हारकौ
दृष्टांत–जैसैं कलशरूप कार्य होनेकैं माटी द्रव्यकी शक्ति ध्रुव
कहतें निश्चै है, अरु तिनका कार्य विष ...गकौ
दंड ... सो चाक, चीवर, सो घरा ...ी,

कुलालसौं कुमार, ये सब बाह्य निमित्त भए। तैसैं परमाणु
पुद्गलकी पुन, सो राघा कार्मण वर्गणाकौ भेष धारिकैं ज्ञाना
वरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुषी, नाम गो
अन्तराय इन्हि स्वरूपैं निमित्त परिमैं भांति भांति पुद्गल
रूप विचरयौ। इहां बहिरात्मा सो देव मनुष्यादिरूपी बाह्य
त्मा बाह्य निमित्त होकैं भ्रमरूपी अग्यान ग्रहिकैं, इहां कार
भयौ, तब जगतमैं अहंकार बुद्धिकी ममतीसौं सोई पुद्ग
रूप कर्मरूप ह्वैकैं परिनयौ ॥ २१ ॥

अथ शुद्धानुभव माहात्म्य कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

जे न करैं नय पक्ष विवाद,
धरैं न विषाद अलीक [redacted] भाखैं
ते उदवेग तजे घट अन्तर
सीतल-भाव निरन्तर राखैं,
जे न गुनी गुन भेद विचारत,
आकुलता मनकी सब नाखैं
ते जगमैं धरि आतम ध्यान,
अखंडित ग्यान सुधारस चाखैं ॥२

अर्थ—अब निश्चै जीवकौ अकर्त्ता मानिकै याहीके अनुभवमैं रहिवौ ताकौ माहात्मा कहै हैं—जैसैं मिथ्याती लोग अपनी अपनी नयकौ पक्ष लियैं आपसमैं विवाद करि रहे हैं। तैसैं जे विवाद न करैं, अरु सहज आनन्दमैं रहैं, तातैं विषाद न धरैं, अरु झूठ न बोलैं, अरु दुष्ट ध्यानतैं सीर मिटि गयौ। तातैं जे उद्वेग तजे हैं, अपने हियैं बीचि निरन्तर शीतल भाव ही राखैं। ऐसैं शुद्ध आत्माकैं अनुभवमैं मिलैं, जातैं ये आत्मा गुनी है, ग्यान गुन है, ऐसो जाकैं भेद विचार रह्यौ नहीं। औंर विकल्पतैं जो आकुलता हूं रही हो, सौ मनसौं सब डारि दै, ऐसैं जो शुद्ध अनुभवी भए, तेई आत्मा ध्यान धरिकैं जगतमें जो सम्पूर्ण ग्यानरूप, इतने केवल ज्ञान-रूप अमृत रसकौ चाखैं हैं॥ २४॥

अथ निश्चय व्यवहार नय प्रमाण स्थापना॥ सवैया ३१ सा॥

विवहार-द्रिष्टिसौं विलोकत बध्यौंसो दीसैं,
निहचैं निहारत बाध्यो यहु किनहीं।
एक पच्छ बध्यौ एक पच्छसौं अवध सदा,
दोऊ पक्ष अपने ... धरे इनहीं॥

कुलालसौ कुमार, ये मन बाह्य निमित्त भए। तैसैं परम
पुद्गलको पुंज, सो सघा कार्मण वर्गणाकौ भेष धारिकैं ज्ञाना
वरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुपी, नाम गो
अन्तराय इन्हि स्वरूप विविध घम्मौं भाति भाति पुद्
राघ विचरयौ। इहा बहिरात्मा सो देव मनुष्यादिरूपी बा
स्मा बाह्य निमित्त होकै भ्रमरूपी अग्यान ग्रहिकै, इहा क
भयौ, तब जगतमे अहकार बुद्धिकी मगतौसौ मोई पुद्
राघ कर्मरूप ह्वकै परिनयौ ॥ २३ ॥

अथ शुद्धानुभव माहात्मा कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

जे न करें नय पक्ष विवाद,
धरे न विषाद अलीक न भा
ते उदवेग तजे घट अन्तर,
सीतल-भाव निरन्तर राखें,
जे न गुनी गुन भेद विचारत,
आकुलता मनकी सब ना
ते जगमें धरि आतम ध्यान,
अखंडित ग्यान सुधारस चाखैं ॥

अर्थ—अब निश्चै जीव ... ३१ सा ॥

अनुभवमैं रहियौ ताकौ माहातमा ...

अपनी अपनी नयकौ पक्ष लियें ... द फलै हैं।

तैसै जे विवाद न करैं, अरु सहज ... फलै,

न धरै, अरु झूठ न बोलैं, अरु दुष्ट ... छलै है ॥

गयौ। तातें जे उद्वेग तजें है, अपने हिये ... जीव,

शीतल भाव ही राखें। ऐसे शुद्ध आत्मा ... टलै है।

जातें ये आत्मा गुनी है, ग्यान गुन है, ऐसो ...

रह्यौ नहीं। और विकल्पतें जो आकुलता है ...

मनसों सब डारि दे, ऐसे जो शुद्ध अनुभवी भए, ... २६ ॥

ध्यान धरिकै जगतमें जो सम्पूर्ण ... इतने केवल ... रासिकै,

रूप अमृत रसकौ चाखै है ॥ २४॥ ... निश्चय

अथ निश्चय व्यवहार नय प्रमाण ॥ सवैया ३१ सा ॥ ... एक एक

विवहार-द्रिष्टिसों विलोकियौ दौसे, ... नत भेद

निहचै निहारियौ यह ... फलै, तातें

एक पच्छ बध्यौ ... अबध ... अनत

है अनादि ... चंचल

कोऊ कहे समल विमल-रूप कोऊ कहै,
चिदानन्द तै सोई वखान्यौ जैसौ जिनहो।
बंध्यो मानै खुल्यौ मानै दुहो नैकौ भेद जानै,
सोई ग्यानवन्त जीव तत्त्व पायौ तिनहो ॥२५।

अर्थ—अर निश्चै नयत अरूतापनाकी थापना अरु व्यवहार नयतें कर्त्तापनाकी थापना प्रमाण कारनकै दिखावै है—चतुर्गति रूप संसार भ्रमणकौ आत्माकौ व्यवहार देखिये तौ आत्मा कर्त्ता हू दीसै, अरु बध्यौ सो ही दीसै, अरु निश्चय नय करि ग्यान ही कौ कर्त्ता, अरु ग्यान स्वरूपी ही देखियै तौ यह आत्मा काहू सौ बध्यौ नही है। ताव एक व्यवहार पक्ष ग्रहियै तौ आत्मा बध्यौ है। अरु एक निश्चय पक्ष ग्रहियै तौ आत्मा सदा अबध है। ऐसे दोऊ अपने पक्ष अनादि कालके इनि धरै है। कोऊ व्यवहार नयवाली याकौ समल कहै है, कोऊ निश्चै नयवाली याकौ निमल कहै है, पै जिन जैसै अपनी बुद्धिमैं चिदानन्दकौ वखान्यौ तैसोई चिदानन्द है। अर सम्यग्दृष्टि होइ सौ तौ आत्माकौ बाध्यौ ही मानै अरु खुल्यौ ही मानै पै या मानिबे मैं दोऊ नयकौ भेद जानै। सोई ग्यानवंत कहावै। अरु तिन्हहो जीव तत्त्वकौ स्वरूप पायौ।२५।

अथ समरसी-भाव प्रशसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

प्रथम नियत नय दूजी विवहार नय,
दुहोको फलावत अनत भेद फलै हैं।
ज्यों ज्यों नय फलैं त्यों मनके कल्लोल फलै,
चचल सुभाव लोका लोकलो उछले हैं ॥
ऐसी नय-कक्ष ताकों पक्ष तज ग्यानी जीव,
समरसी भए एकतासों नहि टलैं हैं।
महामोह नासि शुद्ध अनुभौ अभ्यासि निज,
बल परगास सुख रासि माहि रलैं हैं ॥ २६ ॥

अर्थ—अब दोनु नयको समान राखिकैं, समकित राखिकैं, समरसभावमे रहे ताकी प्रशसा कहे है-पहिली तौ निश्चय नय है, अरु दूजी व्यवहार नय है, ये दोनु नयको एक एक द्रव्य पर फलाइये तब अनत द्रव्यकी अपेक्षा नयके अनत भेद फलैं। अब ये नयके अनन्त भेद मनहीके विचारते फलैं, तातैं ज्यौं-ज्यौं नय फरावटि होइ त्यौं त्यो मनके तरग पिण अनत भेद फलैं। अरु मन किलोल जेते होइ, तेते मनके चचल स्वभाव होइ। याको प्रमाण षटगुनी हानि वृद्धि लसैं लोका-

लोक प्रदेश परिमाण होइ। ऐसी जो नय कक्षा कहवैं नयकौ अंगीकार करनौ, ताकौ पक्षपात तजिकै जे जीव समरसी भाव मैं भए। अरु सबही नय निस्तारम चेतनाकी एकता है, तासा टलै नही, तेतौ समरसो भाववाले, महामोहकौ सौ भ्रमकौ नाम करिकै, अरुशुद्ध चिदानन्दकै अनुभवकौ अभ्यास करिकै। इतने क्षपक श्रेणी आरोहन करिकै परमात्माकौ जो बल है ताकौ प्रकाशित करकै सुख राशि जो मोक्ष पद है तामैं मिली गए ॥ २६ ॥

अथ सम्यक स्वरूप लक्षण कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसै काहू बाजीगर चौहटे बजाइ ढोल,
नाना रूप धरिके भगल विद्या ठानी है।
तैसै में अनादिकौ मिथ्यातकी तरगनिसौं,
भरममैं धाइ बहु काय निज मानी है ॥
अब ग्यानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी,
अपनी पराई सब सो जु पहिचानी है।
जाकै उदय होतु परवानु ऐसी भाति भई,
निहचै हमारी ज्योति सोई हम जानी है ॥२७॥

अर्थ—अब निश्चय व्यवहार दिखाइके, अपने जो सत्य स्वरूप लक्षण है सोई कहे हैं—जैसे कोऊ बाजीगर है सो चोहटेमें ढोलको बनाइके भाति-भातिके रूप धरिके अपनी भगल विद्या विस्तारै है, वाकौ लोक साचो करि जानै है। तैसी भातिसे अनादि कालका मिथ्यातकी तरंगनिमैं मगन ह्वै रह्यो, तातैं भरममैं धायो, भगल विद्याकू देखन हारेकी नाई। याहीतैं बहुत काया पाई, अरु अपनी मानी, अबतो मोहि ग्यान कला जागी, तातें भर्मकी दृष्टि ही सो भागि गई, तब अपनी पराई कहते सामग्री सौ सब पहिचानि लीनी। जिन ग्यान कलाके उदय होत प्रमाण ऐसी भाति भई सो अपनी पराई वस्तुकी सुध पाई। याहीते निश्चै हमारी ज्योतिसौं हमारो स्वरूप, सोई हम जानि लीनी ॥ २७ ॥

अथ-शुद्धानुभव चितवन जात विलास ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे महा-रतनकी ज्योतिमें लहरि उठै,
जलकी तरंग जैसे लीन होरही जलमें
तैसे शुद्ध आतम दरव परजाय करि,
उपजै विनसै थिर रहै निज थलमें ॥

महानल थकी निरानभान ह्वै रह्यो है। यातैं अदोष कहतैं शुद्ध
अनुभव है। अब या अनुभवके नाम कहे है, अनुभव कहियै
यौही प्रमान कहियै, यौही अनुभौ भगवान कहियै, यौह
पुरान-पुरुष कहियै, यौही ग्यान कहियै, औ कहतां अथ
विज्ञान घन कहियै, यौही महापुरुष पोष कहियै, यौही परम
पवित्र कहियै, ऐसे अनुभौके अनन्त नाम कहे। अरु या शुद्ध
अनुभव बिना और ठौर कहाँ मोक्ष है नाही ॥ २९ ॥

अथ अनुभवकौ दृष्टान्त ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे एक जल नानारूप-दरवानु योग,
भयौ बहु भाति पहिचान्यौ न परंतु है
फिरि काल पाइ दरवानुयोग दूरि होतु,
अपने सहज नीचे मारग ढरतु है
तैसे यहु चेतन पदारथ विभाव तासौं,
गति जोनि भेष भव भावरि भरतु है
सम्यक सुभाइ पाइ अनुभवके पथ धाइ,
बंधकी जुगति भाजि मुगति करतु है ॥ ३०

अर्थ—अब शुद्ध अनुभव बिना संसारमैं भ्रमै, अरु शुद्ध अनुभव आया मोक्ष होइ, या परि दृष्टान्त कहै हैं–जैसैं पानी एक ही रूप है, अरु तामैं नाना प्रकार माटी प्रमुख द्रव्यको अनुयोग भयौ मिलाप भयौ। तातै पानी हू बहु भांति भयौ। अब दरिवैमें माटी प्रमुख दीसै, पै पानी तौ पहिचान्यौ न जाइ। फिरि कोऊ औसर पाइकै वह द्रव्यको मिलाप दूरि ह्वै गयौ, पानी नितरि आयौ, तब अपनौ सहजरूप पाइकै नीचैं मारग ढरन लाग्यौ। तैसो भांति यहु जो चेतन पदार्थ है सो तौ विभावतामों कहतैं अपनो भूलिमौं ४ गतिमैं ८४ लाख जोनिमैं भेष कहरौ एक कालिमैं भांति-भांति भवमें भावरि कहतैं फेरी सो फिरि रहै है। सोई जीव काहू औसर सम्यक्‌ स्वभाव पाइकै अपनैं अनुभवके मारगमैं दोरिकै बधकी निलास भाजिकै कर्मनी मुक्ति करै है॥ ३०॥

अथ मिथ्यादृष्टि कर्तृत्व कथन ॥ दोहरा॥

निसि दिन मिथ्या-भाव बहु, धरैं मिथ्याती जीव।
तातैं भावित कमकौ, करता कह्यौ सदीव॥ ३१॥

अर्थ—अब मिथ्यादृष्टि होइ सो अनुभव बिना कर्मको करता होइ यह कहै है–राति दिन अपनी भूलिमैं

जोन दाइ सा भांति-भांति मैं करों,मैं मारों, मैं हरों इत्यादिक मिथ्या भाव धारैं, तातैं अशुद्ध चेतनामौं भासित कर्म है ताकौ कत्ता मदान कहतैं निरन्तर ही कथा ॥ ३१ ॥

अथ मूढ कर्मकौ कर्त्ता, ग्याता अकर्त्ता यह कथन ॥ चोपाई ॥

करै कर्म सोई करतारा, जो जानैसौ जाननहारा ।
जो करता नहि जानैं सोई, जानैसौ करता नहि होई ३२

अर्थ—ग्यानी अरु कर्म करता एकसे है, पै मूढ जीव कर्मकौ कत्ता रह्यो अरु ग्यानी जान कर्मको अकर्त्ता यह कहै हैं—जोइ कर्मकौ कर, सोइ करता कहावै । अरु जो जानै है सो तौ करन हारो नही ? अरु जो जाननहार है सौ कर्त्ता नाही ॥ ३२ ॥

अथ ग्याता अग्याता यह कथन ॥ सोरठी ॥

ग्यान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ग्यान महि ।
ग्यान कर्म अतिरेक, जो ग्याता करता नहीं ॥ ३३॥

अर्थ—अन जो जाननहार है सो अकर्त्ता इहि बातकौ ब्यौरो कहै है—ग्यान-भाव अरु मिथ्या भाव एक कहावै नहीं । ... िक सौ राग द्वेष माह, इत्यादिक भाव ज्ञानमैं होइ

नाहीं, यातैं ज्ञान है सो कर्मसौं अतिरेक कहतैं न्यारो ही है। याहीतैं जोईं ग्याता है सौ कर्त्ता नाहीं है ॥ ३३ ॥

अथ अजीव द्रव्य कर्मको अकर्त्ता यहु कथन ॥ छप्पय ॥

करम पिंड अरु राग भाव, मिलि एक होहि नहि ।
दोनु भिन्न स्वरूप वसहि, दोऊ न जीव-महि ॥
करम पिंड पुग्गल, विभाव-रागादि मूढ भ्रम ।
अलख एक पुग्गलअनत, किमि धरिहि प्रकृति सम॥
निज निज विलास जुत जगत महि,
जथा सहज परिनमहि तिम ।
करतार जीव जड कर्मको,
मोह विकल जन कहिहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थ—अर जो मिथ्याती जीव है, सौहू पुद्गल-द्रव्यरूप कर्मको अकर्त्ता ही है, अरु भावित कर्मको कर्त्ता यहु कहै है—पुद्गल द्रव्य रूप कर्म पिंड, अरु राग द्वेषादिक भाव, दोउ मिलिकै एक रूप होइ नहीं। ये दोउ भाव भिन्न स्वरूपमैं हैं पै ये दोउ भाव जीव मैं वसत नाहीं, याको ब्यौरो कहै हैं—कर्म पिंड है सोतौ पुद्गलरूपी है, अरु जो रागादिक विभाव हैं,

सौतौ मूढ जीवकौ भ्रम है। अलख जीव है सौतौ एकता लिये है, अरु पुद्गल अनन्तता लिये रहै है, कर्मकौ कर्त्तापनौ ऐसी सम प्रकृति दोउ कैसे धरैंगे। जगतम सब कोऊ आप अपने स्वभाव विलासमें युक्त ह्वै रहे हैं, जैसौ अपनौ सहज स्वभाव है, तैसेही परिनमि रहे हैं। न्यायकी बात ऐसी है। तातैं जड स्वरूपी कर्मकौ कर्त्ता जीव है ऐसौ वचन मोहतैं जौ विकल भए है सौ कहे है ॥ ३४ ॥

अथ सम्यक्त प्रभाव कथन ॥ छप्पय छंद ॥

जीव मिथ्यात्व न करै, भाव नहि धरै भरम मल।
ग्यान ग्यान-रस रमै, होइ करमादिक पुद्गल॥
असंख्यात परदेश सकति, जगमगै प्रगट अति।
चिद् विलास गंभीर धीर, थिर रहै विमल मति॥

जब लगु प्रबोध घट नहि उदित,
तब लगु अनयन पेखियै।
जिम धरम राज वरतत पुर,
जहि तहि नीति परेखियै ॥३५॥

पाप पुण्य एकत्व द्वार

(४)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

करता किरिया करमको, प्रगट बरवानौं मूल ।
अब बरनौं अधिकार यहु, पाप पुन्य सम तूल ॥१॥

अर्थ—कर्ता क्रिया अरु कर्मको मूल कहतैं रहस्य प्रगट ही बखान्यौ। अब पाप अर पुण्य ये दोनु समतुल्य हैं, यातैं अधिकार वरनौं हौं ॥ १ ॥

अथ ग्यान चन्द्र कला वरनन ॥ कवित्त छंद ॥

जाके उदै होत घट अन्तर,
बिनसै मोह महातम रोक ।
सुभ अरु असुभ करमकी दुविधा,
मिटै सहज दीसै इक थोक ॥
जाकी कला होत सम्पूरन,
प्रतिभासे सब लोक अलोक ।

सो प्रबोध ससि निरखि बनारसि,
सीस नवाइ देतु पग धोक ॥२॥

अर्थ--अब पाप पुण्यद्वार विषैं प्रथमतैं ग्यान चन्द्रकी कलाकौ नमस्कार करै हैं। जिनके प्रबोधके उदय होतु समान, घटमैं जो मोह रूप महातम कहतैं महा अंधकारकौ जो रोक कहतैं अटकाव, सोई विनश जाइ। अरु जिन अन्धकार गयै, एक कर्म अशुभ है ऐसो जो कर्म विषै दुविधा है सो मिटि जाइ। अरु सहज भाव कर्म बंधरूप ऐसैं एक थोक दीसै। अरु जिन प्रबोध-चन्द्रकी सर्व सपूर्ण कला प्रगट भयैं छतैं सब लोक अलोक प्रतिभासै, सोई प्रबोध रूपी चन्द्रमाकौ बनारसीदास मस्तक नवाइकै पग धोक देतु है, प्रणाम करतु है ॥ २ ॥

अथ शुभाशुभ एकत्वीकरन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसैं काहू चंडालो जुगल पुत्र जने तिन्ह,
एक दीयौ बाभनकु एक घरि राख्यौ है।
बाभन कहायौ तिन्हि मद्य मास त्याग कीन्हौ,
चंडाल कहायौ तिन्हि मद्य मास चाख्यौ है।

तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र,
एक पाप एक पुन्य नाउ भिन्न भाख्यो है ।
दुहों माहि दौर धूप दोऊ कर्म बंध रूप,
यातैं ग्यानवत कोऊ नाहीं अभिलाख्यो है ॥३॥

अर्थ—अब जो मोहमैं शुभ अशुभ कर्मकी दुविधा दीसै है, ताकौ एकरूप दिखावै हैं—जैसे काहू चंडालीने जुगल पुत्र जने अरु तिन्हि चंडालीने दोइ पुत्रनिमैं जातु मात्र एक बाभनकौ दीयो अरु एक अपने ही घरमै राख्यो । तहां जो बामनके घरम बढ्योसो बाभन कहायो । तिन तौ मद्य मासकौ त्याग कीनौ । अरु जो चंडालकै घर रह्यौ चंडाल कहायौ, तिन्ह मद्य मास चाख्यौ । तैसो भांति एक वेदनी करमके दोइ पुत्र है, एक पाप है, एक पुण्य है, ऐसौ नाउ जुदौ जुदौ कह्यौ, पै दोउकौ एक सुभाउ है, सौ कहै है । दुहौ माहि दौर धूप कहतैं खेद सताप है । अरु पाप पुन्य ये दोऊ कर्म बंध रूप है । याहीतैं ग्यानवन्तनि कोऊ अभिलाष्यौ नही, चाह्यौ नही ॥३॥

अथ शिष्य प्रश्न ॥ चौपाई-छंद ॥

कोऊ शिष्य कहै गुरु पाहीं,
पाप पुन्य दोऊ सम नाहीं ।

कारन रस सुभाव फल न्यारे,

एक अनिष्ट लगे इक प्यारे ॥४॥

अर्थ—कोऊ शिष्य कहै गुरु पाही, पाप पुन्य दोऊ समान कहै, तापरि शिष्य प्रश्न करै हैं—कोऊ गुरुके पास आइ ऐसौ कहै—स्वामीजू तुम्ह पाप पुन्य सम कहौ हौ, सोतौ सम दीसै नाहीं। पापके अरु पुन्यके कारण न्यारे, रस न्यारे, स्वभाव न्यारे अरु फल न्यारे। अरु यामैं एकतौ अनिष्ट लगै है, अरु एक प्यारे लगे है ॥ ४ ॥

अथ शिष्य कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

संकलेस परिनामनिसौं पाप बंध होइ,

विशुद्धिसौं पुन्न बंध हेतु भेद मानियें।

पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद,

पुन्य उदै साता मिष्ट रस भेद जानियें ॥

पाप संकलेस रूप पुन्य है विशुद्ध रूप,

दुहूँको सुभाव भिन्न भेद यौं बखानियें।

पापसौं कुगति होइ पुन्यसौं सुगति होइ,

ऐसौ फल भेद परतच्छ परवानियें ॥५॥

कर्म है, तातैं बंध रूप है। अरु मोक्ष मार्गमें दुहोंकौ विनाश दरिये, तातैं ये दोनु समान है ॥ ६ ॥

अथ मोक्ष पद्धति कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

सील तप संजम विरति दान पूजादिक,
अथवा असंजम कषाय विषय भोग है।
कोऊ शुभरूप कोऊ अशुभसुरूप मूल,
वस्तुके विचारित दुविध कर्म रोग है।
ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव,
आतम धरममें करम त्याग-जोग है
भौ-जलतरैया राग दोषकौ हरैया महा,
मोक्षको करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥७॥

अर्थ—अर मोक्ष मार्ग विषै दोनाकौ विनाश दिखावै है ब्रह्मचर्य, तपस्या, पाच इंद्रिय निग्रह, मत्र, दान पूजादि प्रमुख क्रिया, ये पुन्य बंधके कारण कर्म हैं, अथवा ये पापके कारन असंयम है, कषाय हैं, अरु विषैकौ भोग है। ये दोनु मैं कौ तो शुभ रूपका कार्य हैं अरु कोऊ अशुभरूप कार्य है, पै वस्तु मूल विचारियें तो दुविधा कर्म रोग हैं कहत दोइ प्रकार

क्रमरोग है। ऐसी बधको कहते पगडंडी, सौ वीतरागदेव बखानिये। आत्मिक धर्मरसी आत्माको स्वभाव देषत ही, कर्म क्रिया त्याग योग्य है। ऐसे पाप पुन्य हय कहे। अरु भव-जलको तरनहार, रागद्वेषको हरनहार, महा मोक्षको करनहार। एक शुद्ध उपयोग उपादेय है ॥ ७ ॥

अथ शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर कथन ॥ सवैया ३१ ॥

शिष्य कहै स्वामी तुम करनी अशुभ शुभ,
कीनी है निषिद्ध मेरै ससे मन माहीं है।
मोखके सधैया ग्याता देश विरती मुनीस,
तिन्हकी अवस्था तौ निरावलंब नाहीं है ॥
कहै-गुरु करमको न्यास अनुभौ अभ्यास,
ऐसौ अवलम्ब उन्हींको गुन पाहो है।
निरुपाधि आतम समाधि सोई शिवरूप,
और दौर धूप पुद्गल परछाही है ॥ ८ ॥

अर्थ—अब अर्द्ध सवैयामें शिष्य प्रश्न करे है अरु अर्द्ध सवैयामें गुरु उत्तर कहै है-शिष्य कहै है—स्वामी तुम तो मोक्ष मार्गमें शुभ करनी अरु अशुभ करनी ... ही

कीनों, याकौ मेरे मनमैं संदेह परै है। जो मोक्ष मार्गके साधक ग्याता, देश, विरतो पंचम गुणस्थानवर्ती भए, अरु मुनीश कहै। ते षष्ठ, सप्त, गुणस्थानवर्ती, सर्व विरतो भए, तिन्हिकी अवस्था तो निरालम्ब है नाही। इतनै अपनो-अपनी शुद्ध क्रियाकौ आलम्बन लियै देश विरती कहावै, तौ करनी कैसे निषिद्ध ? अव गुरु उत्तर कहे हैं—जैसे अक्षरको न्यास मात्रौ श्रुतज्ञानका आलम्बन होइ तैसे शुभ कर्मकी न्यास सौतौ दर्विता स्वरूपमै हैं, पै वह अनुभव ही को अभ्यास है, ऐसी अनुभव अभ्यासस्वरूप आलम्बन सौतौ ग्याताकौ ग्याता पास ही रहै। अरु यामें जो निरुपाधि कहवें रागद्वेष कषाय इच्छादि बिना आत्माकी समाधि है। इतनें ये पररूपतें निरुपयोगीपनै रहनो सोई सिवरूप कहतैं मोक्षरूप है। अरु जो दौर धूप कहतै खेद-सताप है सौतौ पुद्गलकी परिछाही कहतै छाया है ॥ ८ ॥

अथ बंध मोक्ष स्वरूप कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

मोच्छ सरूप सदा चिनमूरति,

बंधमई करतूति कही है।

जावत काल वसै जह चेतन,
तावत सो रस रीति गहो है ॥
आतमकौ अनुभौ जवलौं,
तवलौ सिवरूप दसा निवही है ।
अन्ध भयौ करनी जव ठानत,
वध विथा तव फैलि रही है ॥६॥

अर्थ—अव याही शुभ क्रियामें वध अरु याही शुभ क्रिया में मोक्ष ये दोनु स्वरूप कहे हैं—जिनमूरति कहतं चिदानन्द है, सोतौ मोक्ष स्वरूपी सदा ही है। अरु करतूति कहता क्रिया है, सोतौ सदा वधमई है। जावत काल कहतं जितने काललौं चेतन जहा वसै, तावत कहतें तितने काल लौं साई रसरीति ग्रही है, वाही रसमें रहे हैं। अव याकौ व्यौरौ कहै हैं। जोलौं आत्माकौ अनुभव रहै, तौलौं शुभ क्रिया करतैं हो शिव रूप दिसा निवही। इतनें मोक्ष स्वरूपमें रहै। अप्रमत्त कहावै। अरु अपनौ स्वरूप भूलिकै अन्ध भयौ छतौ जव करनो हो कौ रस ठहरावै, तवतौ वध ही को कष्ट. रोग फैलाव करै ॥ ६ ॥

अथ मोक्ष मार्ग निरूपण ॥ सोरठा ॥

अन्तर दिष्टि लखाउ, अरु स्वरूपको आचरन।
ये परमातम भाउ, शिव-कारन एई सदा ॥१०॥

अर्थ—अब केवल मोक्ष प्राप्तिको कारन कहै—बाह्य दृष्टि छाडिकै अंतर दृष्टि दकै लक्षरी लखियै। अरु ताके स्वरूपकै आचरन करियै। इतनै ग्यान दर्शन चारित्रको आचरियै। ऐसै ही परमात्मा भाउ सिद्ध होई। सदा काल निपै मोक्षको कारन येही है ॥ १० ॥

अथ बंध मार्ग निरूपण ॥ सोरठा ॥

करम शुभाशुभ दोइ, पुद्गल पिंड विभाव मल।
इन्हसौं मुगति न होइ, नाहीं केवल पाइयै ॥११॥

अर्थ—अब बाह्य दृष्टिमैं बंध पद्धति होइ साई कहै है—शुभ कर्म पुन्य, अशुभ कर्म पाप, ये दोउ कर्म पुद्गलको पिंड है। अरु विभाव कहतै राग द्वेषादिक ये मल-रूप हैं, ये दोउ में दृष्टि रहतैं मुक्ति न होइगी, अरु केवल ज्ञान पाइयै नाहीं ॥ ११ ॥

अथ शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

कोउ शिष्य कहै स्वामी, अशुभ क्रिया अशुद्ध,
शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी ।
गुरु कहैं जबलों क्रिया के परिनाम रहै,
तबलों चपल उपयोग योग धरनी ॥
थिरता न आवे तोलों शुद्ध अनुभौ न होइ,
यातें दोउ क्रिया मोख पथ की कतरनी ।
बन्धकी करैया दोऊ दुहौंमें न भली कोऊ,
बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥१२॥

अर्थ—अब या बात परि शिष्यकौ प्रश्न वचन अरु गुरु को उत्तर वचन कहेंको शिष्य कहै है—हे स्वामी ! तुम्ह ऐसा वरनन क्यों न करोही जो अशुभ क्रिया हिंसादिक अशुद्ध है अरु शुभ क्रिया दानादिक शुद्ध है ? या प्रश्नकौ गुरु उत्तर कहै है। अहो शिष्य ! जो-जो क्रियाके परिनाम रहै हैं तोलौं उपयोगको धरनो करत क्षेत्र, इतने उपयोगगत आत्मा चपल रहै है। जौलौं क्रियामें उपयोग रहै तोलौं आत्मा थिरता न [illegible] आत्माकौ शुद्ध अनुभव न

यातें ये पुन्य पापकी दोऊ क्रिया है सो मोक्षमार्गकी काटन हार कतरनी समान है। ये दोउ क्रिया बंधकी करनहार है। यातें दोउ क्रियामें एकहू भली नही, जहा मुक्ति मार्गके बाधक विचारे तहा दोऊ क्रिया निषेध कीनीं ॥ १२ ॥

अथ ग्यान मोक्ष मार्ग यह कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

मुगतिके साधककों बाधक करम सब,
आतम अनादिको करम माहि लुक्यौ है।
एतें परि कहै जो कि पाप बुरौ पुन्य भलौ,
सोई महा मूढ मोख मारगसौं चुक्यौ है॥
सम्यक सुभाउ लिये हियेमें प्रगट्यौ ग्यान,
ऊरध उमगि चल्यौ काहू पै न रुक्यौ है।
आरसीसौं उज्वल बनारसी कहत आपु,
कारन स्वरूप ह्वैके कारजकौं ढुक्यौ है ॥१३॥

अर्थ—अब जो ग्यान है सोई मोक्ष मार्ग है यह कहै है—जो मुगतिकौ साधक आतमा है ताकौ सब कर्म बाधक है। याही तें अनादि कालमौ आतमा कर्म माहि लुकि रह्यौ है। एवं परि जौ ऐसौ कहै कि पाप कर्म तौ बुरौ है अरु पुन्य

कर्म भलौ है, सोतौ महा मूढ जानियै। ज मोक्षमार्गमौ चुक्यौ मानियै। एतैंमें काहूकै भव्यत्व परियाकतें सम्यक स्वभाव आयौ, तब हियेमैं ग्यान प्रगट्यौ, तब ऊर्द्ध दिशिकौ उमागकै चल्यौ, पैं काहू कर्ममौ क्यो न रह्यौ। अरु आरमी सौ उज्वल होइकै अपने ग्यानोपयोगी पनैका कारन स्वरूपी ह्व कैं अपने मुक्तिरूप कार्यकौ आपुहो ढुक्यौ। ऐसैं बनारसी दास कहतु है ॥ १२ ॥

अथ ग्यान तथा कर्म विवरन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जौलौं अष्ट-कर्मकौ विनाश नाहीं सरवथा,
तौलौं अन्तरात्मामैं धारा दोइ बरनी।
एक ग्यान-धारा एक शुभाशुभ कर्मधारा,
दुहौंकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥
इतनो विशेष जु करमधारा बन्ध रूप,
पराधीन सकति विविध बन्ध करनी।
ग्यान-धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार,
दे [illegible] रे भौ समुद्र तरनी,

अर्थ—अब एक आतमा विषै ग्यानकी अरु कर्मकी व्यौरी दिखावै है—जौलौं आठ कर्मकी सर्वथा विनाश होतु नाहीं। तौं मुक्ति न होइ, तौलौं अन्तरात्मामैं दोय धारा सदा वरतियैं है। एक ग्यानकी धारा अरु शुभाशुभ कर्मकी धारा, दोनौं धाराकी प्रकृति न्यारी है। अरु धरना करतै क्षेत्र मोरै न्यारी न्यारी है। यामैं इतनो विशेष है, जु कर्म बंधरूप है, जह जड़ जातैं याकी प्रकृति पराधीन रूप है। अरु प्रकृति बंध स्थिति-बंध, रसबंध, प्रदेशबंध, ऐसैं भांति भांति बंधको करनी। अरु ग्यान धारा मोक्ष सरूप है। मोक्षको करनहार है, सर्व दोषको हरनहार है, अर भव-समुद्र तरिवेको तरनी कहतै नाव समान है ॥ १४ ॥

अथ स्याद्वाद प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमैं।
ज्ञान पक्ष गहै कहै आतमा अबन्ध सदा,
बरतैं सुछंद तेऊ बूडे हैं चहलमैं ॥
जथा जोग करम करै पै ममता न धरै,
रहै सावधान ग्यान ध्यानकी टहलमैं।
तेई भव सागरके ऊपरि ह्वै तिरै जीव,
जिन्हिको निवास स्याद्वादके महलमैं ॥१५॥

अर्थ—अब जो ग्यान क्रिया स्या मोक्ष ऐसो स्यादवाद है ताको प्रशंसा करे हैं—अब जो क्रियावादी है, सो कहै हैं, न ज्ञान श्रेय, याको यहु अर्थ—जो ज्ञान है सो भलो नाहीं जो ज्ञानमैं संशो उपजै है, अरु मथयंत जीव इनको न उनको, तातैं क्रिया कर्म किये मोक्ष है। ऐसैं जीव निष्फल भयो मिथ्यातकी गहलम कहै है। अब जो ग्यानवादी सांख्यमती है, सो ग्यान ही को पक्ष गहै है। अरु ऐसा कहै बंध मोक्ष प्रकृति में है, पै आतमा सदा अबंध ही वर्त्त है, ऐसी श्रद्धा सौ स्वच्छंद कहतैं अपने छंदैं वरतै तऊ चहल कहतैं कर्दममैं बूडे हैं। अब जो स्यादवादी सो काहुको विरोधी नाहीं, तातैं यथायोग्य गुन थाना माफक कर्म क्रिया करै है पै कर्मको उदय दशामें रासे है। अरु ममता न धारै है। ग्यान ध्यानकी सेवामैं सावधान रहै है तेई स्याद-वादी जीव भव समुद्रके उपरि ह्वै तिरि रहै है जिन्हको विश्राम स्यादवाद रूप महल मंदिरमें हुइ रहा है ॥ १५ ॥

अथ मूढ विचक्षण का वर्णन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसैं मतवारो कोऊ कहै और करै और,
तैसो मूढ प्रानी विपरीति ता धरतु है।
अशुभ करम बंध करन वषानै मानै,
मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥

अन्तर सुदृष्टि भई मूढता विसरि गई,
ग्यानकौ उदौत भ्रम तिमिर हरतु है ॥
कारन सौं भिन्न रहै आतम स्वरूप गहै,
अनुभौ आरम्भ रस कौतुक करतु है ।१६।

अर्थ—अब मूढकी क्रियाकौ अरु विचक्षणकी क्रियाकौ वर्नन कर रहे हैं—जैसे कोऊ मतवारौ मनुष्य है सो कहै कछु और, करै कछु और, तैसे जो मूढ जीव सो उलटो ही भाव धारै है। अशुभ कर्मकौतो बंधको कारन बषानै, अरु मानै। और सुगति कौ हेतु कारन शुभरीतिसौं, शुभक्रिया आचरै है। अब ग्यानीकी क्रिया कहै। अन्तर सुदृष्टि भइ वातैं मूढता विसरि गई, अरु ग्यानकी उद्योत भयो, तब भ्रमरूप तिमिर कहतें अंधकार है ताकौ हरतु है सुगतिकौ कारन जो शुभक्रिया तासौं भिन्न रहै, ममता न धारै, अरु आत्मा हीको स्वरूप गहै, आत्माके अनुभवकी आरंभिकै जो या रसकौ कौतुक है ताकौ करतु है ॥ १६ ॥

इतिश्री समयसार नाटक विषै पाप पुन्यकी एकताको बालबोध रूप वचनिका सपूर्ण भई ॥

इति पाप पुण्य एकत्वाधिकार समाप्त ॥

आस्रव द्वार

(५)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप।
अब आस्रव अधिकार कछु, कहो अध्यातम रूप ।१।

अर्थ—पाप पुन्यकी एकता है सो अगम है, अनूप है, सो वरनी दिपाई। अब कछु अध्यातम रूप आस्रवको अधिकार है सो कहौ हौ ॥ १ ॥

अथ ज्ञानबल वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जेते जगवासी जीव थावर जंगमरूप,
तेते निज वसि करि राखे बल तोरिकै।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा,
रोपि रन थम्भ ठाढो भयो मूछ मोरिकै ॥
आयो तिहि थानक अचानक परम-धाम,
ग्यान नाम सुभट सवायो-बल फोरिकै।

आस्रव पछार्यौ रन थम्भ तोरि डार्यौ ताहि,
निरखि बनारसी नमत करि जोरिकैं ॥ २

अर्थ—अब आस्रव सुभटको भाजनहार ग्यान सुभट ता
नमस्कार करे हैं—जैसे थावर जंगम जगतवासी जीव ता
सहज बल तोरिके तेते जीव जिनि आस्रव जो धरि अपने व
करि राखे है, ऐसो महा अभिमानी जगतमें आस्रव रूपी अग
जो धारे है, सो रन थम रोपिके मूछ मोरिके ठाडो भयो
कहे हैं। जगतमें मोको जीतनहारो कोऊ नाही। ति
थानकमें अचानक ही परम धाम कहेते अति तेजस्वी ग्य
नाम सुभट, या आश्रव जोधाको प्रतिपक्षी आश्रव जोधा
लरिबेको सवायो बल फारिके आयो, वा आश्रव जोध
पछारि डार्यो वाको रन थम तोरि डार्यो, वा ग्यान सुभट
निरखिके बनारसीदास हाथ जोरिके नमस्कार करे है ॥ २

अथ द्विविध आश्रव लक्षण तथा ज्ञान लक्षण
॥ सवैया २३ सा ॥

दर्वित आश्रव सो कहिये जहि,
पुग्गल जीव प्रदेश गरासै

भावित आश्रव सो कहियै जहि,
राग विरोध विमोह विकासै ॥
सम्यक पद्धति सो कहिये जहि,
दर्वित भावित आश्रव नासै ।
ग्यान-कला प्रगटै तिहिठौ अरु,
अन्तर बाहिर और न भासै ॥३॥

अथ—अघ द्रव्यरूपी आश्रव अरु भावरूपी आश्रव कौ लक्षण कहै है तैंमें सम्यक ज्ञानकौ भी लक्षण कहै है—जहा पुद्गल द्रव्य है सौ जीवके प्रदेशकौ ग्रासै, इतनै निगलि जाइ सोतौ द्रवित आश्रव कहियै। अरु जहा द्रवित आश्रवकै प्रसगै आत्मामे राग द्वेष मोहकौ विकास होइ, सौतौ भावित आश्रव करि जानियै। अरु आत्मामैं सम्यक पद्धतिमो सम्यक स्वरूप याकौ कहियै, जहा द्रवित आश्रव अरु भावित आश्रवको नाम होइ, अरु तिहि ठौर। सम्यक पद्धति विषै ग्यानकी कला प्रगटै। तातैं अन्तर भावाश्रवमैं, बाहिर … और सौ भासै नहीं,सम्य…

अथ ग्याता लक्षण ॥ चौपाई ॥

जो दरवाश्रव रूप न होई, जहि भावाश्रव भाव न कोई ।
जाकी दशा ज्ञानमय कहिये, सो ग्यातार निराश्रव कहियै ॥ ४ ॥

अर्थ–अब सम्यक स्वरूप धनी ग्याता ताको लक्षण कहै है –जो द्रव्याश्रवके स्वरूपमै होइ नहीं अरु जहा भावाश्रव कोइ भाव कोऊ नाही, अरु जाकी दशा ज्ञानमई पाइये, सोई जीव ग्यातार कहतँ ग्यानी । अरु निराश्रव कहतँ आश्रव रहित कहियै ॥ ४ ॥

अथ अब ग्यानको सामर्थपनो ताको वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जेते मनगोचर प्रगट बुद्धि पूरवक,
तिन्ह परिनामनिकी ममता हरतु है ।
मनसों अगोचर अबुद्धि पूरवक भाउ,
तिन्हके विनाशवेको उद्दिम धरतु है ॥

याहो भाति पर परिनतिकौ पतन करै,
मोखकौ जतन करै भौजल तरतु है।
ऐसौ ग्यानवत तै निराश्रव कहावै सदा,
जिन्हकौ सुजस सु विचच्छन करतु है।५।

अर्थ अब ग्यानकी समर्थाई तै निराश्रवपनौ दिपावै है–जेते परिनाम प्रगट मनगोचर है, इतने जिन्ह परिनामनकौ मनमैं समारै है। अरु बुद्धि पूर्वक कहता अपनी अहं बुद्धितै जो उपनै अशुद्ध परिनामनिको ममता छाडै है। अरु जे भाव मनमा आगोचर कहतै जाकौ स्वरूप मनमौ भासै नहीं। अरु अबुद्धि पूर्वक कहतै तिनकी बुद्धिको प्रचार लगै नहीं, ऐसै अनागत कालके जो अशुद्ध परिनाम ताके तिनासनेकौ उद्यम धरै है। याही भाति करकै पर परिनतिकौ कहतै पर वस्तुकौ जा परिनाम अतीत कालमैं भयौ है, वर्तमान-कालमै है, अनागत कालमै होइगौ, ताकौ पतन करै, या परिनतिसौं मोख कहतै छुटिवौ, वाकौ जतन करै। ऐसे जो ग्यानवत प्रानी है। तै मैं सदा निराश्रव कहावै। जिन्हकौ सुजस स्तुति वखानक सुविचच्छन कहतै पडित पुरुष स्तुति करै हैं॥ ५॥

अथ शिष्य प्रश्न कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

ज्यो जगमें विचरै मतिमन्द,
सुछद सदा वरतै वुध तैसो ।
चचल चित्त असजत-वैन,
सरीर सनेह जथा वत जैसो ॥
भोज सयोग परिग्रह सग्रह,
मोह विलास करै जहि ऐसै ।
पूछत शिष्य आचारिजको यह,
सम्यक्‌वत निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

अर्थ—अव ग्यानीको निराश्रव कह्या, परिशिष्य प्रश्न करै है--जैसै मतिमद कहतै अग्यानी, जगतमै स्वच्छद कहतै आपनंदाई वर्त्तै, तैसै वुध कहतै पडित सोऊ सदा तैसी]ाति वर्त्तै, सोई भाति कहै है, चचल चितवनै रहै, अरु]म जत वैन कहतै अविचारै वचन वोलै, अरु शरीर परि स्नेह]ोऊ जैसै जथावत कहतै प्रवत्तावै, अरु अग्यानी की नाई भोग सजोग रापै है, अरु परिग्रहकी सग्रह करै, अरु जिह ग्यान की अवस्थामै मोहको विलास ऐसै ही करै, अग्यानीकी,

ग्यानोको एकपो भाति देखिकै आचार्यको पूछै है ? अहो स्वामी ! यह सम्यक्त्व मनुष्य निराश्रव कैसे कहियें ॥ ६ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

पूरव अवस्था जे करम-बंध कीने अब,
तेई उदै आइ नाना भाति रस देत हैं।
केई शुभ साता केई अशुभ असाता-रूप,
दुहौं सौं न राग न विरोध समचेत है ॥
जथाजोग क्रिया करै फलकी न इच्छा धरै,
जीवन मुकतिको बिरद गहि लेतु है।
यातै ग्यानवतको न आश्रव कहत कोऊ,
मुग्ध तासौ न्यारे भए अशुद्धता समेत है ॥७॥

अथ—अब ऐसे प्रश्न परि गुरु उत्तर कहै हैं-पूर्वकालमैं अग्यान अवस्थामे जे जे कर्मबंध कीने, अब वर्तमान-कालमैं तेई कर्म उदय आइकै नाना भातिको रस दे हैं, ता कर्मन विषैं केई शुभ कर्म सातारूप हैं, केई अशुभ कर्म असातारूप है, यहा ग्यानीकै दुहो कर्मसौं राग नही, अरु विरोध नहीं, यातैं समचित्त है। अरु यथायोग्य कहतें उदै ... करै

पै फलकी इच्छा धरै नही। अरु जीव तेहू मुक्ति भयौ ऐसै है। तातैं जीवन मुगतिको विरुद्ध गहि राषै है। याही रीतितैं ग्यानरत मनुष्यको आश्रव कोऊ रहत नाही। मुग्ध तासौं न्यारे भए। इतनें अज्ञान तामौं न्यार भए। अरु शुद्धता समेत है॥ ७॥

अथ रागद्वेष लक्षण तथा मोह लक्षण तथा ग्यान लक्षण।दोहरा।

जो हित-भाव सु राग है, अनहित-भाव विरोध।
भ्रामक-भाव विमोह है, निरमल भाव सुबोध॥८॥

अर्थ—अब रागद्वेषको लक्षण कहै है—तैसै मोहकौ लक्षण कहै हैं, तैसें ग्यानकौ लक्षण कहै जोतो हित भाव है सोतौ राग कहिये, अरु अनहित भाव सो विरोध कहिए, अरु जो निर्मल भाव सो बोध कहते ग्यान कहिये॥ ८॥

अथ रागद्वेष कथन॥ दोहरा॥

राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल।
येई कर्म बढाईकै, करै धरमकी भूल॥ ९॥

अर्थ—अब रागद्वेषकौ स्वरूप कहै है—रागद्वेष विमोह है सो आत्माको मल है, येई दोष आश्रवको मूल है। येई रागद्वेष मोह है सो करमको बढाइकै धरमकी भुलाइये है॥९॥

अथ ग्याता निराश्रव कथन ॥ दोहरा ॥

जहां न रागादिक दशा, सो सम्यक परिनाम ।
यातैं सम्यकवंत कौं कह्यौ निराश्रव नाम ॥ १० ॥

अर्थ—जहां रागद्वेष मोह नाही सोई सम्यक परिनाम कहिये, याहीतें सम्यकवंत मनुष्यको निराश्रवी कह्यौ ॥ १० ॥

अथ ग्यान विलास कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जे केई निकट-भव्यरासी जगवासी जीव,
मिथ्यामत भेदि ग्यान भाव परिनए हैं ।
जिन्हिकी सुदिष्टिमैं न राग द्वेष मोहक हैं,
विमल विलोकनिमैं तीन्यौं जीति लये हैं ॥
तजि परमाद घट सोधिजे निरोध जोग,
शुद्ध उपयोगकी दशामैं मिलि गये हैं ।
तेई बंध पद्धति विडारि पर संग डारि,
आपमैं मगन ह्वैके आपरूप भये हैं ॥ ११ ॥

अर्थ—अब ऐसें ग्याता निराश्रवपनामें विलास कहे हैं तैसे कहे हैं—जे केई भव्य राशि माहिले जगवासी जीव हैं, भव्यत्व परिपाकतें निकट भए हैं, सो मिथ्यामत भेदिके अपनो

अथ शुद्धनय प्रशसो ॥ दोहरा ॥

यहु निचोर या ग्रथको, यहु परम-रस पोख ।
तजे शुद्धनय वध है, गहे शुद्धनय मोख ॥१३॥

अर्थ—अव ग्यानके शुद्धपनाकी प्रशसा या समस्त ग्रन्थ कौ योही रहस्य है, अरु योहो उत्कृष्ट रसकौ पोख है। शुद्धताको नय रीति छाड्यौ तो वध है, शुद्धताकी नय रीति गह्यौ तो मोक्ष है॥ १३ ॥

अथ जीव विलास वरनन ॥ सवैया ३१ सा ॥

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव,
हूवे रह्यो वहिरमुख व्यापत विषमता।
अन्तर सुमति आई विमल वडाई पाई,
पुग्गलसौं प्रीति टूटी छुटी माया ममता।
शुद्धनय निवास कीन्हो अनुभो अभ्यास लीन्हों,
भ्रमभाउ छाडि दीन्हो लीन्हो चित समता
अनादि अनत अविकलप अचल ऐसो,
पद अविलव अवलोके राम रमता ॥१४॥

अर्थ—अब दोउ नयमैं जीवकौ विलास दिखावै है—चौदह राजु लोकमैं कर्मकौ चक्र कहतैं कटक फिरि रह्यौ है। तामैं जगतवासी जीव हू फिरि रह्यौ है। अरु या फिरिवेमैं जीव विषमता व्याप्त भयौ, जो कवहीं इष्ट संयोगी, कवहीं अनिष्ट संयोगी भयौ, तातैं बहिर्मुख ह्वै रह्यौ। जो बाह्य विषय भोगकौ ही ग्राहक भयौ, अन्तरदृष्टिसौं आतमा न जान्यौ। एतेमैं अन्तर सुमति उपजी, तातै अपनी निर्मल प्रभुता पाई, तब परवस्तु पुद्गलसौं प्रीति टूटी। इतनै काललौं पुद्गलसौं, माया ममता ही, सो छूटी। जैसे शुद्ध नय करि आतमाकौ स्वरूप कह्यौ, तैसौ शुद्ध नय मैं आप निवास कीनौ, अरु आत्मा स्वरूप मैं उपयोग राखिकै अनुभव अभ्यास लीनौ, याहीतैं भ्रम-भाव छाडि दीनौ। अरु समाधिमैं मन भींजि रह्यौ। तबतैं अनादि अनन्त काललौं या स्वरूपमैं कोऊ और विकल्प न पाइये। ऐसौ अपनौ अचल पद अविलोकिकै अपनो जो रमता राम है ताकौं अवगाहे, देखै॥ १४॥

अथ सम्यक्त्व प्रशंसा कथन॥ सवैया ३१ सा॥

जाके परगास मैं न दीसै राग द्वेष मोह,
आश्रव मिटत नहि बंधकौ

तिहों-काल जामैं प्रतिबिंबित अनन्तरूप,
आपुहौ अनंत सत्ता नततैं सरस है ॥
भाव-श्रुत ग्यान परवान जो विचार वस्तु,
अनुभौ करै जहा न वानी कौ परस है।
अतुल अखड अविचल अविनासी धाम,
चिदानद नाम ऐसौ सम्यक दरस है ॥१५॥

अर्थ—अव आत्माकी शुद्धपनौ सोई सम्यग् दर्शन कहियै ताकी प्रशसा—जिनि शुद्ध आत्माके प्रकाश मैं रागद्वेष मोह न दीसै। अरु आस्रव न होइ। तातैं वधकौ त्रस कहतै लागिनौ सोई न होइ। अरु जिन शुद्ध आत्माके प्रकाशमैं अनन्त रूप प्रतिविंवत होतु है। अरु आपु स्वरूप हू अनत है, अरु सत्तानत तैं सरस है, सो सत्तारूपी अनत पदारथ है, ताहूतैं सरस है। इतनै याकै पर्याय सर्वत अधिक, अरु भाव श्रुत ग्यान प्रमान करके वस्तुकौ विचारि अपनौ अनुभव करै। अरु जहा वानीकौ परस नाही। इतनै जो वचन गोचर नाहीं अनक्षर रुप अपनौ अनुभव आप ही करै, ये सयोगी गुनस्थानक

की दशा है। याको तुलना नहीं, तातैं अतुल है ताकी खंडना नहीं, तातै अखंड। ऐसो अविचल, अविनाशी धाम कहतैं तेज सोई चिदानंद स्वरूप ऐसोई स्वरूप सम्यग् दर्शन कहिये ॥ ॥ १४ ॥

इति समयसार नाटक विषै बालबोध रूप आश्रवद्वार संपूर्ण भयौ ॥

इति आश्रवाधिकार समाप्त ॥

संवर द्वार

(६)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

आश्रवको अधिकार यहु, कह्यौ जथावत जेमु।
अब संवर वरनन करौं, सुनहु भविक धरि प्रेमु ॥१॥

अर्थ—यौं आश्रव अधिकार जिस भांतिसौं जैसो है वैसो ही कह्यौ। अब संवर तत्त्वकौ वर्णन करोहौं, अहो! भव्य प्राणी प्रेम धरिकैं सुनो! ॥१॥

अथ ग्यान वर्णन ॥ सवैया ३१ सा ॥

आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसौ,
आश्रव महातम अखण्ड अण्डवत है।
ताको विसतार गिलिवे कौं परगट भयौ,
ब्रह्म मंडलको विकासी ब्रह्म ड मंडवत है॥
जामैं सब रूप जो सबमैं सबरूप हो मैं,
सबनि सौं अलिप्त आकाश-खंडवत हैं॥

सोहै ग्यान भान शुद्ध संवरकौ भेष धरे,
ताकी रुचि रेखको हमारी डडवत है ॥ २ ॥

अर्थ—अब सवर द्वारके आदि ग्यान वस्तुकौ नमस्कार करै—आतमाकौ अहितकारी अरु अध्यातम स्वरूप सौं रहित एसौ आश्रवरूप महातम कहत महा अन्धकार, अखड पनै अण्डवत है।

सब लोकि ढाकि रह्यौ है, ताको विसतार गिलिवैकौ जो ग्यान-सूर्य प्रगट भयौ। ब्रह्माड कौसौ, सब लोकालोक कौ विरामी भयौ, अरु ब्रह्माडकौ मडन जाहीतैं होतु है। अरु यामैं सवरूप भासै है। अरु जो सबही स्वरूप सौं सबमैं पाइ यै है। अरु सब मूर्तिक वस्तुसौं अलिप्त है, आकाश पडवत, सो आकाश खडको नाई है। सोई ग्यान रूपी भानु कहतैं सूर्य जो है। अरु शुद्ध सम्वरकौ भेष धरि रह्यौ है। ताकी रुचि रेषाकी इतनै थाके उदयकौ हमारी डण्डोत है, नमस्कार है॥ २॥

अथ भेद ग्यान महिमा कथन ॥ सवैया २३ ॥

शुद्ध सुछेद अभेद अवाधित,
भेद-विज्ञान सतीछन आरा।

अतर भेद सुभाव विभाउ,
करै जड़ चेतन रूप दुफारा ॥
सो जिन्हके उरमें उपज्यौ,
न रुचै तिन्हकौ परसग-सहारा ॥
आतमकौ अनुभौ करते
हरषै परषै परमातम धारा ॥३॥

अर्थ—अब जड चेतनकौ भेद ग्यान तैहो सम्यर रूपी परमात्माकौ पहिचानै सो कहै है—शुद्धपनै स्वच्छद कहतै आप अपनै न्यारै स्वरूप कौ दिपावनहार, अभेद कहतै एक स्वरूप अनाधित सो काहू प्रमाणांतरै अपडित, ऐसौ भद ग्यान सो तीक्षन आरा है। ग्रला कहतै आरतै, अन्तरात्मा मै भेदन करिकै स्वाभाव अरु विभाव न्यारे करै। जडरूपकौ चेतन रूपकौ दुफार करि दिपावै, सो ऐसौ भेद विग्यान जिन्हकै हियैमै उपज्यो है तिहि जावकौ पर वस्तुकौ सग सोई सहारा सीर रुचै नहीं। अरु तेई जीव अपनै स्वरूपकौ अनुभव करिकै यथार्थपनै वेदिकै अन्तरात्मामै जो परमात्माकी धार है ताकौ परखै ॥ ३ ॥

अथ सम्यक समर्थता कथन ॥ सवैया २३ ॥

जो कबहों यहु जीव पदारथ,
औसर पाइ मिथ्यात मिटावें
सम्यक धार प्रवाह वहे गुन,
ग्यान उदै मुख ऊरध धावै ॥
तो अभिअन्तर दर्वित भावित,
कर्मकलेश प्रवेस न पावै ।
आतम साधि अध्यातमके पथ,
पूरन ह्वै परब्रह्म कहावै ।४॥

अर्थ—अब भेद विग्यान है सो सम्यक् ग्यान है, ताकी समर्थाई तै स्वरूप प्राप्ती निजीक है, यहु कहै है—जो कबहीं मो जीव पदार्थ है सो यथा प्रवृत्तकरण रूप औसर पाइकै मिथ्यात ग्रन्थि भेदिकै मिथ्यातकौ मिटावै, अरु सम्यकत्व रूप शुद्ध जल धाराको प्रवाह बहै अरु ग्यान गुनकें उदयतैं ऊर्द्ध मुपहूकै सुगति सनमुख दौरै तो अभ्यतर जो द्रवित कर्म अरु भावित कर्म ताके क्लेशको प्रवेश न होइ । प्रकृति

प्रदेश रूप कर्म सो द्रवित कर्म अरु रागद्वेषादिक सो भावित
कर्म, ये दोऊ प्रवेश न करि सकै। अरु अध्यातम कै पथ
मै आइकै, आतमाको साधिकै, अपने गुनमई पूरन हु
कै परब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

अथ—सम्यकदृष्टि महिमा कथन ॥ सवैया २३ ॥

भेदि मिथ्यात सुवेदि महारस,
भेद विज्ञान कला जिन्ह पाई
जो अपनी महिमा अवधारत,
त्याग करे उर सौज पराई
उद्धत रीति फुरी जिन्हके घट,
होत निरतर जोति सवई
ते मतिमान सुवर्न समान
लगे तिन्ह कौन शुभाशुभ काई ॥५

अर्थ—अब सम्यकको कारन सम्यग्दृष्टि ही है ता
महिमा कहै है—मिथ्यात ग्रन्थी भेदिकै अरु उपशम रूप म
रस वेदिकै, जिन्हि बुद्धिवत भेद विग्यानकी कला पाई।

नो भेद विग्यान तैं अपनौ स्वरूप पाइकै, अपनी ग्यान दर्शन चारित्र रूप महिमाकौ अवधारै। अरु उर कहतैं दीसै पराई सौन कहतैं सामग्री त्याग करै। अरु जिन्हकै घटमैं उद्धत रीति कहतैं देख विरतीकी रीति फुरी, अरु निरन्तर सपतैं सवाई ज्योति जाकी होतु है। तेई मतिमानकहतें बुद्धिवन्त कहियै अरु सुवर्न समान है, तिन्हकौ शुभ अशुभ कर्मरूप काई कहतैं काट न लगि सकै ॥ ५ ॥

अथ भेदग्यान महिमा कथन ॥ अडिल्ल छंद ॥

भेदग्यान संवर-निदान निरदोष है,
संवरसौ निरजरा अनुक्रम मोख है।
भेदग्यान शिवमूल जगत महि मानियै,
यदपि हेय है तदपि उपादे जानियै ॥६॥

अर्थ—अब संवर मूल भेदविज्ञान है सो परंपरायें मोक्ष कौ कारन कहै हैं—भेदग्यान है सो निर्दोष संवर कौ निदान है, मूल कारन है, अरु निर्जरा मोक्षको कारण है। ऐसे अनुक्रम मोक्ष है। याही सं भेदविग्यान है सो जगतमैं मोक्ष को मूल मानियें। तैं ये शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा तैं भेद-

ग्यान है यहै त्याग आये है, तदपि कहते तोपिण याकी उपादेय सो आदरिवा जोग्य जानियैं ॥६॥

अथ स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

भेद ग्यान तबलौं भलौ जबलौं मुकति न होय।
परम ज्योति परगट जहा, तहां न विकलप कोय॥७॥

अर्थ—अब स्वरूप पायें भेदग्यान की हेयपनों दिपावै है—भेदग्यान तोलौं भलौ है जो लौं जीव कौ मुकित न होइ। जहा परम ज्योति प्रगट होइ तहा विकल्प कोऊ न रहै-तो भेदग्यान कैसे रहै ॥७॥

अथ भेदग्यान महिमा कथन ॥ चौपाई ॥

भेद ग्यान संवर जिन्हि पायौ,
सो चेतन शिवरूप कहायौ।
भेद ग्यान जिन्हके घट नाहीं,
ते जड़ जीव बंधे घट माहीं ॥८॥

अर्थ—अब भेदग्यान मुकति कौ उपाय यहु कहै है-जिन्हि जीव भेदग्यान रूप संवर पायो, सोई चेतन शिवरूप कहायो,

क्ति रूप कहिये। जिन्हके घट मैं भेदग्यान नाहिं, ते मूढ़
ति घट पिंड मैं बंधे ही रहै ॥८॥

अथ भेदग्यान कर्त्तव्य माहात्म्य ॥ दोहरा ॥

भेद ग्यान साबुन भयौ, सम-रस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आतमा, धोवै निज गुण चीर ॥ ९ ॥

अर्थ—भेदविज्ञान से ज्यों आत्माकूं निर्मल करै सोई
कहै है—भेदविज्ञान साबुन भयो है, उपशमरस निर्मल पानी
है, अरु अन्तरात्मा है सो धोबी है, अपने गुणरूप चीर है
ताको धोवै ॥९॥

अथ भेदग्यान कर्त्तव्य कथन । सवैया ३१ ॥

जैसैं रज-सोधा रज सोधिकै दरब काढ़ै,
पावक कनक काढ़ि दाहत उपलकौं।
पंकके गरभमैं ज्यौं डारिये कतक-फल,
नीर करै उज्जल नितारि डारै मलकौं॥
दधिकौ मथैया मथि काढ़ै जैसे माखनकौं,
राजहंस जैसें दूध पीवै त्यागि जलकौं।

तैसे ज्ञानवंत भेद ग्यानकी सकति साधि,
वेदै निज संपति उछेदै पर दलकौं ॥१०॥

अर्थ—अब जो भेद विग्यानकी क्रिया है सो कहे है—जैसे कोऊ रज सोधा कहतें न्यारियो, सो रजको सोधि कै, सोनारूप प्रमुख द्रव्य को काढे। तहा पावक कहतें अग्नि लगाइ कै कनक को काढिकै अरु उपल कहतें पत्थर को जारि डारै। अरु एक और दृष्टान्त है—जैसे कुतक फल कहतें निर्मली, पक के गरभ मैं सो कर्दमके बीचि डारियै, तब वह कुतक-फल पानी को निर्मल करै, अरु मलको निवारि डारै। एक और दृष्टान्त—जैसे कोऊ दही को मथनहार दही को मथि कै माखन काढै। और दृष्टान्त दे है—जैसे राजहंस पक्षी दूध पानी एकठे है पै दूध को पीवे अरु जल को त्यागै, तैसैं ग्यानवंत प्रानी भेद विग्यान की सकति साधि कै अपनी संपदा ग्यान ही को वेदै, अरु जो परदल कहतें पुद्गल की कटक रागद्वेषादिक ताको उछेदै है ॥१०॥

अथ भेदग्यान मोक्ष मूलकथन ॥ छप्पय ॥

प्रगटि भेद विज्ञान आप गुन पर गुन जानै,
पर परिनतिकौ त्याग, शुद्ध अनुभव थिति ठानै ॥

करि अनुभव अभ्यास, सहज संवर परगासै।
आश्रव द्वार निरोध, कर्म-घन तिमिर विनासै॥
छाय करि विभाव समभाव भजि
निरविकल्प निज पद गहै।
निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर
परम अतीन्द्रिय सुख लहै॥ ११॥

अर्थ—अब संवर द्वारके अन्तै भेदग्यान ही को ग्यान मूल कहै है—भेदग्यान है सो तो प्रगट हो अपनै गुन को अरु परायै गुन को जानै है तब तैं पर वस्तुमै जो परिनमन है, ताको त्याग करै। अपनै शुद्ध अनुभवको ठहराय राखै। अरु अनुभवको अभ्यास करिकै स्वरूप संवरको प्रकाशै, आश्रव द्वार को निरोध करिकै कर्मरूप जो मेघ-अन्धकार है ताको विनाशै, तबतै विभाव कहतै मोहदशा ताको क्षय करिकै समभाव मो समाधि भजै, तबतै जहा कोउ विकल्प नाहिं ऐसो कोऊ निर्विकल्प अपनो पद स्थानक है सोई गहै तबतै जिहि सुखमै मल नाही। याही तैं विशुद्ध अनन्त काललौ, एकरूपी, तातैं शाश्वत थिर, ऐसो जो अतीन्द्रिय कहतै इन्द्रिय गोचर नहीं सोई सुख पावै॥११॥

इति श्रीसमयसार नाटक विषै बालबोधरूप संवरद्वार सम्पूर्ण भयौ।
इति संवराधिकार समाप्त॥

निर्जरा द्वार

(७)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

वरनी संवरकी दशा,
जथा जुगति परवानु
मुकति वितरनी निर्जरा,
सुनहु भविक धरि कानु ॥१॥

अर्थ–अब संवररूपकी दशा कही, जैसी जुगति अरु प्रमान लिये है। अब मुकतिकी वितरनी कहवे देनहारी, ऐसी निर्जरा है। अहो भव्यलोको! तुम कान माडिकै सुनो ॥१॥

अथ निर्जरा स्वरूप कथन ॥ चौपाई-छंद ॥

जो संवर-पद पाय अनंदै,
जो पूरव कृत कर्म निकंदै।
जो अफंद ह्वै बहुरिन फंदै,
सो निरजरा बनारसि वंदै ॥२॥

अर्थ—अब निर्जरा कर्मो कहियें, ताको स्वरूप कहे हैं—जो अपनो शुद्ध स्वरूप राखनो सो सवर कहियै। ताको पद पाइकै आनन्द करै, अरु जो पूर्व कालमै कर्म किये हैं ताको निकंदै, जड ममेत उखारि डारै। अरु जो कर्म कद सो छटिकै बहुरि फल मै होइ नही, सोई आत्मा कै निर्जरा कहियै। या निर्जरा को बनारसीदास नदै हैं ॥२॥

अथ सम्यक्त महिमा कथन ॥ दोहरा ॥

महिमा सम्यक ग्यान की,
अरु विराग बल जोइ।
क्रिया करत फल भुञ्जतें,
करम बध नहि होइ ॥३॥

अर्थ—यहा निर्जरा को कारन सम्यक्त हो है, यातें सम्यक्तको महिमा कहै हैं—जो कर्म छूटै सो फेरि न बधै या सम्यग् ग्यानकी महिमा है। अरु या सम्यग ग्यानके सग वैराग्य बलको जोग है तातें शुभ अशुभ क्रिया करत ही अरु वाको फल भोगवत ही शुद्धलानद्ध नये कर्मको बध होइ नाही ॥३॥

अथ सम्यक्त महिमा कथन ॥सवैया ३१ सा॥

जैसे भूप कौतुक स्वरूप करै नीच कर्म,
कौतुकी कहावै तासौं कौन कहै रक है
जैसै विभचारिनी विचारै विभचार वाकौ,
जारही सौं प्रेम भरतासौं चित थक है
जैसे धाइ बालक चुघाइ करै लालि पालि,
जानै ताहि और कौ जदपि वाके अङ्क है
तैसे ग्यानवत नाना भाति करतूति करै,
किरियाकौ भिन्नमानै यातैं निरलङ्क है ॥

अर्थ—अब सम्यक्त महिमामें क्रिया करत ही कर्म निर्जरा दृष्टात दिढावै हैं, जैसे कोऊ भूप कहतं ईश्वर राज सो अपने कौतुकी सरूपै कोऊ कैसोई घटघट प्रमुख नीच करै है तो वह ऐसी क्रिया करतो कौतुकी ही कहावै, पै य रक कौन कहै? अरु जैसे कोऊ कुलटा व्यभिचारिनी है यद्यपि भर्त्तारके सग रहै हैं तोहू भत्तार सौं चित नाहीं, मनमें व्यभिचार ही विचारै, जो मैं औसर पाऊँ निकलू, अरु वाकौ जारी सौं ही प्रेम है। औरों दृष्टात

जैसे कोऊ धाइ है पराये बालककों चुधावै है, लालि पालि करै है, इतनैं खिलावै है अरु अङ्क कहतैं अपने उच्छगमें लै बैठे है, जद्यपि ऐसी क्रिया करै है तौहू बालककौ परायो ही जानै। तैसे ये तीन दृष्टांत, ज्यौं सम्यग ज्ञानवन्त है सो नाना भांति की शुभ अशुभ क्रिया करै है राजा श्रेणिककी नाई, भरत चक्र वर्त्ति की नाई और हू साधुकी नाई, पै क्रियाकौ पुद्गल सयोग जानै, स्वरूप सौं भिन्न मानै, यातै बन्ध कलंक लगै नाहीं ॥ ४ ॥

पुन सवैया ॥ ३१ ॥

जैसे निसि वासर कमल रहै पकही में,
पकज कहावै, पै न वाके ढिग पक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधर सौं गहावै गात,
मन्त्रकी सकति वाके विना विष डक है॥
जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अङ्ग,
पानीमें कनक जैसे काई सौं अटङ्क है।
तसै ग्यानवत नाना भांति करतूति ठानै,
किरियाकौ भिन्न मानै यातै निकलङ्क है ॥५॥

अर्थ—औरी ही क्रिया जरि निकल्कपनौ दिखावै, जैसैं कमल है सो रातदिन पक रहत कर्दमहीमें रहैं अरु ताहूतै पक्ज ही कहाय, पै कमल कै ढिग पक्को फरस नाहीं। अरु जैसैं कोऊ गारडी—मन्त्रवादी है मो अपने गाल कहतें शरीरको सर्प सौं गहावै-कटावै, प वा मन्त्रवादीके मन्त्रकी शक्ति सौं सर्पकी डक विप सजोग रहित होइ। जैसैं जीभ इन्द्री घृत, दधी प्रमुख की चिकनाई गहै है, अरु अपने अग रूपी रहै। और एक दृष्टात है कनक कहतैं सुवर्ण पानी में रहै पै काई कहतें काटतैं अटक रहै। तैसी भाति ग्यानवन्त प्रानी नाना भाति क्रिया करै पै क्रियाका पुद्गल सयोगिनी जानि आत्म स्वरूप सौं भिन्न मानै। या ही तें कर्म बन्ध कलक तें न्यारौ रहै ॥ ५ ॥

अथ ग्यान वैराग्य शक्ति वर्नन ॥ सोरठा ॥

पुव्व उदै सम्बन्ध, विषै भोगवै समकिती ।
करै न नूतन बंध, महिमा ग्यान विराग की ॥६॥

अर्थ—अब विषय भोगवत ही कर्म बन्धन होइ, सो ग्यान वैराग्यकी शक्ति दिखावै हैं—पूर्वे सचित कर्म उदय आयौ तातैं समकिती ताकै सम्बन्ध सौं विषय भोगवै है, अरु नूतन बध

सौं नए कर्मकौं बंध करै नाही। या सम्यग् ग्यान अरु वैराग्य की महिमा शक्ति है ॥ ६ ॥

अथ ग्याताकी व्यवस्था कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

सम्यकवंत सदा उर अन्तर,
ग्यान विराग उभै गुन धारै।
जासु प्रभाव लखै निज लच्छन,
जीव अजीव दशा निरवारै ॥
आतमकौं अनुभौ करि ह्वै थिर,
आपु तरै अरु औरनि तारै।
साधि सुदर्व लहै शिव-सर्म,
स कर्म उपाधि विथा वमि डारै ॥७॥

अर्थ—अब जो ग्याता होइ सो सम्यग ग्यान अरु विषय सौं अरुचि ये दोनौं साथि धारै यहु कहै है—समकिती होइ सो सदा अपनै हियामैं ग्यान अरु वैराग्य ये दोनु गुन धारै, जिन्हि दोनौंके प्रमान तैं अपनौ लक्षण ग्यायकपनौ लखिकै जीव अजीव दशा सौं जीव अजीवकौ स्वरूप निरवारै, सो

न्यारे न्यारे लखे, ता पीछे आत्मा की यथार्थपनो वेदिके आत्मिक स्वभावमें थिर हुइ रहै। आपु तरे अरु सत्य उपदेश सें औरनिको तारे, ऐसी भांत स्वद्रव्यकी साधि इतने आत्म द्रव्यको साधिके शिव मर्म कहत मोक्ष सुख सोई लहै। अ कर्म उपाधि सहित यथा जोहै ताको वमि डारै ॥७॥

अथ मिथ्यादृष्टि व्यवस्था कथन ॥सवैया २३ सा॥

जो नर सम्यकवंत कहावत,
सम्यक ग्यान कला नहि जागी।
आतम अङ्ग अबंध विचारत,
धारत संग कहै हम त्यागी॥
भेष धरै मुनिराज पटंतर,
अन्तर मोह महानल दागी।
सुन्न हियै करतूति करै परि,
सो सठ जीव न होइ विरागी॥८

अर्थ—अब विषयकी अरुचि बिना ग्यान हू निःफल ... एसात पर्यंत वाको मिथ्यादृष्टी ठहरावै—जो मनुष्य सम

यत तौ आप कहावै अरु सम्यग्ग्यान की कला न जागी, तातैं आत्माके अंग निपै बंध कौ विचारै नही, आत्मा अबंध है ऐसे मानै। तातैं बाह्य अभ्यंतर सजोग धारै। कोऊ निश्चय नयकौ पक्ष लै करिकै कहै हम त्यागी हैं, मुनिराज की-सी पटतर कहतै—भांति भेप धारै, अरु अतरंग मोहमहानल कहतै मोहरूप महा अग्नि दागी रहै। विपय तें वैरागी न भयौ, तातैं हिया सुन्न थकौ मुनिराज की सी क्रिया करै पै सो जीव शठ मूढ़ ही कहावै, वैरागी होइ नाहीं ॥८॥

अथ मूढ क्रिया वर्नन ॥ सवैया २३ सा ॥

ग्रथ-रचै चरचै शुभ पंथ,
लखै जगमैं विवहार सु पत्ता।
साधि संतोप अराधि निरंजन,
देइ सु सीख न लेइ अदत्ता ॥
नग धरग फिरै तजि सग,
छकै सरअग सुधा रस मत्ता।
ये करतूति करै सठ पै,
समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥९॥

अर्थ—अब एती क्रिया कहत हूं मूढ कहावे सो कहै हैं—ग्रंथ रचना करै, भलामार्गकी चरचा करै, भला मार्गकौ लखै, जगतमे व्यवहार मार्गमैं प्राप्त थकौ रहै, सतोष साधिकै निरजन कौ आराधै, लोगनिकौ भली सीख देइ, अदत्ता दान लेइ, परिग्रह मग तजिकै नग धरग फिरै, सो दिगबर थकौ फिरै, अरु क्षुधा चहतै मुग्धपनै अपनै स्वर्म मानै मर्मांक छके रहै है। ऐसी ऐसी क्रिया सठ होइ सोऊ करैहै, पै अनातम सत्ता सो आत्मातैं न्यारी जो मोह गहलता है। अरु आत्म सत्ता, सो शुद्ध ग्यानपनाकी सत्ता न्यारी न्यारी समुझै नहीं ॥६॥

पुन सवैया २३ सा॥

ध्यान धरै कर इंद्रिय निग्रह,
विग्रह सौं न गिनै निज सत्ता।
त्यागि विभूति बभूति मढ़ै तन,
जोग गहै भव भोग विरत्ता।
मौन रहै लहि मंद कषाय,
सहै वध बंधन होइ न तत्ता।

ए करतूति करैं सठ पै,

समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥१०॥

अर्थ—औरा ही मूढ क्रिया कहे है—ध्यान धरैं इंद्रियकौ दमन करै विग्रह कहतें शरीर सौं अपनौ नातौ संबंध गिनै नहीं विभूति कहियें, संपदा त्यागैं, बभूति कहतें भस्मी शरीर विषै लपेटैं, योग मार्ग गहैं, संसार भोग सौं विरक्त रहैं, मौनपनैंमैं रहैं, कषायकी मंदपनौंई लहैं, वध बंधन ही सहैं, पैं साता न होइ क्रोधादिक न करैं। एती क्रिया शठ मूरख होइ सोऊ करै पैं अनातम सत्ता सौं, कर्मादिक परमानकी सत्ता अरु आतम सत्ता सौं आत्माकी सद्भूतपनौं ये समुझै नहीं ॥१०॥

पुनर्मूढता वर्नन ॥ चौपाई छंद ॥

जो विनु ग्यानु क्रिया अवगाहै,

जो विनु क्रिया मोख-पद चाहै ।

जो विनु मोख कहै मैं सुखिया,

सो अजानु मूढनि मैं मुखिया ॥११।

अर्थ—अब मूढपनाकौ स्वरूप दिखावै है—जो ग्यान विना क्रिया अवगाहै सो मूढ, अरु जो क्रिया विना मोक्ष पद वांछै

सोऊ मूढ । अरु जो मोक्ष पाया विना कहै म्है सुखी हौं सोऊ अज्ञान कहिये, मूर्खनि मैं मुख्य कहिये ॥११॥

अथ महामूढ व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जगवासी जीवनि सौं गुरु उपदेश कहैं,
तुम्हे इहा सोवत अनत-काल वीते हैं ।
जागौ ह्वै सुचेत चित समता समेत सुनौ,
केवल वचन जामैं अक्ष-रस जीते हैं ॥
आवौ मेरे निकट वतावौं मैं तिहारे गुन,
परम सुरस भरे करमसौं रीते हैं ।
ऐसे वैन कहै गुरु तऊ ते न धरैं उर,
मित्र कैसे पुत्र किधौं चित्र कैसे चीते हैं ॥१२॥

अर्थ—अब कर्म सत्ता अरु आतम सत्ताको जाकै भिन्नता न भासै सोइ महामूढ कहियै यहु कहे हैं—सब जगत वासी जीवके हितवच्छल थकै गुरु ऐसो उपदेश देहैं । अहो प्रानी ! तुम्हे इहा जगत मैं मोह निद्रामैं सोवत ही अनादि अनत काल वीत्यौ है, अब तौ चित्तमैं सचेत ह्वैकै जागौ । अरु समता

समेत थकै केवली के वचन सुनो। जिन केवली के वचनमें अक्षरस कहतैं इन्द्रियके विषय रस भी जोते हैं। अरु मेरै निकट आवौ तौ तिहारे गुन बतावौं। पै गुन कैसे, परम सुरस भरे, उत्कृष्ट-रस भरे। अरु कर्मसौं रीते कहते न्यारे, ऐसे जैन गुरु कहे, तौहू ते मानी उरमै हियै मैं धरं नाहीं। तौ वह कैसे है? मानौ मित्र कैसे पुत्र है, जो मित्र पुत्र तैं अपनौ घर न रहैं, ताकौ सीख काहे दीजे। अरु चित्रामके चित्तरे से हैं, चित्राम सी सत्य क्रिया न होइ ॥१२॥

अथ जीवकी सयन और जाग्रत दशा ॥ दोहरा ॥

एतै पर बहुरो सुगुरु, बोलै वचन रसाल।
सयनदशा जागृतदशा, कहौं दुहौंकी चाल ॥१३॥

अर्थ—एतै परि सुगुरु बहुरी ही सरस वचन बोलिकै कहै—जीनकी एक सयन दशा एक जागृत दशा, ये दोनोंकी चाल कहै ॥१३॥

अथ सयन दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

काया चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
मायाकी सवारी सेज चादर कलपना।

सयन कर चेतन अचेतनता नींद लियै,
मोहकी मरोरि यहै लोचनको ढपना ॥
उदै वल जोर यहै श्वासको सबद घोर,
विषै सुख कारिजको दौरि यहै सुपना ।
ऐसी मूढदशामै मगन रहै तिहुकाल,
धावै भ्रमजालमै न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अव सयन दशाकी व्यवस्था कहै है—काया रूप चित्र सारी है यामें कर्मरूप भारी पर्यंक है, या परि मायाकी सेज सवारी, कल्पना सो मनके विकल्प ये चादर है, या सामग्रीमै चेतन सयन करि रह्या है। अचेतनाकी नींद लियै है, मोहका मरोरि यहै लोचनकी ढाकआई। उदै वल जोर है सो श्वासकी घोर सबद है। अरु विषय सुखका दौरि धाय करनी सौ यह सुपना पावै है। याही मूढ दशा सयन दशा कहियै। यामें मूढ जन होइ सो तिहोंकाल मगन ह्वै कै धावै है। अरु भ्रम जालमैं धावै है, पै अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ जाग्रत दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारो सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी इहा झूठी मेरी थपना ।
अतीत अवस्था सयन निद्रा वाही कोउ पै,
न विद्यमान पलक न यामैं अब छपना ॥
स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
सूझै सब अग लखि आतम दरपना ।
त्यागी भयौ चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भालै दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अब जीवकी जाग्रत दशाको वर्नन करै है—आत्मा ग्यान पायै काया चित्रसारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यंक न्यारो देखै, मायारूप-सेज न्यारो देखै, कल्पना रूप चादर न्यारी देखै, ऐसै जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अवस्थामै सयनदशामैं निद्राकी धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप ही हो, विद्यमान कालमै वा अवस्था नाहीं, अब पलमात्र या अवस्था मैं मोहि छिपवौ नाहीं । स्वास, औ सुपिन ये दोउ निद्राकी अलग सौं सयोग सौं, बूझै आतमारूप आरीसामैं आत्माकै अङ्ग सबही सूझैं । ऐसी भांति अचेतनता

सयन करै चेतन अचेतनता नींद लियै,
मोहकी मरोरि यहै लोचनकौ ढपना ॥
उदै बल जौर यहै स्वासकौ सबद घोर,
विषै सुख कारिजकी दौरि यहै सुपना ।
ऐसी मूढदशामैं मगन रहै तिहूकाल,
धावै भ्रमजालमैं न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहे है—काया रूप चित्र सारी है यामै कर्मरूप भारी पर्यंक है, या परि मायाकी सेज सवारी, कल्पना सो मनके विकल्प ये चादर है, या सामग्रीमैं चेतन सयन करि रह्या है। अचेतनाकी नींद लियै है, मोहकी मरोरि यहै लोचनकी ढाक आई। उदै बल जोर है सो स्वासको घोर सबद है। अरु विषय सुखका दौरि धाव करनी सो यह सुपना पावै है। याही मूढ दशा सयन दशा कहिये। यामै मूढ सन होइ सो तिहौं काल मगन हुंकै धावै है। अरु भ्रम जालमैं धावै हैं, पैं अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी इहा झूठी मेरी थपना ।
अतीत अवस्था सयन निद्रा वाही कोउ पैं,
न विद्यमान पलक न यामैं अब छपना ॥
स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
सूझै सब अंग लखि आतम दरपना ।
त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भालै दृष्टि खोलिकै संभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अब जीवकी जाग्रत दशाको वर्नन करै है—आतमा ग्यान पायै काया चित्रसारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यंक न्यारो देखै, मायारूप-सेज न्यारो देखै, कल्पना रूप चादर न्यारी देखै, ऐसे जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अवस्थामैं सयनदशामैं निद्राको धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप ही हो, विद्यमान कालमै या अवस्था नाहीं, अब पलमात्र या अवस्था मैं मोहि छिपनो नाहीं । स्वास, औ सुपिन ये दोउ निद्राको अलग सौ सयोग सौ, बूझै आतमारूप आरीसामैं आत्माके अङ्ग सबही सूझै । ऐसे भांति अचेतनता

पन करै चेतन अचेतनता नींद लियें,
मोहकी मरोरि यहै लोचनकौ ढपना ॥
दै वल जोर यहै स्वासकौ सवद घोर,
विषै सुख कारिजकौ दौरि यहै सुपना ।
सो मूढदशामैं मगन रहै तिहूकाल,
धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहै है—काया रूप चित्र
ारी है यामें कर्मरूप भारी पर्यंक है, या परि मायाकी सेज
ंवारी, कल्पना सो मनके विकल्प ये चादर है, या सामग्रीमैं
चेतन सयन करि रह्यो है। अचेतनाकी नींद लियें है, मोहका
मरोरि यहै लोचनकी ढाकआई। उदै वल जोर है सो श्वासकौ
घोर सबद है। अरु विषय सुखका दौरि धाव करनी सो यहु
सुपना पावै है। याही मूढ दशा सयन दशा कहियै। यामें मूढ
जन होइ सो तिहीं काल मगन ह्वैकैं धावै है। अरु भ्रम जालमैं
धावै है, पै अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारौ सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी इहां झूठीमेरी थपना ।
अतीत अवस्था सयन निद्रा वाही कोउ पै,
न विद्यमान पलक न यामैं अब छपना ॥
स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
सूझै सब अंग लखि आतम दरपना ।
त्यागी भयौ चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भाल दृष्टि खोलिकै संभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अब जीवकी जाग्रत दशाको वर्नन करै है—आत्मा ग्यान पावै काया चित्रसारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यंक न्यारो देखै, मायारूप-सेज न्यारो देखै, कल्पना रूप चादर न्यारी देखै, ऐसै जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अवस्थामैं सयनदशामें निद्राकौ धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप हो हो, विद्यमान कालमैं वा अवस्था नाहीं, अब पलमात्र वा अवस्था मैं मोहि छिपवौ नाहीं । स्वास, औ सुपिन ये दोउ निद्राकी अलग गौ सयोग सौं, बूझै आतमारूप आरोमांम आत्माकै अंग सबही सूझैं । ऐसी भांति अचेतनता

यन करै चेतन अचेतनता नींद लियैं,
मोहकी मरोरि यहै लोचनकौ ढपना ॥
उदै बल जोर यहै स्वासकौ सबद घोर,
विषै सुख कारिजकी दौरि यहै सुपना ।
ऐसी मूढदशामैं मगन रहै तिहूकाल,
धावै भ्रमजालमैं न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहे हैं—काया रूप चित्र सारी है यामैं कर्मरूप भारी पर्यंक है, या परि मायाकी सेज सवारी, कल्पना सो मनके विकल्प ये चादर है, या सामग्रीमें न सयन करि रह्यो है । अचेतनाकी नींद लियै है, मोहका रि यहै लोचनकी ढारु आइ । उदै बल जोर है सो स्वासकौ सबद है । अरु विषय सुखका दौरि धाव करनी सो यह ना पावै है । याही मूढ दशा सयन दशा कहियै । यामैं मूढ न होइ सो तिहो काल मगन ह्वै कै धावै है । अरु भ्रम जालमें वै है, पै अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारो सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी इहा झूठी मेरी थपना ।
अतीत अवस्था सयन निद्रा वाही कोउ पै,
न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥
स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
सूझै सब अग लखि आतम दरपना ।
त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भालै दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अब जीवकी जाग्रत दशाको वर्नन करै हैं—आत्मा ग्यान पायें काया चित्रसारी न्यारी देखें, अरु कर्म पर्यंक न्यारो देखें, मायारूप-सेज न्यारी देखें, कल्पना रूप चादर न्यारी देखें, ऐसें जानें यह ठौर मेरी थपना झूठी है। अतीत अवस्थामें सयनदशामें निद्राको धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप हौं हो, विद्यमान कालमें वा अवस्था नाहीं, अब पलमात्र या अवस्था में मोहि छिपनों नाहीं। स्वास, औ सुपिन ये दोउ निद्राको अलग सौं सयोग सों, बूझै आतमारूप आरीमांम आत्माकै अङ्ग सबही सूझैं। ऐसो भाखि अचेतनता

ादिको त्याग करि चेतन त्यागी भयौ, तब अपनी दृष्टि खोलिकैं भालै देखै, अरु अपना रूप समालै ॥१५॥

अथ पुन सुगुरु शिक्षा कथन ॥ दोहरा ॥

इहि विधि जे जागे पुरुष, ते सिवरूप सदीव ।
जे सोवहि संसारमैं, ते जगवासी जीव ॥१६॥

अर्थ—अब औरोही सद्गुरु शिक्षा वचन कहै हैं—इहि भाति जे पुरुष जागे रहे तेतौ सदा काल विषै सिवरूप कहत मोक्षरूपी कहिये । अरु जे संसारमैं सोवै हैं ते जगवासी जीव कहिये ॥१६॥

अथ आत्मद्रव्य स्तुति कथन ॥ दोहरा ॥

जो पद भौ पद भय हरै, सो पद सेउ अनूप ।
जिहि पद परसत और पद, लगैं आपदा-रूप ॥१७॥

अर्थ—अब मोक्ष पद ही उपादेय रूप कहिकैं स्तुति करै है—जो पद कहतै जोई थानक भव पद कौ, भव स्थानक कौ, भय हरै सोई पद कहिये, सोई अनुपम स्थानक कहिये । जिहि पदकौ परसत और पद है सो आपदारूप लागै हैं ॥१७॥

अथ ससार वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जब जीव सोवै तब समुझै सुपन सत्य,
वही झूठ लागै जब जागै नींद खोइकै ।
जागै कहै यहु मेरो तन यहु मेरी सोज,
ताहू झूठ मानत मरन थिति जोइके ॥
जानै निज मरम मरन तब सूझै झूठ,
बूझै जब और अवतार रूप होइकै ।
वाहू अवतारकी दशामे फिरि यह पेच,
याही भाति झूठो जग देख्यौ हम टोइकै ॥१८॥

अर्थ—अब सब-पदकी भय दीखावै हैं—जब जीव सोवै है, सयन दशामे ह्वै तबतौ सुपनकी सत्य करि समुझै है, वही सुपन झूठ लागै है जब नींद खोइकै जागै है, जागि करिकै कहै मेरी शरीर तौ इहा है। यहु सोंज कहतैं या सामग्री मेरी है, अरु अपनी मरन थिति जोवै है, तबतौ वर्त्तमान शरीर अरु सामग्री सब झूठ मानै है, अरु अपने मर्मकी बात जानैं, इतनैं अपनै स्वरूप की बात जानै तब तौ मरन हो झूठ जानै ।

ऐसै और अवतार लें तब और रूप हाइकै और ही बात वूझै, अरु याहू अवतार मैं सोवत जागत झूठ सांच कौ पच बार-बार याहा भाति लागी रहै। याही भाति तैं सब ससार टोइकै सौ निरारकै हम सब झूठौ ही देख्यौ ॥ १८ ॥

अथ ग्याता क्रिया कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

पडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि,
दुदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है।
मति श्रुति अवधि इत्यादि विकल्प मेटि,
निरविकलप-ग्यान मनमें धरतु है ॥
इद्रिय जनित सुख दुख सौं विमुख ह्वै कें,
परमके रूप ह्वै करम निर्जरतु है।
सहज समाधि साधि त्यागे परकी उपाधि,
आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १९ ॥

अर्थ—अब ग्याता होइ सौ ऐसी क्रिया करै है सो कहतु है—पडित होइ सो विवेक कौ, भेद विग्यानकौ लहिकै। अरु अपनी एकताकीटेक पकरिकै जर जोप्रथम दुन्दुज अवस्था

श्रुति ग्यान अवधि ग्यान इत्यादिक स्वरूपके विकल्प मेटिकै निर्विकल्प ज्ञान सो केवल ग्यान ताकौ मनमैं धरतु है। अरु इन्द्रिय रूपिकै जनित कहतै उपज्यौ जो सुख दुख तासौ विमुख ह्वै कै। अरु परमात्माके रूप ह्वै कै कर्म निर्जरा करैहै, तातैं अपनी सहज समाधि साधिकै, पर कहतैं कर्म पुग्दलादिक ताकी उपाधि राग द्वेषादिक त्यागिकै आत्माकौ आराधिकै परमात्मा कहै ॥ १९ ॥

अथ-ग्यान समुद्र वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाकै उर अंतर निरंतर अनंत दर्व,
भाव भासि रहे पै सुभाउ न टरतु है।
निर्मल सौं निर्मल सु जीवन प्रगट जाकौ,
घटमैं अघट-रस कौतुक करतु है॥
जामै मति श्रुति औधि मनपर्यै केवल सु,
पंचधा तरंगनि उमंगि उछरतु है।
सोहै ग्यान उदधि उदार महिमा अपार,
निराधार एकमैं अनेकता धरतु है॥ २० ॥

अर्थ—अब आँत परमात्मपनी पाठय ऐसी ग्यान समुद्रकौ बरानै है--तिनि ग्यान समुद्रके मध्यमाग विषै निरतर अनत द्रव्य पदार्थ भासि रहे पै तिनि द्रव्यकौ सुभाउ न टलै है, निर्मल सौ ही निर्मल ऐसौ सुजीवन कहतैं जीवितव्य, अरु समुद्र पखै सुजीवन कहतैं पानी जाकौ प्रगट है। अरु घटमैं कहता हृदय विषै अघट कहता अक्षीण, रसकौतुक कहता सत्यार्थ वेदनकौ जु रस कौतूहल सोई करै। इतने समुद्र मैं हू रस कौतुक घनो, अरु जिन ग्यान समुद्र मैं मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। ए पाचौ ज्ञान तरग रूप ह्वैकै उमगि कहता आप अपनी ठौर प्रगट ह्वैकै उछलि रही है। सोई ज्ञान उदधि कहता ज्ञान समुद्र उदार प्रधान है। याको अपार महिमा है। यामैं सब पदार्थ भासै, तातैं ये आप निराधार अरु एक स्वरूपसौ ज्ञायकता, तामैं अनेकता धारै है॥ २०॥

अथ मोक्षमार्ग अप्राप्ति कथन॥ सवैया ३१ मा॥

केकोई क्रूर कष्ट सहै तपसौं सरीर दहैं,
धूम पान करै अधो मुख ह्वैकै झूलै है।

केकोई महाव्रत गहै क्रियामें मगन रहै,
वहै मुनि भार पै पयार कैसे फूले है ॥
इत्यादिक जीवनिकौ सर्वथा मुकति नाहि,
फिरै जग माहि ज्यौं बयारिके बघूले है ।
जिन्हके हियेमै ग्यान तिन्ह ही कौ निरवान,
करमके करतार भरम में भूले है ॥ २१ ॥

अर्थ—अब ग्यान विना क्रियातैं मोक्षकी अप्राप्ति है यहु कहै है—केई अग्यानी क्रूर कष्टको सहै है, अरु पचाग्नि प्रमुख तप करिकै सरीरकौ जालै है। केई अग्यानी अगनिके धूआ की पीयें है, नीचौं मुह करिकै ऊचे पाउवे झुलि रहै है । अरु केई अग्यानी जैन लिंग लिये महाव्रत द्रव्यरूप गहै है, अरु क्रिया में मगन रहै है, ऐसे मुनिराजको भार वहै है पै पयार कैसे फूलै है। देस भाषा मे पलाल को पयार कहिये जैसे पलाल पूला में कण नाही तैसे नि:सार । इत्यादिक केवल क्रिया कलापतैं जीवनिकौ सर्वथा मुगति नाही । अरु जगत में बयारिके बघूले ज्यौं ऊच नीच ठौर फिरि रहै है, पै कहीं ठहराउ नाहीं । अरु जिनके हियेमें ग्यान कला जागृत रूप है तिन्हीं कौ निर-

वान कहतैं मोक्ष है। अरु कर्म के कत्तार सो केवल क्रियाके करन हारे है सोतौ भर्ममें भूलि रहे हैं ॥ २१ ॥

अथ मूढ व्यवस्था वर्नन ॥ दोहरा ॥

लीन भयौ विवहार में, उकति न उपजै कोइ ।
दीन भयौ प्रभुपद जपै, मुगति कहातै होइ ॥२२॥

अर्थ—अरु जे मूढ हैं ताकी दृष्टि निश्चै में नाही। अरु व्यवहार में है, तातें मूढता है यहु कहै है—जो व्यवहार में ही लीन भयौ रहे, मगन भयौ रहै पै उकति कहतें तत्त्व दृष्टि सोतौ जाको उपजै नाही, अरु आप अनाथ हुइकैं अपनै नाथकैं पद को जपै, ऐसें अपनो निश्चै रूप जान्यै बिना मुकति कहातैं होइ ॥ २२ ॥

पुन दोहरा ॥

प्रभु सुमरौ पूजा पढौ, करौ विविध परिहार ।
मुक्त स्वरूपी आतमा, ग्यान गम्य निरधार ॥२३॥

अर्थ—प्रभुकौ सुमरौ भावै पूजौ, भावै पढौ, ऐसी भांति भांति कौ व्यवहार करौ, पै जो कोऊ मोक्ष स्वरूपी आत्मा है सो तौ निरधार कहतं निश्चै करि ग्यानगम्य है ॥ २३ ॥

अथ पर्यायार्थ निरूपन ॥ सवैया २३ सा ॥

काज विना न करै जिय उद्यम,
लाज विना रन माहि न जूझै ।
डील विना न सधै परमारथ,
शील विना सत सौं न अरूझै ॥
नेम विना न लहै निहचै पद,
प्रेम विना रस रीति न बूझै ।
ध्यान विना न थमै मनकी गति,
ग्यान विना शिव पथ न सूझै ॥२४॥

अर्थ—अब निश्चै स्वरूप माहिं ग्यान पर्याय रूपी अर्थकौ निरूपण करै है—इहा अर्थान्तर दिखावै है। जैसे जीव अपने काम विना उधिम करै। अरु जैसे लाज विना रण सग्राम मैं जूझै नही। अरु जैसे देह धरै विना परमार्थ हू सिद्ध न होइ। अरु जैसे शील धरै विना सत्य सौ मिलै नहीं। अरु जैसे नियम धरै विना निश्चै पद हू न पाइये। अरु जैसे प्रेम प्रीति विना रसकी रीति हू बूझिये नही। जैसे ध्यान के विना मन

की गति थमै नही, तैसैं ग्यान दृष्टि बिना शिव-पथसो मुक्ति मार्गमो न सूझै ॥ २४ ॥

अथ ग्यान महिमा धारक व्यवस्था कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

ग्यान उदो जिन्हके घट अंतर,
ज्योति-जगी मति होत न मैली ।
बाहिज दिष्टि मिटी जिन्हके हिय,
आतम ध्यान-कला विधि फैली ॥
जे जड चेतन भिन्न लखै,
सुविवेक लियै परखै गुन थैली ।
ते जग मैं परमारथ जानि,
गहै रुचि मानि अध्यातम सैली ॥२५॥

अर्थ—अब ग्यानवंत की महिमा धारि करि बखानै हैं अरु ताकी व्यवस्था कहै हैं—जिन्हिकै हियेमैं ग्यानको उदो भयो तातै अपनी ज्योति जगी, तातै मति बुद्धि ऊजली भई, पै मैली नहीं । अरु अपनै बाह्य सरीर को आतमा करि माननौ असी जो बाहिज दृष्टो हुती सो दृष्टि जाकै मिटो । अरु हियै मैं आतम ध्यान की कला, ताकी विधि यम नियमादिक सोई

विधि फैली। अरु तनतैं जड अरु चेतन की जो भिन्न भिन्न लखै।' अरु अपनी निरेक्ष जो भेद गिम्यान ताकौ लियै अपनै गुन लियै परख लेंहैं, तेई जीव जगत मैं परमार्थ कौं जानिकै अरु रुचि करकै ग्रहै। एसै अध्यातम सैली मानि कै परमार्थ कौ जानै ॥ २५ ॥

अथ मोक्ष प्राप्ति व्यवस्था कथन ॥ दोहरा ॥

बहुविधि क्रिया कलाप सौं, शिव पद लहै न कोइ।
ग्यान कला परगास सौं, सहज मोक्ष पद होई ॥२६॥

अर्थ—अब मोक्षकी सुगम प्राप्ति दिखावै है—भांति भांति क्रियाकै निमित्त क्लेश करतै मोक्ष पद कोऊ लहै नाही। अरु ग्यान कलाके प्रकाश भयैतैं, सहज वाव सौं मोक्ष रूपी होइहै ॥ २६ ॥

पुनः ॥ दोहरा ॥

ग्यान-कला घट-घट वसै, जोग जुगतिके पार।
निज-निज कला उदोत करि, मुक्ति होइ ससार ॥२७॥

अर्थ—ये ग्यान कला तौ घट घट मैं वसि रही है, पै मनो जोग, वचन जोग, काय जोग को जुगतिकै पार रहे-है, तातैं

अपनी अपनी कला कौ उजलाइ के ससार त मुक्त होउ ! ये सब कौ आशीर्वाद है ॥ २७ ॥

अथ अनुभव प्रशसा ॥ कुण्डलिया छन्द ॥

अनुभव चितामनि रतन, जाके हिय परगास।
सो पुनीत शिव पद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥
दहै चतुर्गति वास, आस धरि क्रिया न मंडै।
नूतन बध निरोधि, पुव्वकृत कर्म विहडै ॥
ताके न गुन विकार, न गनु बहुभार न गनु भौ।
जाके हिरदै माहि, रतन चितामनि अनुभौ ॥२८॥

अर्थ—अब मुक्तपनो अनुभव तें होइ तातें अनुभवकी प्रशसा करै। अनुभव-रूप चिन्तामणि रतन जाके हिये प्रगास रह्यो है, सोई जीव पुनीत कहते पवित्र ह्वैके शिव पदकौ लहै। अरु चतुगति कौ वास दहै। देव गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति, नरकगति ये च्यारो गतिके वास कौ दहै। अब अनुभवी की ये रीति है, आस धरिकै क्रिया कौ मडै नही, नूतन बध सो नए बधको निरोध करै, सवर धरै। अरु पूर्वकृत कर्मको विहडि डारै, वाकी निर्जरा करै। अहो भव्य जीव! ताकै विकार

फौन गनहुना। अरु वाके बहुमार कौं गनहुना। अरु वाके भयकौ भी गनौना। आकै हियै मै अनुभव रूपी चिन्तामणि रतन वसि रह्यौ है ॥ २८ ॥

अथ ग्यान दृष्टि सामर्थ्य कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जिन्हिके हियैमै सत्य सूरज उदोत भयौ,
फैलीमति किरन मिथ्यात तम नष्ट है।
जिन्हिकी सुदिष्ट मैं न परचै विषमता सौं,
समतासौं प्रीति ममता सौं लष्ट पष्ट है ॥
जिन्हिकै कटाक्ष मैं सहज मोखपथ सधै,
साधन निरोधि जाकै तनको न कष्ट है।
तिन्हिकौं करमकी किलोलि यहै है समाधि,
डोलै यहै जोगासन बोलै यहै मष्ट है ॥२६॥

अर्थ—अब अनुभवी के ग्यान दृष्टि की समर्थाई बतावै है- जिन्हिकै हियैमै सत्य सूरज कौ उदोत ह्वै रह्यौ है। अरु सत्य रूप सूर्य कै मतिरूप किरण फैली, तातैं मिथ्यात तम नष्ट भयौ। अरु जिन्हि जीवकी सुदृष्टि मैं विषमतासौं परिचय

नहीं। अरु समतासा प्रीति लागी, अरु ममता सौं रुष्ट पष्ट रारौं है। इतनै चित्त विना, प्रीति रारी है। अरु जिन्हिके कदाचर्म कहत थोरी सी त्रिलोकनि मैं सहज स्वभावै मोक्ष मार्ग सिद्ध होइ, साधन कहियै मनौ योगादिक तीन योग ताकौ निरोध, निग्रह करिकै। अरु जाकै शरीर की कष्ट नहीं, विन्द ग्यान धारीकौ कर्म लहरै आनै है, सो वाके गिनती मैं यहु समाधि मान ही जानै है, गति कर्मके उदय तै जऊ डोलति है तऊ जोगामन धारो है। अरु जऊ बोलै है तऊ मष्ट कहतैं मौन व्रती है ॥ २६ ॥

अथ पर वस्तु त्याग विशेष वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

आतम सुभाउ परभावकी न शुद्धि ताकौ,
जाकौ मन मगन परिग्रह मैं रह्यौ है।
ऐसौ अविवेक कौ निधान परिग्रह राग,
ताकौ त्याग इहालौ समुच्चै रूप कह्यौ है॥
अब निज परिश्रम दूरि करिवे के काजु
बहुरो सुगुरु उपदेशकौ उमह्यौ है।

परिगह अरु परिगह को विशेष अङ्ग,
कहिबे कौ उद्दिम उदीर लह लह्यौ है ॥३०॥

अर्थ—अब ग्यानी कौ पर वस्तु कौ त्याग कह्यौ। अरु विशेष पनै याहीकौ त्याग बखाने है—तिनि जीवको आपनै स्वभाव को अरु परायें स्वभावकी शुद्धि न होय, जिन्हिकौ मन परिग्रहमैं मगन ह्वै रह्यौ हैं। परिग्रह कहियै परिग्रहकौ रागमो तौ ऐसौ अविवेक कौ निधान कह्यौ। जिनि परिग्रह राग मैं अपने स्वभाव की पर स्वभाव की शुद्धि नाहीं, तिन्ह परिग्रह रागकौ त्याग, इहा तौ सामान्य मात्र कह्यौ। अब इहा आपनै स्वरूप कौ भ्रम अरु पर स्वरूपकौ भ्रम है ताकै दूर करिबेके कारिज कौ बहुरौ सुगुरु हैं सौ उपदेश दबैकौ उमह्यौ। अब यातैं इहा परिग्रह कहिबे कौ अरु परिग्रहकौ विशेष अग कहिबे कौ उद्यम उदीरणा करिकै सुगुरु हैं सो लह लही समान ह्वै है ॥ ३० ॥

अथ सामान्य विशेष कथन ॥ दोहरा ॥

त्याग जोगपर वस्तु सब यह सामान्य विचार।
विविध वस्तु नाना विरति, यह्‌ विशेष विस्तार ॥३१॥

निरतर सावचेत रहै अरु पर वस्तु सौं हित करै नाही। याहि
तैं ग्यानवत कौ अबाछक, निष्प्रेमी कहे है ॥३३॥

अथ ग्याता अलिप्त दृष्टात कथन ॥ सवैया ३१सा ॥

जैसे फिटकड़ी लोद हरड़े की पुट विना,
स्वेत वस्त्र डारियै मजीठ रग नीर मैं।
भीग्यौ रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल,
भेदै नहीं अन्तर सुपेदी रहै चीर मैं॥
तैसे समकितवत राग दोष मोह विनु,
रहै निशि वासर परिग्रहकी भीर मैं।
पूरव करम हरै नूतन न बध करै,
जाचै न जगत सुख राचै न शरीर मैं॥३४

अर्थ—परिग्रह मैं रहत ही ग्याता कौ अलिप्त पनौ
होइ तापरि दृष्टान्त कहै है—जैसै कोऊ श्वेत वस्त्र है
फिटकडी, लोद, हरडे की पुट दिया बिना मजीठ के लाल
पानी मैं डारियै। सोई वस्त्र चिरकाल कहत बहुत काल लौं,
रग मैं भीग्या रहै, तऊ सर्वथा प्रकारै लाल होइ नाहीं। अ
भेदै नही। वा चीर मे सपेदी ही रहै। तैसै समकितवत

होइ सो राग द्वेष मोह की पुट विना निसि वासर कहतें राति दिन परिग्रह की भीर मैं रहै है तऊ पूर्व कर्म के भोगनिकी निर्जरा करै। अरु नूतन बंध न करै, सो आगै नयौ बंध न करै। अरु जगत कहतें ससार ताकौ ज्याचै नहीं, अरु शरीर सौं राचै नहीं ॥३४॥

अथ ग्याता अनुद्वेग कथन ॥ सवैया ३१सा ॥

जैसे काहू देश कौ वसैया बलवंत नर,
जंगल मैं जाइ मधुछाता कौ गहतु है।
वाकौ लपटाहि चहौं ओर मधु मक्षिका पै,
कंबलकी उट सौं अडकित रहतु है॥
तैसै समकित शिव सत्ताको स्वरूप साधै,
उदैकी उपाधिसौं समाधि सी कहतु है।
पहिरै सहज कौ सनाह मनमै उछाह,
ठानै सुख राह उदवेग न लहतु है॥३५॥

अर्थ—अब परिग्रह मैं रहत हो ग्याता की उद्वेग रहित पनो दिखावै है, दृष्टांत करिकै—जैसै कोऊ पुरुष काहू देश कौ

वसैया कहतां वासी भील प्रमुख वललत जगल मैं जाइ मधु के छाता का गहै, तब वा पुरुष की चिहौं ओर सो न्यारी तरफ मधु मक्षिका कहतै मधु छातै की माखी लपटावै है, पै वा पुरुष के शरीर परि कमल की ओट है, तातैं वा पुरुष अडकित सो टक मिना रहै। तैसे समकिती जीव थिर कहियैं परमात्मा की जा सत्ता कहतैं सद्भूत पनौ ताकौ जो स्वरूप एक विग्यान-धन पनौ ताकौ साधै, अरु कर्म उदय की जे आत्मा को उपाधि लगी है ताकौ समाधि सी करि जानै। सहज गुन जे ग्यान दर्शन चारित्र रूप जो सनाह, बगतर, ताकौ पहिरै रहै। अरु एसी भांति, जो कर्म निर्जरा ताकौ उछाह मनमें धरै। ऐसें अनत सुखकै राहमैं रहत उदवेग दशा न पावै ॥३५॥

अथ ग्याता अबंध कथन ॥ दोहरा ॥

ग्यानी ग्यान मगन रहै, रागादिक मल खोइ।
चित उदास करनी करै, कर्मबंध नहीं होइ ॥३६॥

अर्थ—अब इसी भांति ग्याता कौ अबंधकपनौ कहै—ग्यानी पुरुष तौ ग्यान ही मै मगन रहै। ज्ञानपना ही मैं रहै। रागद्वेष मोहरूप जो मल है ताकौ खोइ डारै। अरु

क्रिया करै है। पै क्रिया मौं उदासीन रूप करै है, तौ या ग्याता कौ कर्म बंध होय नाहीं ॥३६॥

मोह महातम मल हरै, धरै सुमति परगास।
मुगति पंथ परगट करै, दीपक ग्यान विलास ॥३७॥

अर्थ—मोहरूपी महातम कहतें घोर अन्धकार तद्रूप मलकौ हरै। अरु सुमति कौ प्रकाश दीपक ज्यों धरै। मुक्ति के पंथ कौ प्रकट करि दिखावै। ऐसैं ग्यान विलास सो दीपक हो जानियें ॥३७॥

अथ ग्यान दीपक वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जामैं धूमकौ न लेस वात कौ न परवेस,
करम पतंगनिकौ नास करै पलमैं।
दशाकौ न भोग न सनेहकौ संयोग जामैं,
मोह अन्धकार कौ विजोग जाके थल मैं॥
जामैं न तताई, न राग रकताई रंच,
लहलहै समता समाधि जोग जल मैं।
ऐसी ग्यान दीपकी सिखा जगी अभंगरूप,
निराधार फुरी पै दुरी है पुदगल मैं

अथ—अर ग्यान दीपक कौ स्वरूप वर्नन करै है—जिन्हि ज्ञान दीपक में धूए कौ लेस नही, नाहरं (पवन) हू कौ जामें प्रवेश नाही। अरु जो कर्मरूपी पतग जीवनि कौ पलक मैं नाश करि है। अरु जिन्हि दीपक में दशा कहतै वाती कौ भोग नाही। दूसरइ अर्थ—कोऊ विकल्प दशा नाही। अरु जहा सनेह कहत घृत, तेल कौ सयोग नाही। अरु जाके प्रकाश म मोहरूप अधकार कौ वियोग है। अरु जिन दीपक मैं तातापनौ नाही। अरु जहा लाल रग की ललाई नाहीं, रचमात्र। अरु जो समता समाधि कौ जोग तद्रूप जल मैं लहलहायमान ह्वै रह्या है, ऐसौ जो ग्यान दीपक पक्षो, ताकी सिखा सदा काल अभग रूप जगी रही है। अरु या सिखा सकल पदार्थ ग्यान कौ आधार है, पै आप निराधार फुरि रही है। अरु पुदगलमैं दुरी रहतै छिपी रही है ॥२८॥

अथ ज्ञान स्वभाव अखडित दृष्टात कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसौ जो दरव तामें तैसोई सुभाउ सधे,
कोऊ दर्व काहूको स्वभाउ न गहतु है।
जैसे सख उज्जल विविध वर्न माटी भखै,
माटी सौं न दीसै नितु उज्जल रहतु है ॥

तैसे ग्यानवंत नाना भोग परिग्रह जोग,
करत विलास न अग्यानता लहतु है।
ग्यान-कला दूनी होइ दुंद दशा सूनी होई,
ऊनी होइ भौ थिति बनारसी कहतु है ॥३६॥

अर्थ—अरु या ग्यान के स्वभाव मैं खडता नही या परि-दृष्टांत कहै है—जोई जैसो द्रव्य है तामै तैसोई स्वभाव सिद्ध है, पै कोऊ द्रव्य और काहू को स्वभाव ग्रहै नाही। जैसे काहू जलाश्रयमं सख बेइन्द्री जीव है, सो स्वरूप तैं उज्जल हैं, अरु भांति भांति का रग माटी भखै है, पै माटी को रग वाकै स्वरूप मैं न दीसै, नित्य ही उज्जल को उज्जल रहे है। तैसे ग्यानवत प्रानी परिग्रह के जोग तैं नाना प्रकर को भोग विलास करतो, पिण अग्यानता न पावै है, अरु ग्यान को कला दुनी होइ। अरु दुन्द दशा कहतै भ्रम दशा सो ही खली होइ। अरु भौ थिति कहतै स्थिति सो तो ऊनो उछी होइ ऐसैं बनारसीदास कहै है ॥ ३६ ॥

अथ स्यादवाद कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जौलौं ग्यानकौ उदौतु तौलौं नहि बंध होतु,
[illegible] तब नाना बंध [illegible]।

ऐसो भेद सुनि के लग्यौ तू विषै भोगनि सौं,
जोगनि सौं उद्दिम की रीतितैं विछोहि है।
सुनौ भैया ! संत तू कहै मैं समकितवंत,
यहु तौ एकंत परमेश्वर को द्रोही है।
विषै सौं विमुख होइ अनुभौ दशा अरोहि,
मोख सुख टोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥४०॥

अर्थ—अब सम्यक् ग्यान कै साथि सम्यक् क्रिया स्याद-वाद मत कै आश्रय तैं कहतु है—जौ लौं ग्यान की उद्योत है तौ लौं बंध होतु नाही, अरु जब मिथ्यात्व दशा वरतै हैं तब तौ नाना प्रकार कौ बंध ह्वै है, एकांतवादी कोऊ ऐसौ कहै, ऐसौ ग्यान महातम की भेद सुनि कै तू विषै भोगनि सौं लग्यौ है, अरु मन वचन काय योग तैं उद्दिम की रीति सो क्रिया, सो तै विछोही है—छोडी है। अहो भैया ! सत् पुरुष सुनौ ! तू कहतु है, कि मैं समकितवंत हौं, पै यहु तौ एकंत मत, परमेश्वर को-परमात्माको द्रोही सौ द्रोह किया रहै, तातैं तू विषय सौं विमुख होइ, अरु अनुभव दशा तामैं

गुण श्रणि धरि आरोहण करि अरु मोक्ष के सुमुख को टोहि कहते द्रिग, तौहि ऐसो बुद्धि सोहै ॥ ४० ॥

अथ ग्यान वैराग्य युगपत वर्नन ॥ चौपाई छंद ॥

ज्ञान-कला जिन्हके घट जागी,
ते जग माहि सहज वैरागी ।
ग्यानी मगन विषै सुख माहीं
यहु विपरीति सभवै नाहीं ॥४१॥

अर्थ—ग्यान को अरु विषय विमुख वाकी महचारपनो रहे है—जिन्हि के घटमैं ग्यान कला जागी है, ते तौ जगत्र माहि महज वैरागी ही रहे है, ग्यानी तू है। अरु विषै सुख मै मगन हू है, यहु विपरीत वात मभवै ही नहीं ॥ ४१ ॥

अथ ग्यान वैराग्य की एकता ॥ दोहरा ॥

ग्यान सकति वैराग बल, शिव साधै सम काल ।
ज्यो लोचन न्यारे रहै, निरखै दोऊ नाल ॥४२॥

अर्थ—ग्यान की सकति अरु वैराग की मकति ये दोनों पदार्थ समकाल मिल्के मोक्ष कौ साधै—जैसै दोऊ नेत्र न्यारै रहै है। अरु नाल कहतै साथि ही दोऊ निरखै ॥ ४२ ॥

अथ मूढकर्त्ता कर्म कथन ॥ चौपाई छंद ॥

मूढ करमको करता होवै,
फल अभिलास धरै फल जोवै।
ग्यानी क्रिया करै फल सूनी,
लग न लेपु निर्जरा दूनी ॥४३॥

अर्थ—अब मूढ के कर्म कर्त्ता पनौं अरु ग्यानी के निर्जरा, ये दोनौं स्वरूप कहैं—मूढ है सा कर्म कर्त्ता होइ। जातैं मूढ है सौ क्रिया के फल की अभिलास धारै, अरु फल कौ जोइ रहै। तातैं ग्यानी के कर्म की लेप लगै नहीं। अरु दुनी निर्जरा होइ ॥ ४३ ॥

अथ ग्यान के अबंध अरु अग्यानी के बंध-दृष्टांत पाटकीट का ॥ दोहरा ॥

बंधै कर्म सौं मूढ ज्यौं, पाट-कीट तन पेम।
खुलै करम सौं समकिती, गोरख धंधा जेम ॥४४॥

अर्थ—मूढ होइ सौ कर्म सौं जैसैं पाट कौ कीरौ अपनै शरीर कै पेम सौं अपनी लाल तैं आप बंधै। अरु समकिती

होइ सो तौ भ्रम जाल सौं खुल ही जाइ। जैसैं गोरख धधा अपनै जाल तैं खुलै ॥ ४४ ॥

अथ ग्याता को अकर्तृत्व कथन ॥ सवैया २३ मा ॥

जे निज पूरव कर्म उदै सुख,
भुञ्जत भोग उदास रहेंगे।
जे दुख में न विलाप करें,
निरबैर हियें तन ताप सहेंगे ॥
हैं जिन्हके डिढ़ आतम ग्यान,
क्रिया करिकैं फलकौ न चहेंगे।
ते सुविचक्खन ज्ञायक हैं,
तिन्हकौ करता हम तौ न कहेंगें ॥४५॥

अर्थ—अब ग्यानी जीव कौ कर्म सौं अकर्त्तापनौ अरु निर्जरास्वरूप ठहरावै हैं—जे जीव अपने पूर्व संचित कर्म के उदय ते सुख भोगवत ही भोग सौं उदास रहैं अरु जे जीव असाता वेदना के उदय तैं दुख उपजै आरत विलाप न करैं हियें मैं काहूसौं वैर न राखैं। अरु शरीर सताप सहैं। जिनके ढिग

आतम ग्यान रहै है, सो तौ क्रिया करि कै फलकौ चाहै नहीं, तेई भले भले विचच्छन ज्ञायक हैं। तिन्हकौ करम करत ही कर्म की कर्त्ता ऐसो तौ हम न कहियै ॥ ४५ ॥

अथ ग्याता वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जिन्हकी सुदिष्टि मै अनिष्ट इष्ट दोउ सम,
जिन्हकौ अचार सुविचार शुभ ध्यान है।
स्वारथ कौ त्यागि जे लगे हैं परमारथ कौ,
जिन्हके बचन में न नफा है न ज्यान है ॥
जिन्हकी समुझि मैं शरीर ऐसौ मानियतु,
धान कौसौ-छीलक क्रिपान कौसौ म्यान है।
पारखी पदारथके साखी भ्रम भारत के,
तेई साध तिन्हिकौ जथारथ ग्यान है ॥४६॥

अर्थ—अब ऐसै ग्याता की व्यवस्था कहै हैं—जिन्हि ज्ञाता की सुदृष्टि एसी है, जिन्हमें अनिष्ट वस्तु अरु इष्ट वस्तु दोनों बरोबरि है। अरु जिन्हकौ आचार ऐसौ है जो भले विचार सौं शुभ ध्यान में रहै। अरु विषै सुख प्रमुख स्वारथकौ

त्यागि कैं जे है परमारथ कौ, अध्यातम रूप परमार्थ कौ लगे रहे हैं। अरु जिन्हि के वचन ऐसे है निन्ह मैं न तो नफा है न तोटा है। इतनै काहु को सुसीख कुसीख दे नहीं, मौनव्रती है। अरु जिन्ह की समुझि ऐसी है जिन्हिमैं शरीर कौ घानकौ छीलक कहतैं तुष। अरु कृपान कहिये तरिवारि ताकौ म्यान ऐसौ मानियै है। इतनै आत्मा तैं सरीर न्यारौ जानै है। जो जैसौ पदार्थ है ताकी तैसी पारख करै। अरु जैन विना पाचौ दर्शनमैं भ्रम कौ भारत मडि रह्यौ है—ताकी साखी है। पूछिनै कौ थान कहते तेई साधु कहानै। अरु तिन्ह ही कौ यथार्थ ग्यान कहिये ॥ ४६ ॥

अथ सम्यक्त्व कौ साहस कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जमकौसौ भ्राता दुख दाता है असाता कर्म,
ताकै उदै मूरख न साहस गहतु है।
सुरग-निवासी भू निवासी औ पातालवासी,
सबनिकौ तन मन कपत रहतु है॥
उरकौ उज्यारौ न्यारौ देखियै सपत-भैसौ,
डोलतु निसकु भयौ आनद लहतु है।

हज सुवीर जाको सासुतो शरोर ऐसो,
ज्ञानो जीव आरिज आचारिज कहतु है॥४७॥

अर्थ—अब समकितीका साहसिकपनो निर्भयपनो कहै —यहा जु ससार मैं असाता वेदनीय कर्म है, सो दुख दाता री हाइ यहा उत्प्रेक्षा करै है—जस कौसो असाता कहतै भाई तातैं उदौ होत मूरख जन है सो साहस ग्रहि सकै नहीं। रगनिवासी कहतें देवता, भू निवासी कहतें मनुष्य तिर्यंच ी कहतें अरु पाताल वासी देवता, नारकी, ऐसें सब त्रिलोक सा जीवकौ तन मन है सु जिन असाता वेदनीयसौं कपत है है। अब ग्यानी जीवकै उरमैं उज्यारा है सो हियेमैं ादनी है, सो कैसी है यहु कहै है। मात भयै तैं न्यारो ही , जिन्हि उजयारैतैं सौती भय उपजि सकै नहीं। तिन्हकै भावैतैं निसक भयौ डोलै। अरु आनन्द लहै है। सहजें दीर कहतैं बडो साहसिक सुभट जाकी ग्यानरूपी शरीर ामतो है। ऐसौ ग्यानी जीव आर्य कहतैं महापुरुष पूज्य ानिये। ऐसै आचार्यजी कहै है ॥४७॥

अथ सप्तभय नाम ॥ दोहरा ॥

इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना-जात।
अनरक्षा अन गुपत भय, अकसमात भय सात ॥४८॥

अर्थ—अब सातौं भयके नाम कहै है—यह भवकौ भय। परलोककौ भय। मरनकौ भय। वेदना उपजनकौ भय। अरक्षाकौ भय। अगुप्त भय। अकस्मात भय। ये सातौं भय जाननें ॥४८॥

अथ सप्तभय लक्षण कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

दशधा परिग्रह वियोग-चिंता इह भव,
दुर्गति गमन परलोक भय मानियें।
प्राननि कौ हरन मरन-भै कहावै सोइ,
रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानियें॥
रक्षक हमारो कोऊ नाहीं अनरक्षा-भय,
चौर भै विचार अगुपत मन आनियें।
अनचिंत्यो अबही अचानक कहावै होइ,
ऐसो भै अकसमात जगत में जानियें ॥४९॥

अर्थ—अब सातौं भयके लक्षण कहिके न्यारेउ लखावै है—और शास्त्र में जो दशनाम परिग्रह कह्यौ ताकै वियोगकी चिंता रहै, सो इह भवकौ भय कहिये। दुरगति गमनकौ भय रहै सो

परलोक भय कहिये। प्रान छूटिवाकौ भय सो मरण भय कहिये। रोग प्रमुखतें जो कष्ट भय ऊपजे सो वेदना भय बखानिये। हमारी रक्षाको करनहार कोऊ नाहीं दीसत यह अरक्षा भय कहिये। चोर दुसमन आयं मेरे कोऊ जतन नाहीं, ऐसौ भय राखिये सो अगुप्ति भय जानिये। कहा जानिये अवही अनचित्यौ कहा होइगौ ऐसे विचारतें जो मनमें भय ऊपज्यौ रहै सो जगतमें अकस्मात भय कहिये ॥४६॥

अथ इह भवभय निवारन कथन ॥ छप्पय-छंद ॥

नख सिख मित परवान, ग्यान अवगाह निरक्खत।
आतम अङ्ग अभंग संग, पर धन इम अक्खत ॥
छिन भंगुर संसार-विभव, परिवार भार जसु।
जहां उतपति तहां प्रलय, जासु संयोग विरह तसु॥
परिग्रह प्रपंच परगट परखि,
इह भव भय उपजे न चित।
ग्यानी निसंक निकलंक निज,
ग्यान रूप निरखंत नित ॥५०॥

अर्थ—अरु यह मन भय निवारनको मन्त्र रूप छप्पय कहै है—पगके नखसो लेके मस्तककी सिखालों इतने सर्व शरीर प्रमान आत्माको गुन जो ग्यान ताकी अवगाह कहतैं व्याप्ति याकी देखै। ऐसै नख सिख लौं ग्यानमई आत्माकौं अङ्ग अभङ्ग है, याकै संग जो पुद्गल है ताकौं परवन कहतं पर-द्रव्य ऐसैं कहै। अरु सर्व ससार क्षणभगुर है। जिस ससारमैं विभव परिवार रूप भार है सोऊ क्षणभगुर है। अरु जिहि की उत्पत्ति है तहा विनाश हू है। अरु जाको सजोग होत है ताको वियोग हू होइ। ऐसी परिग्रहको प्रगट प्रगट परखिकै, चितमें इह सबकी भय या विचार तै उपजै नाहीं। याही भांति ग्यानी होइ सो परिग्रह वियोगकी चिंता न गनै। नि शक रहै। अपनो स्वरूप नि कलक ग्यानमई हा सदा लखै॥१०॥

अथ परलोक भय निवारन मन्त्र॥ छप्पय छंद॥

ग्यान-चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोह-सुख।
इतर लोक मम नाहि, नाहि जिस माहि दोष दुख॥
पुन्न सुगति दाता पाप दुरगति पद दायक।
दोऊ खडित खानि, मैं अखडित [illegible]

इहि विधि विचार परलोक-भय,
नहि व्यापत वरतैं सुखित।
ग्यानी निसक निकलङ्क निज,
ग्यान रूप निररात नित ॥५१॥

अर्थ—ग्यान चक्र कहतं ग्यान विस्तार सो ही मम लोक कहतैं मेरी लोक है, मेरी प्रचार है। जासु अवलोक कहतैं जाको प्रत्यक्ष रूप दखिनी। अरु मोक्ष सुख है। ये दोऊ रूप है। इतर लोक कहत और लोक जु कहिये है सो मेरी नाहीं। मेरो ग्यान-लोक मेरो मायो है। जामैं दोष दुख नाहीं। परलोकमैं सुगति होइ ताकी दातार पुन्य है। अरु परलोक मे दुगति होइ ताकी दातार पाप है। ये दाऊ पुन्य पाप आतमाकी खडनाकी खानि, अरु मैं अखडित रूप हौं। शिव-नायक कहतैं सिद्ध रूपा हौं। इहि भांतिकै विचारतैं परलोक की भय व्यापै नहीं। अरु सुखित कहतैं सदा सुखवत वरतै। ऐसी भांति परलोक कौ भय छाडिकै ग्यानी पुरष होइ सौ नि'शक थकी निकलक अपनं ग्यान रूपको सदा निररात है ॥५१॥

अथ मरन भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय-छंद ॥

फरस जीभ नासिका, नैन अरु श्रवण अक्ष इति ।
मन वच तन बल तीन, सास उस्वास आउ-थिति ॥
ये दश प्रान विनाश, ताहि जग मरन कहिज्जै ।
ग्यान प्रान संजुगत, जीव तिहु-काल न छिज्जै ॥
यह चित करत नहि मरन भय,
नै प्रवान जिनवर कथित ।
ग्यानी निसंक निकलङ्क निज,
ग्यान रूप निरखन्त नित ॥५१॥

अर्थ—अब मरन भय निवारन रूप कहै हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ये पाच अक्ष कहत इन्द्रिय । मनो-बल, वचन बल, काय-बल ये तीन बल । श्वासोच्छ्वास, आयु-स्थिति ये दश प्राण कहियै याकौ विनाश होइ ताकौ जगत मैं मरण कहियै, पै जीव पदार्थ है सोतौ ग्यानरूपी भाव प्राणवा करि सयुक्त हैं । सोतौ जीवकौ ग्यान प्राण तिहौं कालमैं छीजे नहीं । ऐसौ विचार मनमैं करत मरण भय उपजै नहीं । नय

प्रमाण करिकै ऐसो जिनेश्वरकौ कथन है। ग्यानी लोक होइ सोतौ नि मऋ थकौ निकलक अपन रूपकौ सदा निरखत है ॥५२॥

अथ वेदना भय निवारण मन्त्र ॥ छप्पय छद ॥

वेदनवारौ जोय, जाहि वेदत सोऊ जिय।
यहु वेदना अभग, सु तौ मम अङ्ग नाहिं बिय ॥
करम वेदना दुविध, एक सुख मय दुतीय दुख।
दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिर्मुख ॥
जब यहु विवेक मन माहि धरत,
तब न वेदना भय विदित।
ग्यानी निसक निकलक निज,
ग्यान रूप निरखत नित ॥५३॥

अर्थ—अब वेदना भय निवारन रूप मन्त्र कहै हैं—वेदन रौ सो जाननहारौ, सोतौ जीव कहिये। अरु जाकौ वेदतु है ई जीव, इतने वेदनागत सो ग्यानी जीव, यहु ग्यान रूप दना जु अभग रूप है। सो तौ मेरौ अंग है। और जो

वेदना कहियै सो मेरो नाहीं। अरु कर्म रूप वेदना दोइ प्रकार को हैं। एक सुखमई वेदना है, दूजी दुखमई वेदना है। ये दोउ मोह विकार है। ऐसै सुख दुखकी वेदना पुद्गलाकार हैं। पुद्गलकी छाया बाह्य रूप है। जब यहु विवेक, ऐसी विचार मनमें धरै है तब वेदनाको भय वेदत नाहीं। ग्यानी होइ सो तौ वेदना भय तैं निःसंक रहै। ऐसैं निकलंक अपनौ ग्यान रूप सदा निरखत है ॥५३॥

अथ अनरछ्या भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय छंद ॥

जो सुवस्तु सत्तारूप, जगमाहिं त्रिकाल गत।
तास विनाश न होइ, सहज निहचै प्रवान मत ॥
सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर।
तिहि कारन रच्छक न कोइ, भच्छक न कोइ पर॥
जब यहु प्रकार निरधार किय,
तब अनरच्छा भय नसित।
ग्यानी निसंक निकलंक निज,
ज्ञानरूप निरखत नित ॥५४॥

अर्थ—अब अनरक्षा भय निवारण रूप मत्र कहे है–जोई वस्तु कहतैं अपनी आतमा रूप वस्तु सत्ता स्वरूप कहतैं द्रव्य पर्न छतौ कहावै है, सो तो जगत मैं तीनो काल विषै ही पाइयै, ताकौ कबहो विनाश न होइ। ऐसौ सहज स्वरूप निश्चै नयकै प्रमाण तैं जानियौ सोई मेरौ आतम द्रव्य जो है सो तौ सर्वथा प्रकारै काहूकौ सहाय धरै नही, तिहि कारन करिकै या आतमा द्रव्य कौ रक्षक कोऊ नाही। पर कहतै और हर कोऊ सोऊ भच्छक नहीं। जबतै यौ प्रकार विचार हीयै म निरधार किये रहै, तब तौ अरक्षा भय नास पावै। ऐसै ग्यानी होइ सो अरक्षा भयतैं नि शक थकौ अपनै निकलक ज्ञान रूप कौ सदा निरखत रहै ॥५४॥

अथ चोर भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय छद ॥

परम रूप परतच्छ, जासु लक्षन चिन्मडित।
पर प्रवेश तहा नाहि, माहि महि अगम अखडित॥
सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूटधन।
ताहि चोर किम गहे, ठोर नहि लहै और जन॥

चितवत एम धरि ध्यान जब,
तब अगुत भय उप समित ।
ज्ञानी निसंक निकलक निज,
ग्यान रूप निरखत नित ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब चोर भय निवारन मन्त्र कहे है—जो परम स्वरूप कहाने है अरु मानस ग्यान तें प्रत्यक्ष हैं, चिन्मडित कहतें चिन्मय ऐसौ जाको लक्षण है, तिहि स्वरूपमें, वौ पर स्वरूप कौ प्रवेश नहीं । माहि महि कहतें आठौ पृथिवी बीचि अगम्य है, अरु अखडित है, सो तौ अनूप मेरी रूप । अकृत कहतें काहूनें कियौ नाहीं । अनमित कहतें प्रमाण बिना ऐसैं अटूट धन है, ताधन कौ चोर कैसे हरि सकै । और कोउ लोग याकी ठौर पाइ सकै नाहीं । जब ध्यान धरिवैं ऐसी चितवन करै तवतौ अगुप्तिभय कहतें उधारै धनकौ जो भय सो भय उपशम जाइ । ऐसैं ग्यानी होइ सो अगुप्ति भय तें नि.शक थकौ अपने नि कलक ग्यान रूप कौ सदा निरखत रहैं ॥५५॥

अथ अकस्मात भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय छंद ॥

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्धसम ।
अलख अनादि अनत, अतुल अविचल सरूप मम ॥

चिद्विलास परगास, वीत विकलप सुख थानक।
जहा दुविधा नहि कोई, होई तहा कछु न अचानक॥
जब यहु विवेक उपजतु तब,
अकस्मात भय नहि उदित।
ग्यानी निसंक निकलंक निज,
ग्यान-रूप निरखंत नित ॥ ५६ ॥

अर्थ—अब अकस्मात भय निवारन रूप मन्त्र कहै हैं—जो कोउ वस्तु शुद्ध हौं केवल अपने स्वरूपमें है, बुद्ध हैं कहतैं ग्यानमई है, अवरोधी है, सिद्ध समान ऋद्धिवंत है, अलक्ष्य है, आदि रहित है, अरु अंत रहित है, जाकी तुलना कोऊसौं न होइ। यातै अतुल ऐसौ अविचल मेरौ रूप है। चिदविलास कहतै ग्यानको जो विलास सो जाको प्रगास है। वीत विकल्प कहतै अवस्था भेद रहित है अरु समाधि सुखको थानक है। जहा कोई दुमाति न पाइयै, तहा कोऊ अनचीत—अचानक भय सौं कुछ उपनै नहीं, जातै हियै मै ऐसो विवेक विचार उपजै है, तब तौ अकस्मात् भयजु है सो उदै होतु नाही। ऐसै ग्यानी लोक अकस्मात् भयतै निसंकोचको, अपनै निकलंक —न रूपको सदा निरखत रहै ॥५६॥

अथ ग्यानीकी व्यवस्था कथन ॥छप्पय-छंद॥

जो पर गुन त्यागत, शुद्ध निज-गुन गहत ध्रुव ।
विमल ग्यान अंकूर, जासु घट माहिं प्रकाश हुव ॥
जो पुरव कृत कर्म, निर्जरा धार वहावत ।
जो नव बंध निरोध, मोख मारग मुख धावत ॥
निःसकतादि जिस अष्ट गुन,
अष्ट-कर्म अरि संहरत ।
सो पुरुष विचच्छन तासु पद,
वानारसि वंदन करत ॥ ५७ ॥

अर्थ—अब निर्जरा करत ग्यानी की व्यवस्था कहै है–जो कोउ पराए गुन कौ त्याग करै, ध्रुव कहतें निश्चैरूप ऐसें शुद्ध अपने गुनकौ गहै, निर्मल ग्यानकौ अंकूर कहतें उदय जाके घटमैं प्रकाशवंत भयो। अरु जो पूर्वकृत कर्मकौ निर्जरा की धार विषै, निर्जरा की श्रेणी विषै वहावै है। अरु नये बंधकौ निरोध करिकै। इतने निराश्रव होइकै मोक्ष मार्ग के सन्मुख धावै, गुण श्रेणिमें दोरै। निःशंकित प्रमुख जाके आठों गुन है सो आठों कर्म शत्रु को संहार करै। सोई विचच्छन पुरुष कहावै। ताके चरणकमल कौ वनारसीदास वंदना करै है ॥५७॥

अथ अष्ट अगके नाम ॥ सोरठाछंद ॥

प्रथम निससै जानि, दुतिय अवाछित परिनमन।
तृतीय अग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुन ॥५८॥

अर्थ—अब आठ अग के नाम कहे हैं—पहले निसमय कहतें नि सक्ति, दूसरी समक्ति को गुन अवाछकपने मन परिणाम। तीसरो अग अग्लानि। चौथे अग निर्मल दृष्टी सो मूढ दृष्टी नहीं ॥५८॥

पुन: सोरठा छन्द ॥

पंच अकथ पर दोप, थिरी करन छट्ठम सहज।
सत्तम वच्छल पोप, अष्टम अग प्रभावना ॥ ५६ ॥

अर्थ—पाचमो गुन पर दोप अकथन। छिहो अग समकित थिरकरन की स्वभाव। सातमो गुन अग सबसौं वच्छल पनौ, अध्यातम पोषक। आठमो अग प्रभावना गुन ॥५६॥

अथ अग लक्षण सवैया ३१ सा

धर्ममैं न ससै शुभ कर्म फलकी न इच्छा,
अशुभकौ देखि न गिलानी आनै चित्त मैं।

साची दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष भाखै,
चचलता भानि थिति ठानै बोध चित्तमैं ॥
प्यार निज रूप सौं उछाहकी तरग उठै,
येई आठों अङ्ग जब जागै समकितमैं ।
ताही समकितको धरै सो समकितवत,
वहै मोख पावै औ न आवै फिरि इतमैं ॥ ६० ॥

अर्थ—अब अग के लक्षण कहै है—धर्ममे सदेह नही, यौ नि सकित गुन शुभ कर्म की फल की इच्छा नही सो नि स्पृह गुण। काहू को डिगायौ डिगै नही, साच मैं दृष्टि राखै सौ अमूढ दृष्टि गुण। काहू प्रानी कौ दोष न कहै ऐसें दोषाकथन गुण। चचलता भाजि कै ग्यान रूप चित मैं थिति कहतैं थिरता ठानं कहता राखै सो थिरीकरण गुण। आतम स्वरूप सौं प्रेम राखें यौ वच्छल गुण। आत्म स्वरूप साधन मैं उछाह लहरी लियै रहै यौ प्रभावना गुण। ऐसें ये समकितके आठौ अग जब जागे, तब आठो गुन सहित समकितको धरै, सो समकितवत कहावै। अरु वह समकिती मोक्ष पावै। अरु संसारमैं न आवै ॥६०॥

अथ चैतन्य नाटक कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

पुव्व बध नासौ सुतौ सगीत-कला प्रगासै,
नव बध रुधि ताल तोरत उछारिकै ।
निसकित आदि अष्ट अग सग सखा जोरी,
समता अलाप-चारी करै सुर भरिकै ।
निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदग बाजै,
छक्यौ महानंदमैं समाधि रीझि करिकै ।
सत्ता रगभूमि में मुकति भयौ तिहाँ काल,
नाचै शुद्ध दृष्टि नट ग्यान स्वाग धरिकै ॥ ६१ ॥

अथ——अब निर्जराधारी चैतन्यकौ नाटक कहियै जैसे पूर्वकाल विषै बध उत्कृस्ट स्थितोतैं करत हौ तैसै न करै, अनुत्कृष्ट स्थिति तैं करै, यै पूर्वबध नास सोतौ सगीत-कला आलापचारी प्रकासै । अरु नए बधको रोधन करै सोई ताल उछले है, ताल तोरै है । नि'सकित प्रमुख जो समकित के आठ अग कहैं, सोई सग विषै सखा जोरि कहतैं सहाई की जोरी भई । समता समाधि धारी सो स्वर बाधिकै आलाप करै है । इहा कर्म निर्जरा होतु हैं सो एक स्वरूप नाद जै

गावै है। ध्यान मैं सोहं ध्वनि उठै है सोतो मृदंग बाजै है। इहाँ जो महानदमई ह्वैकै छाकयौ सौतौ सुख भयो, रीझि भई। अपनें आतम सत्ता सोई रंगभूमि कहवें रंग मंडप भयौ तामें तिहाँ काल विषै शुद्ध दृष्टि सहित ध्यान रूप स्वांग धरिकै नट रूप चेतन मुकत भयौ नाचैं हैं ॥६१॥

इति समयसार नाटक विषै बालबोधरूप निर्जराद्वार
सम्पूर्ण भयौ ॥
इति निर्जराधिकार समाप्त ॥

जहा शुभ अशुभ करमको गढ़ास तहा,
मोहके विलासमें महा अन्धेर घुप्प है ॥
फैली फिरै छटा सी घटा सी घन घट वीचि,
चेतनकी चेतना दुहो धा गुप्प चुप्प है ।
बुद्धिसों न गहीजाइ बेंनसों न कही जाइ,
पानीकी तरग जेंसे पानीमें गुडुप्प है ॥ ३ ॥

अर्थ—अर चेतना विना तौ कर्म बंध ही न होइ यातैं चेतना अर कर्म चेतना ये दोउ वरने है—जिहि चेतनामें परमात्मा के कला कौ प्रकाश होतु है, सो तौ धर्म धरती है, तहा वौ सत्यरूप सूर्य को धूप है । इतनें प्रकाशवत ठौर है । अरु जिहि चेतनामें शुभ अशुभ कर्म के रसको गढाम है, इतनें शुभ अशुभ कर्म रससौं जो चेतना घुलि रही है, तहा तौ मोह विलास करैं है सो तौ महा अधेर घुप्प है, घोरधार है । ऐसी भाति चेतन पुरुष की जु चेतना कहतें सज्ञा है सो वौ घट घन वीचि कहतें शरीर रूप मेघ वीचि छटा सी फैली फिरै है । अरु चेतना परमात्मा कला प्रकाश मैं, अरु मोह विलास मैं दुहोंधा कहत दोऊ तरफ गुप चुप ह्वै है । ये चेतना दोनु

तरफ बैठे हैं, सो यातत न तौ बुद्धि सौं ग्रही जाइ है, न तौ वचन सौं ग्रही जाइ है। जैसे पानी तरग है सो पानी मैं गुड्प्प है जाइ है। तैसे चेतना हू दुहौं तरफ गुड्प्प हैं ॥ ३ ॥

अथ बध निदान कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

कर्मजाल वर्गनासो जगमें न बधै जीउ,
बधै न कदापि मन वच काय जोगसो ।
चेतन अचेतनकी हिसा सौं न बधै जीउ,
बधै न अलख पच-विषै विष रोग सो ॥
कर्म सौं अवध सिद्ध योगसौं अवध जिन,
हिसा सौं अवध साधु ग्याता विषै भोगसौं ।
इत्यादिक वस्तुके मिलापसौं न बधै जीव,
बधै एक रागादि अशुद्ध उपयोग सौं ॥ ४ ॥

अर्थ—अब बध द्वार विषै बध को हेतु कहैं है–कोऊ कहैगौ कर्मजाल वर्गना सौं जगत मैं जीव बधै है, सो या बात नाहीं। इतनै कर्म वर्गना जीवकै बध हेतु नहीं, ऐसी भांति कदाचित मन वचन काय जोगसौं हू जोव बधै नहीं। चेतन

ग्यान-दृष्टि देतु विषै-भोगनिसौं हेतु दोऊ—
क्रिया एक खेत सौं तौ बनें नाहि जैनमैं ॥
उदै बल उद्यम गहै पै फल कौन चहै,
निरदै दशा न होइ हिरदयके नैनमैं ।
आलस निरुद्दिमकी भूमिका मिथ्यात माहि,
जहां न सभारै जीव मोहनींद सैनमें ॥ ६ ॥

अर्थ—अब ग्याता अबध कह्यौ, तौहू उद्यमी होनो, क्रिया करनी, ऐसो कहै है—जीव है सो यद्यपि कर्मजाल सो न बधै, अरु योग सौं न बधै, अरु हिंसा सौं न बधै, अरु भोग सौं न बधै है, व तथापि फटतें तौहू जिनेश्वर के वचन मैं ग्याता जीवकौ उद्यमी ही बरख्यानी । ग्यान मैं दृष्टि पिणदे है । अरु विषय भोगनि हेतु प्यार हू राखे है । ऐसी दोनु क्रिया एक खेत कहत आतमा विषै करै, यातौ जैनवानी मैं घनिनानै अरु जो ग्यानी होइ सो, सौ करै जैसौ सहनन प्रमुख कार्यकौ उदय बल है तैसौ यथा योग्य क्रिया विषै उद्यम गहै, पै फलकौ न चहै हृदयरूप नैन विषै निर्दय दयागत न होइ । अरु आलस, निरुद्यम येतौ मिथ्यात माहि पाइयै, यातें आलस

निरुद्यम की मिथ्यात भूमिका है। जिनि मिथ्यात भूमिका में मोहनींद दलें तो जीव सयन में रहे है। अरु अपनौं स्वरूप कौं सभारे नहीं॥ ६ ॥

अथ—उदय व्यवस्था वर्णनं ॥ दोहरा ॥

जब जाकौ जैसैं उदय।
तब सो है तिस थान॥
सकति मरोरे जीवकी।
उदय महा बलवान॥ ७॥

अर्थ—अब जो उदय माफक किया कहो, तातैं उदय की व्यवस्था कहै—जिहि काल विषै जाकौं जैसौ उदय है तिन्हि काल विष तिहि थानकहतें विन स्वरूप जीव मोहै। जीव की सकति मरोरि के अपनी सकति प्रगट करै। यातैं कर्म उदय महा बलवत है॥ ७॥

अथ—उदय बल वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसैं गजराज परौ कर्दमके कुंड वीचि,
उद्दिम अहरै पैन छूटै दख दद सौ।

जैसें लोह कटक की कोरमों उरझ्यो मीन,
चेतन असाता लहै साता लहै सदसों ॥
जैसें महाताप सिर वाहिस्यो गरास्यो नर,
तकै निज काज उठि सकै न सुछदसों ।
तैसें ग्यानवत सब जानें न वसाइ कछु,
वध्यो फिरै पूरव करम फल फदसों ॥ ८ ॥

अर्थ—अब ग्यान ऊपर उदय फलकौ वर्नन करै है—जैसें कोउ गजराज है सो कर्दम के कुंड मैं पर्यो तब नीसरवेका उद्यम बहुत करत लगावै है, पै दव दवसौं छूटै नहीं। औरो काहू धीवर नें मच्छ पकरिवेकौ द्रह मैं लोह कटक डार्यौ, तातैं लोह कटक की कोरमैं मीन कहतें मच्छ उरझि रह्यौ अब मच्छको चेतन कहत असाता लहै है, अरु सद कहतैं छूटिवेतैं साता लहै पै छूटि सकै नहीं। और कोउ नर मनुष्य है सो महाताप ज्वर, अरु सिर वाहि कहतैं मस्तक की पीरतैं गरास्यौ कहतैं पकरानौ अरु सो अपनैं कार्यकी तर्फ [illegible] प्यार पेरै

र्य करिवो पे अपने [illegible]
नी जीव हय उपादन [illegible]
र्गँ नहीं। पूर्व मदिन [illegible]
द्यमा वध्यौ फिरें ॥ ८ ॥

अथ—यथा [illegible]

जे जिय मोह [illegible]
ते आलसी [illegible]।
दिष्टि खोलि [illegible]
तिन्हि [illegible] ॥९

अर्थ—अब जैसी [illegible]
है—जे जीव मोह [illegible]
आलसी कहिये निरुद्यम [illegible]
वीन जागे हैं तिन्ह [illegible]

अर्थ—यथा [illegible]

काच बांधे सिरसों [illegible] बांधे [illegible]
जानै न गमार [illegible] मनि [illegible]

यौंही मूढ झूठे में मगन झूठ ही को दौरै,
झूठी बात मानें पै न जानें कहा साचु है।
मनि को परखि जानै जौंहरी जगत मांहि,
साचुकी समुझि ग्यान लोचन की जाचु है।
जहा को जु वासी सो तो तहाको मरम जानें,
जाको जैसो स्वाग ताको तेसो रूप नाचु है १०

अर्थ—अव आलसी उद्दम की जैसी क्रिया है तैसी कहै हैं—काचकौ मस्तक विषै बाधैं, भली मणि है ताकौं पाइ विषै बाधै, गवार लोक ऐसो न जानैं जु मणि वस्तु कैसी है। अरु काच वस्तु कैसी है। ऐसै मूढ अज्ञानी जीव झूठी बात में मगन रहै। अर झूठे कारज कौं दौरै अरु झूठी बात मानैं पै ऐसौ न जाने या कहा साच है। मणि रतनको तौ जौहरी होई सोई जगत में परखि जानै। अरु साचि समुझि ताकौं कहै जाके ग्यान रूपी लोचन की जाच है उत्पत्ति है। जो जहाकौ वासी है सौ तहांकौ मरम जानै। इतनै मिथ्यात भूमिकाकौ वासी

मिथ्यात ही कौ ग्रहै। सम्यक्त भूमिकाकौ वासी समकित में साच मानै। इतना फेर जाकौ जैसो स्वांग बन्यौ ताकौ तैसो ही नाचु है॥ १०॥

अथ—क्रिया तथा फल कथन॥ दोहरा॥

बंध बढावे अंध ह्वै ते आलसी अजान।
मुकति हेतु करनी करे, ते नर उद्दिमवान ११

अर्थ—अब जो जैसी क्रिया करै है ताकौ तैसौ फल पावै यह कहै है—जो भाव अंध ह्वै कै बंधकौ बढावै ते अजान आलसी कहावै। अरु जो मुकति हेतु क्रिया करै है सो मनुष्य उद्यमवंत कहावै॥ ११॥

अथ—ज्ञान वैराग्य सहकारन वर्नन। सवैया ३१सा

जब लगु जीव शुद्ध वस्तुकों विचारै ध्यावै,
तबलगु भौगसों उदासी सरवंग है।
भोगमें मगन तब ग्यान की जगनि नांहि
भोग-अभिलासकी दशा मिथ्यात अंग है॥
तातें विषय भोग मे मगन सो मिथ्याती जीव,

भोगसों उदासी सो समकिती अभग है।
ऐसी जानि भोग सों उदासी ह्वै मुकति साधो,
यह मन चग तो कठोती माहि गग है ॥१२

अर्थ—जो ज्ञान है तो वैराग्य है, अरु जो वैराग्य नाहीं तो ज्ञान हू नाहीं तातैं ज्ञान वैराग्य कौ सहचार पहै है—जो जीव है सो शुद्ध वस्तु कौं विचारै है ध्यावे है ताको तो सरव अ ग विषे भोगसौं उदासीनपनौ पाइये। अरु अन भाग मे मगन है तब तो ज्ञान को जागिवो नाहीं जो अरु भाग में मगन ह्वै है तब तौ ज्ञान की जगति जा भाग अभिलासा की दशा में वरतिवौ सौ मिथ्यातकौ अग है, ताही तैं विषय भोगनिमें मगन रहै सो मिथ्याती जीव कहिये। अर जो विषय भाग सों उदास रहै सो अभगपर्ने समकिती है। ऐसी जानिकै अहो भव्य लोकौ। भोगसों उदास ह्वै कै मुकति कौ साधो। याको दृष्टान्त कहै है जो यह मन चगा है तो कठौती माँहि गगा है। इतने कठौती में स्नान करना गगा स्नान का फल है ॥ १२ ॥

अथ—पदार्थ चतुष्क कथन ॥ दोहरा ॥

धरम अरथ अरु काम शिव, पुरुषा-रथ चतुरंग
कुधी कल्पना गहि रहै, सुधी गहैं सरवंग १३

अर्थ—अब मोक्ष अधिकार विषे च्यार पदार्थ को स्वरूप कहै है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ के ये चार अंग हैं, या पुरुषार्थ विषे कुधी कहते कुमती होइ सो अपनी मन कल्पना ताकौं गहि कर रहै। अरु सुधी कहते पंडित होइ सो सर्वांग गहै॥ १३॥

अथ-पदार्थ व्यवस्था कथन॥ सवैया॥ ३१ सा॥

कुल कौं आचार ताहि मूरख धरम कहै,
पंडित धरम कहै वस्तुके सुभाउ कौं।
खेयकौ खजानौ ताहि अग्यानी अरथ कहै,
ज्ञानी कहै अरथ दरब दरसाउ कौं॥
दंपति कौ भोग ताहि दुरबुद्धि [illegible] कहै,
सुधी काम कहै अभिलाष [illegible] चाउकौं।
इन्द्रलोक-थान कौं [illegible] कहैं [illegible]
मतिवान मोख कहैं [illegible]

अर्थ—अब च्यारो पदार्थ की न्यारी न्यारी व्यवस्था सुमति कुमति को मत आश्रय कै कहै। अपनें कुल को आचार को मूर्ख होइ सो धर्म कहै। अरु पंडित होइ सो वस्तुके स्वभावको धर्म कहे। अरु अज्ञानी होइ सौ खेहव को खजानो सोना रूपा जोंहर द्रव्य है ताकों अर्थ कहि बतलाव है। अरु ज्ञानी होइ सों द्रव्य के दर्शाव को अर्थ कहै। इतनें षट द्रव्य कों अर्थ कहै। दुर्बुद्धि होइ सौ स्त्री, भर्तार कै भोग सजोग को काम कहै है अरु सुधी कहते पंडित होइ सो अभिलाषसौं चित्तकी इच्छासौं काम कहै। अरु जो इन्द्रलोक है, इन्द्रकी नाथ है तासौं अजान लोक मोख कहै। अरु मतिमान् कहतै पंडित होइ सो बन्ध के अभाउ कौं कहतै बंधके नाशकों मोष कहै॥ १४॥

अथ-पुरुषार्थ चतुष्क अध्यात्मरूप कथन॥ सवैया३१सा

धरम को साधन जु वस्तु को सुभाउ साधै,
अर्थको साधन विलेच्छि दवै घटमै।
यहै काम साधना जु सग्रहै निरास-पद,
सहज स्वरूप मोख शुद्धता प्रगट मैं॥

अंतर-सुदिष्टिसौं निरंतर विलोकै बुध,
धरम अरथ काम मोख निज घटमैं।
साधन अराधन की सौंज रहै जाकै संग,
भूल्यौ फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमैं ॥१५॥

अर्थ—अब च्यारां पुरुषार्थ कौं अध्यात्मरूप कहै है धर्मकौ साधन यहु कहियें जो वस्तुको स्वभाव साधिवौ। इतनैं वस्तुके स्वभाव कौं ठीक जानिवौ। अर्थ कौ साधन यहु कहियै जो षट द्रव्य कौं निलक्षण करिवौ। इतनै न्यारौ न्यारौ द्रव्य लखिवौ। काम साधन यहु कहियै जो निरास पद की संग्रह करनी। इतनै निस्पृह दशा में रहनौं। मोक्ष साधन यहु कहियै जो अपनी सहज स्वरूप शुद्धता प्रगट भाव में करनी। जैसी भांति अंतर दृष्टि सौं, सो ज्ञान दृष्टिसौं बुध कहतें पंडित होइ सौ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष च्यारौं पुरुषार्थ अपनें घट में ही निरन्तर देखे। जैसे च्यारौं पुरुषार्थ आराधन की जाकै संग, सौंज कहते सामग्री रहै है। तौऊ मूर्ख है सौ मिथ्यात्व की अलट में भूल्यौ

अथ शुद्धनय वस्तु स्वरूप कथन ॥ सवैया ३१ मा

तिहूं लोक मांहि तिहूं काल सव जीवनिकैं

पूरव करम उदै आइ रस देतु है।

कोऊ दीरघाउ धरे कोऊ अलपाउ मरे,

कोऊ दुखी कोऊ सुखी कोऊ समचेतु है ॥

याहि मै जिवावौं याहि मारौं याहि सुखी क

याहि दुखी ऐसी मूढ आप मानि लेतु है

याहि अह वुद्धिसौं न विनसै भरम भूल,

यहै मिथ्या धरम करमवध हेतु है ॥ १६ ॥

अर्थ—अव शुद्ध व्यवहार नय करिकै वस्तुको स्वरूप कहै है— तीनो लोकनि विषै जगत वासी मन निकौं पूर्व सचित कर्म उदै आवै है । अरु अपनौ मधुर रस देतु है, तातै काऊ दीर्घ आयुकौ भागिनिकै कोऊ अलप आयु सेती मरै है । कोऊ दुखी है, काऊ है, काऊ समचेत है, स्वत ममभारमें है, ऐसै आप कमाई सों सब जीव सुखी दुखी हैं तापरि मूढ जीव (

जु याही कों मैं जिवावों, याकों दुखी करों याकों सुखी करो ऐसें याही अहं बुद्धि मों भर्मतें जुभूलि परयो है। सो या भूलि याकी जिनमे नहीं। योंही मिथ्या धर्म मूढको कर्म बंध हेतु है ॥ १६ ॥

अथ मूढताका कथन। ३१ ॥

जहालों जगतके निवासी जीव जगतमें,
सबै असहाय कोऊ काहू को न धनी है।
जैसी जैसी पूरव करम सत्ता बांधी जिन,
तैसी तैसी उदैमें अवस्था आइ बनी है॥
एतें परि जो कोऊ कहै कि मैं जिवावों मारों
इत्यादि अनेक विकल्प बात घनी है।
सो तो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहों काल,
डोलै निज आतम सकति तिन हनी है ॥१७

अर्थ- अब औरो ही मूढकी व्यवस्था कहै है जोलो जीव जगतमें निवास धारै है तौलो सब जीव कै असहाय-पनों है, कोउ काहूको सहाई नहीं, न तो कोउ काहूको धनी

। अरु जैसी जैसी पूर्वकाल विषै कर्म की सत्ता बाध
ी है तैसी २ उदै जीवको अवस्था आनवनी है । एतै परि
कोउ कहै है मै वाको जिवावो, मै याको मारो
पादिक अनेक मनके विकल्पकी बात घनी है, सोतो
ह बुद्धिसो विकल भयो कहै है । विहो काल विषै अह-
द्धे लियै डोलै है, तिन्हि जीवनि शुद्धि ज्ञान शक्ति
पनी हनी, ए मूढ की अवस्था है ॥ १७ ॥

अथ–च्यार प्रकार जीव व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१

उत्तम पुरुपकी दशा ज्यों किस-मिस दाख,
वाहिज अभितर विरागी मृदु अग है ।
मध्यम पुरुप नारिअर कैसी भाति लिये,
वाहिज कठिन हिय कोमल तरग है ॥
अधम पुरुप वदरी फल समान जाकै,
वाहिज सों दीसै नरमाई दिल स ग है ।
अधम सों अधम पुरुप पु गी फल सम,
अतरग वाहिर कठोर सरवग है ॥ १८ ॥

अर्थ -अब च्यारों प्रकार करिकै जीवकी व्यवस्था परि च्यारो दृष्टांत कहै है— उत्तम पुरुषकी दशा किसमिस दाख ज्यो है। जैसें किसमिस दाख बाहिर कोमल माहि कोमल तैसें उत्तम पुरुष बाह्य व्यवहार में अरु अभ्यन्तर व्यवहार में मृदु अग कहते कोमल है। मध्यम पुरुष नारियल ज्यो है, जैसें नारियल बाह्य व्यवहार में कठोर अरु माहि कोमल। तैसे मध्यम पुरुष हू बाहिर तैं कठिन मो हिये में कोमल तरङ्ग लिये रहै। अधम पुरुष बेरके समान होइ जमें बेरफल बाह्यव्यवहार में नरम दीसैं, अरु माहि कठोर होइ। तैसें अधम पुरुष बाहिर नरमाई राखै, अरु दिल में सग कहतै पाषान हू कसा कठिन। अधमाधम पुरुष पु गीफल कहते सुपारीफल समान होइ। जैसें सुपारी बाहिर माहि सर्वाङ्ग कठोर होइ, तैसें अधमाधम पुरुष माहि बाहिर कठोर ही होइ॥ १८

अथ-उत्तम पुरुष यथा॥ सवैया ३१ सा॥

कीचसौ कनक जाकै नीचसौ नरेस पद
मीचसी मिताई गरवाई जाकै गारसी।

जहरसी जोग जाति कहरसी करामाती,
हहरसी होत पुद्गल छवि छारसी ॥
जालसो जग विलास भाल सो भुवन-वास,
काल सौ कुटम्ब काज लोक-लाज लारसी ।
सीठ सौ सुजस जानै बीठ सो वखत मानै
ऐसी जाकी रीति ताहि वन्दत बनारसी ॥१६

अथ उत्तम पुरुषकी दशा कहै है — जाके हियेमें ऐसौ विचार है, कनक कहते सुवर्ण, कीचसे जाने, नरवर कौ पद है सो नीच सो जानें, मिताई है सो मीचसी कहते मौतिसी जाने, गरवाई कहत वडाई, सो गार, लीपन सी जान, रसायन प्रमुख द्रव्य जोगकी जाति है सो जहर सी जानै । मन्त्र शक्ति ते जो करामाति सो कहर सी जानैं, देशी भाषा में हहर कहियें, अनर्थता सरीखी हाँस है । पुद्गलको छवि है सो छारसी कहत राख समान जानै। जगत का विलास है सो जाल समान जानै । भुवन वास कहतं घरवास है सो तीरको भाल समान जानै कुटम्ब कार्य है सो काल समान जानै । लोक लाज राखिवी सो मुहकी

लाल समान जानै। सुजस कौं सीठ समान जानैं नाटकके मलकौं सीठ कहिये। भाग्य उदयकौं विष्टा समान जानै। ऐसी ऐसी रीति है ताहि बनारसी बंदना करै है॥ १९॥

अथ—मध्यम पुरुष यथा सवैया ॥ ३१ सा ॥

जैसे कोऊ सुभट सुभाय ठगमूरी खाय,
चेरा भयौ ठगनिके घेरा में रहतु है।
ठगोरी उतरि गई तबै ताहि शुद्धि भई
परौ परवस नाना संकट सहतु है॥
तैसेंही अनादिको मिथ्याती जीव जगतमें,
डोलै आठों जाम बिसराम न गहतु है।
ग्यान-कला भासी भयौ अन्तर उदासी पै
तथापि उदै व्याधिसौं समाधि न लहतु है॥२०

अर्थ—अब मध्यम पुरुष की दशा दृष्टांत करि दिखावै है—जैसे कोऊ स्वभावै सुभट है ताको काऊ ठग मिल्यो ताहूंनें कोई जडी मूली खाई, तब वा मूरीके खानें ते सुभट हू ठगको चेरा भयो अरु ठगनिके घेरामें परौ

रहै। पीछैं वा सुभटनें मूली निकार निरूलै ते ठगौरी उतरि गई, तब ताका शुद्धि भई। वा ठगनि कों दुर्जन करि जानें तैसें ही अनादि कालको मिथ्याती जीव जानें प आप परि-वस परो, सो नाना प्रकार को सकट सहितों करैं। ससार में आठों जाम आठों प्रहर निकल भयो डोलैं पै विश्राम न पावैं। इतनें मे ज्ञान कला भासी तब अन्तर उदासी भया तथापि कहतै तो पिण कर्मके उदय रूप व्याधिसों समाधि न लहै, आस्रव में रहै ॥ २० ॥

अथ—अधम पुरुष यथा ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे राक पुरुषके भायें कानी कोडी धन
उलुवाके भायें जैसें सम्फाई विहान है।
कूकरके भायों ज्यों पिडोर जेरवानी मठा
सूकरके भायें ज्यों पुरीष पकवान है ॥
वायसके भायें जैसे नीवकी निवौंरी दाख
बालकके भायें दंत कथा ज्यों पुरान है।
हिंसकय भाये जैसें हिंसामे धरम तैसें
मूरिखके भायैं शुभबध निरवान है ॥२१॥

अर्थ—अब अधम पुरुष कीसा दृष्टांत करि दिखावें है—जैसें रांक (रंक) पुरुषके भायें कानी कौडी धन है, अरु घूघू के भायें जैसें सध्या है सोई प्रभात है। अरु जैसें कूकरके भायें पिडोर जिरवानी कहतें गाई भैसके जेरको जलरस सोई दही को मठा है। अरु जैसें सूअर के भायें पुरीप कहते विष्टा सोई पक्वान है। अरु जैसें वायस कहतें काग ताके भायें नींवकी निवोरी सोई दाख मेवा है। अरु जैसें बालकके भायें जैसें दंतकथा कहतें लौकिक बात सोई पुरान है। हिंसक के भायें जैसे हिंसामें धरम होइ, तैसें मूरखकें भायें शुभ बंध कहतें पुण्य बंध सोई निरवान कहते मोक्ष जानैं। ऐसी अधम पुरुष की दशा ॥ २१ ॥

अथ—अधम पुरुष ॥ सवैया ३१ सा ॥

कुंजरकों देखि जैसे रोस करि भूंमे स्वान,
रोस करै निर्धन विलोकि धनवंतकों।
रैनके जगैया कों विलोकि चोर रोस करै,
मिथ्यामती रोस करै सुनत सिद्धंत को ॥
हंसको विलोकि जैसे काग मनि रोस करै

अभिमानी रोस करै देखत महंत को।
सुकविकों देखि ज्यौं कुकवि मन रोस करै,
ऐसे मन रोस करै दुष्ट देखि म तको ॥२२॥

अर्थ—अब अधमाधम पुरुषकी दशा दृष्टांत करि
डिढावै हैं—जैसे कुजर कहते हाथी को देखि रोष करिके
कूकर भू सै। अरु जैसे निर्धन पुरुष धनवतकौ विलोकि
कै रोस करै अरु जैसे रातिकै जागरनहारे का चौकीदारका
देखि चोरलोक रोम करै। अरु जैसे मिथ्याती होइ सो
सिद्धांत सुनत रोम करै। अरु जैसे हस कों देखिकै काग
मनमें रोम करै। अरु जैसे महतकौ देखि, बडे पुरुष का
देखिकै अहकारी रोम करै। जैसे सुकविकों देखिकै कुकवि
होइ सो मनमें रोम करै। ऐसी भांति अधमाधम पुरुष संत
साधुकों देखि दुष्ट मन थकी रोम करै॥

अथ—पुन अधमाधम पुरुष वरनन ॥ स० ३१ ॥

सरलको सठ कहै वकताको धीठ कहै,
विनौ करै तासौं कहै धनोंको अधीन है
छमीकों निवल कहै दमीकों अदत्ती कहै,

मधुर वचन बोलै तासों कहै दीन है।
धरमीकों दंभी निसप्रेहीकों गुमानी कहै,
तिसना घटावे तासौं कहै भाग्यहीन है।
जहां साधु गुन देखै तिन्हकों लगावै दोष,
ऐसौ कुछ दुर्जनकौ हिरदौ मलीन है ॥२३॥

अथ—अन वहुरौ ही अधमाधम कौ व्यवहार कहै है
रल चित्तकों मठ मूर्ख कहै, नक्ता बात पंसकों ढीठ कहै
नेनय करनहार कौ कहै यो तो धनको आधीन थको
वेनय करे है, क्षमावत को निबल कहै, पाच इन्द्रिय के
मनहार कौं अदातार कहै, जो मधुर वचन बोले है ताकों
हु दीनदसा बनी है, धरमीकों दभी कपटी कहै, निसप्रेही
ौं अहंकारी कहै, अर तृष्णा छोड़ है ताकों भाग्य हीन
कहै। जहा ऐसौ सरलतादिक गुन देखै ताको दोष लगावै,
सौ कछु दुर्जन कौ हियौ मैलौ है। य अधमाधम की
कृति जानिये ॥ २३ ॥

अथ-मिथ्यादृष्टि बरनन ॥ चौपाई छंद ॥

मैं करता मैं कीन्ही कैसी,

अब यों करों कहो जो ऐसी।
ए विपरीत भाव है जामें
सो वरतै मिथ्यात दशामें ॥२४॥

अथ मिथ्यादृष्टि की अहंबुद्धि को वर्नन करै है-मैं कर्त्ता हों यह वर्तमान कालमें की सी वात, कीन्ही ए अतीत काल में, अवहोजैसी कहौं तैसी करिहौं ए अनागत काल में मह बुद्धिपनौ जामें ऐसी भाति विपरीत भाव है, सोतो मिथ्यात दशा में वर्तवो जानये ॥ २४ ॥

अहं बुद्धि मिथ्या दशा धरै सु मिथ्यावत
विकल भयो ससारमें करे विलाप अनत २५

अर्थ -जो ऐसी अहबुद्धि ह सोई मिथ्यादशा कहियै-जो ऐसी मिथ्या दशा धरे सौ मिथ्यावत कहियै। संसारमें विकल भयौ ससारम फिरतौ दु.ख सहतौ अनंत विलाप करै।। २५ ॥

अथ मूढ व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति,
अंजुलिके जीवन ज्यों जीवन घटतु है।

कालके ग्रसत छिन छिन छीन होतु तनु,
आरेकौ चलत मानौ काठसौ कटतु है ॥
एतें परि मूरख न खोजें परमारथ कौं,
स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटतु है ।
लग्यो फिरे रोगनिसों पग्योपर जोगनिसौं
विषै रस भोगनिसों नेकु न हटतु है ॥२६॥

अर्थ—अब मूढ प्रानीको वेवहारिपनो कहे हैं—सूर्य के उदयसौं लेकरि अरु अस्त काललौं दिन दिनकै विषै आउलीके जीवन कहतें आउषो घटतु है । अरु छण छण विषै काल शरीरकों ग्रसै है, तातें शरीर छीण होतु है ऐसें तन उरकों शरीर तरफतें काल ग्रसत रहै है । अरु शरीर काठ ज्यों कट्यो जाइ है । ऐसो कार्य है रह्यो है तऊ मूरख परमार्थकों न खोजै है अपने स्वारथके हेतु भ्रमको भारथ ठट्यो राखै है, लग्यो कहिये पर वस्तु काम क्रोधादिक तासौं लग्यो फिरै, अरु पर जोग कहिये पुद्गल जोग तासौं पग्यो कहै तै रलिमिल रह्यो तातें विषय रसके भोगतें नैकु हटतु नांही ॥ २६ ॥

अथ-अब मिथ्याती जीवनि मूढतापर दृष्टान्त, सवैय

जैसैं मृग मत्त वृषादित्यकी तपत मांहि,
तृषावत मृषा-जल कारन अटतु है ।
तैसें भववासी माया हीसों हित मानि मानि,
ठानि ठानि भ्रम भूमि नाटक नटतु है ॥
आगेंको ढुक्त धाय पाछैं वछरा चवाय,
जैसें दृग-हीन नर जेवरी वटतु है ।
तैसें मूढ चेतन सुकृत करतूति करें,
रोवत हसत फल खोवत खटतु है ॥ २७ ॥

अर्थ—अब औरों ही मूढ व्यवस्था कहै हैं-जैसें काऊ मातौ मृग है सो वृषादित्य कहियें वृष संक्रांतिके सूर्य(जेठ) की तपतिमें अति तृषावंत मृषा कहतें झूठी इच्छासों पानी के कारन अटतु है सो भटकतु है, तैसी भांति संसारवासी जीव है सो परस्वरूप माया जाल ही कों हितकारी मानि कें भर्मरूप भूमिकामें ठहराव करिकें नाटक सौ नाचि रह्यौ है। अरु जैसें कोऊ दृगहीन अंध पुरुष है सो जेवरीको

चटतु है, तहा गौको वच्छौ ठाढौ है सो नटी जेवरीको चाबि रह्यौ है, अरु अ घ है सो आगैं नटिकैंका सतावी सो टुक रह्यौ है। तैसैं मूढ प्रानी है सो सुकृतकी किया करै है। तब रावत हमत कहतैं जाकैं अति रति करि बैठ आगे खटतु है तौहू कीयें कौ फल खावै है॥ २७॥

अथ—मूढ विषयी वर्णन, सवैया ३१ सा

लिये द्रिढ पेच फिरै लोटन कबूतर सौ,
उलटो अनादिकौ न कहो सुलटतु है।
जाकौ फल दुख ताहि सातासौं कहत सुख,
सहत लपेटी असी धारी सी चटतु है॥
ऐसो मूढ जन निज स पति न लखे क्योंही
योंही मेरी मेरी निस वासर रटतु है।
याही ममतासौ परमारथ विनिसि जाइ,
काजीकौ परस पाइ दूध ज्यों फटतु है॥२८॥

अथ—अब औरौ ही बधको कारनहार मूढ विषयी की व्यवस्था कहै है—जैसैं लोटन कबूतर होइ सो पांखनि नर्धत डिढ पेच लग्यौ तातैं टलट पलट फिरै, तैसैं मूढ

प्रानी अनादि कालकौ कर्म बंध पेचमें परि गयौ तातें फिरै है, पै किसी भांतिसुलटौ न ह्वै है। अरु जाकौ फल दुख है। ऐसौ विषै भोगनितैं उपजी जो साता ताकौं सुख कहतु है, मानौ सहत सौं लपेटी तरवारिकी धारसी चाटतु है, जौ सहतकौ मिठास अलप अरु जीभ कटिवें तें आगें दुख बहुत है। ऐसौ मूरख प्रानी अपनी ज्ञानादिक संपदाकौं क्यों हू लखै नहीं, योंही पर वस्तु परि मेरी मेरी मेरी करि कै राति दिन रट रह्यौ है। याही जु झूठी ममता लगा, तिन्हि ममता सौं परमार्थ विनसि जाइ है, जैसैं कांजीके पानीको परस पाइ दूध फटि जाइ, तैसैं ममता सौं परमारथ बिगड़े है ॥ २८ ॥

अथ पुन मूढ व्यवस्था ॥ सवैया ३१ सा ॥

रूपकी न झांक हिये करमकौं डाक पिये,
ज्ञान दबि रह्यौ मिरगाक जैसे घनमें।
लोचनकी ढाकसौं न मानें सद्गुरु हाक
बालै मूढ राकसौं निसाकति हो पनमें ॥
टाक इक मासकी डलीसी तामें तीन फांक

तीन कौसौं आंक लिखि राख्यौ काहू तनमे
तासौ कहै नाक तीकी राखिवेको करै कांक
लांक सौ खडग वांधी वांक धरै मनमें ॥२६॥

अर्थ—अब मूढकी अरु बुद्धिकी व्यवस्था कहै है—आत्माकौ रूप हिये में न भाक्यौ जातै कर्मकौ न डाक पीन्हो। इतने कर्मको रम जोरै च ढ्यौ, तातें आत्माकौ स्वरूप शुद्ध ज्ञान सौ दबि रह्यो, जैसैं मृगाक कहतैं चन्द्रमा घनमें सौ मेघमें दबि रह्यो है अरु ज्ञान लोचनपरि मिथ्यात की ढाक आई, तातैं सद्गुरुकी हाक कहतैं आज्ञा सो न मानै। अरु मूर्ख पराधीन थको राक ज्यों बोलै। अरु तिहों पनमें,सो तिहां काल विषै निसक थको रहै। अब मूढता प्रगट दिखावै है—जो नाक है सो तौ टाक, एक मासकी डरी सी है। अरु तामें तीन फाक हैं, प्रत्यक्ष प्रमाणै देखिये है। ए तीनौं फाक कैसी भी दीसें हे सो कहै ? तीनको आंक तीन फाक वारो शरीरमें काहूने लिखि राख्यो है। तिन्हि औदारिक अवयव कौ नाक कहै अरु नाक राखिवै कौ कांक कहतें लराई करै जौ मरहिंगे पैं नाक राखेंगे।

ऐसैं विचारसो लराई करै । अरु खरग चाथैं ही रहै । अरु मनमें वाक धरे ही रहै ॥ २६ ॥

अथ —मूढ विषयी वर्नन ॥ सवैया ३१ सा

जैसैं कोऊ कूकर छुधित सूके हाड चावे,
हाडनिकी कोर चिहों उर चुभै मुखमें ।
गल ताल रसना मसूडनिकौ मास काटे,
चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥
तैसें मूढ विषई पुरुष रति रीति ठानें,
तामें चित माने हित माने खेद दुखमें ।
देखें परतक्ष बल हानि मल मूति खानि
गहे न गिलानि पगि रहे राग- रुखमें ॥३०॥

अर्थ—अब मूढके विषय रागीपनाकी दशा कहै है जैसे कोऊ कूकरो है अरु भूख्यौ थकौ हाड चावै है तब या सूके हाडानकी कोर है सो च्यारों तरफ मुखमें चुभै है, तब वा कूकरके गालकौ तालुआकौ जीभकौ मसूडानि कौ मास फाटे, तातै लोही नीसरै, मुहमें आवै, तब वह

निन्हकै मिथ्यात गयौ तहा सम्यग्दर्शन भयौ।
ते सम्यग्दर्शनी नियति-लीन भए—निश्चय लीन
अरु व्यवहार सौं मुक्त भए। जामें विकल्प नहीं।
नेरविकल्प, अरु जामें उपाधि नहा यातें निरुपाधि
समाधिते जे सगुन है कै इतने ज्ञानादिक गुनमई हुइ
समार्गकों ढुकत इ। तेई जीव परम दशामें थिररूप हैं
तमीक धर्ममें धुकै पै कर्मसौं रुकै नाहीं ॥२२॥

अथ—शिष्य प्रश्न कथन ॥कवित्त छंद॥

जे मोह-कर्मकी परिनति,
बंध निदान कही तुम सब्ब।
तत भिन्न शुद्ध चेतन सौं
तिन्हको मूल हेतु कहौ अब्ब ॥
यह सहज जीवको कौतुक
कै निमित्तहै पुग्गल दब्ब।
स नवाइ शिष्य इम पूछत
कहै सुगुरु उत्तर सुनु भब्ब ॥२३॥

विकल्प धारै है, श्रद्धबुद्धि धारिकैं। अरु जो ममत्त निवारिकैं थिर होइ सोई मुनि होइ ॥३१॥

अथ—मिथ्यात्व भाव व्यवहार ॥ सवैया ३१ सा ॥

असरयात-लोक परवान जो मिथ्यातभाव
तेई विवहार-भाव केवली उकति है।
जिन्हकें मिथ्यात गयौ सम्यक-दरस भयौ,
ते नियति-लीन विवहारसौं मुकति है॥
निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि,
साधि जे सुगुन मोख-पथकौं ढुकत है।
तेई जीव परम- दशामें थिर-रूप है के,
धरममें धुके न करमसौं रुकत हैं ॥३२॥

अर्थ—अब मिथ्यात भावतैं व्यवहारकौं असंख्यातपनौ कहै हैं—एक लोकाकाश है ताकौं असंख्यात पनैं कल्पना करियें, याके प्रदेश असंख्याता संख्यात कहे, याकै प्रमाण मिथ्यात भाव है। जीवके अध्यवसान स्थान हैं एक व्यवहार भाव केवली उक्त है, केवली कहै है।

अरु जिन्हके मिथ्यात गयो तहा सम्यग्दर्शन भयो। तबतौ वे सम्यग्दर्शनी नियति-लीन भए—निश्चय लीन भय। अरु व्यवहार सौं मुक्त भए। जामें विकल्प नहीं। यातें निरविकल्प, अरु जामें उपाधि नहा यातें निरपाधि ऐसी समाधितें जे सगुन है कै इतने ज्ञानादिक गुनमई हुइ कें मोक्षमार्गकों ढुकत है। तेई जीव परम दशामें थिररूप है कै आतमीक धर्ममें धुकै पै कर्मसौं रुकै नाहीं ॥३२॥

अथ—शिष्य प्रश्न कथन ॥कवित्त छंद॥

जे जे मोह-कर्मकी परिनति,
  बंध निदान कही तुम सब्ब।
सतत भिन्न शुद्ध चेतन सौं
  तिन्हको मूल हेतु कहो अब्ब॥
कै यह सहज जीवको कौतुक
  कै निमित्त है पुग्गल दव्व।
सीस नवाइ शिष्य इम पूछत
  कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व॥३३॥

अर्थ—अब गुरुकों शिष्य प्रश्न करैं है—जे जे मोह कर्मकी परिनति है, राग द्वेषादिक है, तेतौ तुम्ह सबही बंधको निदान कही । अरु ऐसी सवत कहते निरन्तर शुद्ध चेतनसों भिन्न हैं तातें या बंधको अब मूल हेतु कहो यहु जो बंध होतु है सो कहा जीवको सहज कौतुक है, कहा याको पुद्गलद्रव्य निमित्त है मस्तक नवाइकै शिष्य ऐसे बूझत है । तब गुरु कहैं है ? हे भव्य प्राणी यार्को उत्तर सुनि ॥२३॥

अथ—गुरु वचन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे नाना वरन पुरी वनाइ दीजै हेठि,
उज्जल विमल मानि सूरिज कराति है ।
उज्जलता भासै जब वस्तुको विचार कीजै,
पुरीकी झलकसों वरन भाति भाति है ॥
तैसें जीव दरवको पुग्गल निमित्त रूप,
ताको ममतासों मोह मदिराकी भाति है ।
भेदज्ञान दिष्टिसों सुभाव साधि लीजै तहा,
साची शुद्ध चेतना अवाची सुख साति हैं २४

अर्थ—अब गुरु कहे है जैसें सूर्य कात मणि है ऐसें कोऊ औरहू कास्मोरी पाषान है सो महा उज्वल है महा निर्मल है, अरु तार्के हेठ भाति भाति रगकी पुरी बनाइकैं दीजैं तातें भाति भाति रग दीसें। जा सूर्यकांति वस्तुकैं जब स्वभाव को विचार कीजे तब तौ वाकी उज्जलता ही भासै, अरु दिखाउमें हेठिली पुरीकी झलक परै है तबतौ हेठला रग माफक भाति भाति की वरन दीसै है तैसी भाति जीव द्रव्यकै अशुद्ध अवस्थाको निमित्त कारन पुद्गल द्रव्य है ताकी ममता मों मोहरूप मदिराकी भाति कहतै उनमादपनो हैं अरु जब जड चेतनकी भेदज्ञान दिष्टि देकै चेतनको स्वभाव साची शुद्ध चेतना ही भासै अरु अवाची कहतें वचनगोचर नहीं, वैसी सुख शांति है।

अथ—सयोगिक स्वभाव वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे महिमण्डलमें नदीको प्रवाह एक,
ताहीमें अनेक भाति नीरकी ढरनि है।
पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होत,
काकरकी खानि तहा झागकी झरनि है ॥

पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठै,
भूमिकी निचानि तहां भौंरकी परनि है।
तैसें एक आतमा अनंत रस पुद्गल,
दुहोंकी संजोगमें विभावकी भरनि है ॥३५

अर्थ—अब वस्तुके संयोगतें स्वभाव भेद होइ ताके परि दृष्टान्त कहे है—जैसें पृथ्वी मंडल उपरि नदीको प्रवाह एक रूप है, अरु ताही नदी प्रवाहमें पानीकी ढरिवौ अनेक प्रकारको है सो कहे है—जहां नदी प्रवाहमें बड़े बड़े पाथर आइ अरे है तहां धारकी मरोरि परे है। अरु जहां कांकरनिकी खानि है तहां झागकी भरनि उठै है। अरु जहां पौनकी झकोर परे है तहां चंचल तरंग उठै है, जहां भूमिकी नीचानि है तहां भौंर परे है। तैसें आत्म द्रव्य एक है अरु वाको संयोगी पुद्गल द्रव्य है, ताके रस है सो षटगुनी हानि वृद्धितें अनंत है संयोग सेती आत्मामें विभाव भरावे है ॥ ३५ ॥

अथ—आत्मा शरीर-भिन्न कथन ॥ दोहरा ॥

चेतन लच्छन आतमा, जड़ लच्छण तन जाल
तनकी ममता त्यागिकें लीजे चेतन चाल ३६

अर्थ—अब आत्मा अरु शरीर एकमेक बधि रहे हैं पै लक्षण भेद न्यारो न्यारो कहे हैं—आत्माको चेतना लक्षण है। तनु-जाल कहते शरीरको जड़ लक्षण है, तातैं शरीरकी ममता छोरिकें चेतनकी चालिसा शुद्ध ज्ञानपनो सोई गहि लीजे ॥ ३६ ॥

अथ-आत्माकरि शुद्ध परिणति यथा ॥ सवैया २३ सा

जो जगकी करनी सब ठानत,
जो जग जानत जोवत जोई।
देह प्रमान पै देहसों भिन्न,
देह अचेतन चेतन सोई
देह धरै प्रभु देहसों भिन्न,
रहे परछन्न लखे नहि कोई।
लच्छन वेदि विचच्छन बूझत,
अच्छनिसो परतच्छ न होई ॥३७॥

अर्थ—अब निःकेवल आत्माकी शुद्ध चालि कहे हैं—जोई पदार्थ सब जगतकी करनी करै है। इतनै चतुर्गति

न करै है अरु जोई जगतको जानै है, अरु लोचन
तै देखै है, आप अपनी देही प्रमाण है पै देहसों दूसरो
देह अचेतन पिंड है, अरु आत्मा चेतन पिंड है, देह
ो है, प्रभु देहसों भिन्न है या देहमें प्रछन्न कहते ढा-
ो रहे है। यासों कोऊ न लखै पै याका लक्षण जो है
ा भेदि कहतैं जानिकै विचक्षण पुरुष याकौ बूझे है अरु
ा कहतैं इंद्रियतैं ए प्रत्यक्ष नाही ॥ ३७ ॥

अथ देह व्यवस्था कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

देह अचेतन प्रेत दरी रज,
रेत-भरी मल खेतकी क्यारी ।
व्याधिकी पोट अराधि की ओट,
उपाधिकी जोट समाधिसो न्यारो ॥
रे जिय ! देह करै सुख हानि,
इतै परितो तोहि लागत प्यारी ।
देह तो तोहि तजैगी निदान पै,
तू हि तजे क्योन देहकी यारी ॥३८॥

अर्थ—अब देहकी चाल कहै है—देह है सो अचेतन प्रेत दरी है—जड़ता रूप प्रेतकी गुफा। रज कहते लोहू, रेत कहते वीर्य तासों भरी है अरु मल रूप खेतकी क्यारी है। व्याधि रोगकी पोरि है, आराध्य कहियै आतमा तिन्हि छिपाइबेको ओट है और कौसक जो उपाधी कहियै ताकी जाट कहिये मेलो है। यामें असमाधिही रहै है। रेजीव! या देह सुखकी हानि करे है, इतने पर तौ तोकों देह प्यारी लागै है, रे जीउ! तू इतनी समुझि—या देह तोहि तजैगी तौ तू ही देहकी यारी क्यों तजत नांही ॥३८॥

पुन दोहरा।

सुन प्रानी सद्गुरु कहै देह खेयकी खानि।
धरै सहज दुख दोषकों, करै मोखकी हानि

अर्थ—सद्गुरु कहै है—अरे प्रानी! देह है सो खेयकी खानि है धूरि छार है। सहज स्वभावैं वात पित्त, कफ रूप दुख देहकों धरै है। मोखकी हानि करै है॥३९॥

अथ देह वरनन ॥ सवैया ३१ सा॥

रेत-कीसी गढी किधों मढी है मसान कैसी,
अंदर अंधेरी जैसी कंदरा है सैलकी।
ऊपरिकी चमक दमक पट भूषणकी,
धोखें लागे भली जैसी कली है कनैलकी॥
औगुनकी औंड़ी महा भौंडी मोहकी कनौंडी
मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी।
ऐसी देहयाही के सनेह याकी संगति सों,
ह्वै रही हमारी मति कोल्हू कैसे बैलकी ४०

अर्थ—अब देहकी व्यवस्था वरनन करैं हैं—मानों रेतकी गढी वाधी है के मसान केसी मढी है इतनें अप नित्र तोरमें हाड मासकी होइ भीतरिली कोरि अंधेरी होइ जैसें शैल कहिये पहाड़ ताकी कंदरा कहिये गुफा भीतरी अंधेरी होइ। अरु याकैं ऊपरि पट भूषनकी चमक दमक होतु है तबतौ धोखें कहतैं झूठेंही भली लागै है। यापरि दृष्टांत कहै हैं—जैसें कनैरकी कली ऊपरितैं भली

लागै अरु भीतरि निर्गंध उपाटकारी औगुनकी आडी ठौर है, ऐसी महा मोडी है। मोहकी कनोंडी कहतैं माहकी कानी आंखि है यातैं सूझिवौ नाही, मायाकी मसूरति है कहतैं मायाजालको मसूदा है। ऐसी मैल की मसूरति है ऐसी यो देह है। अरु या हीके सनेहसौं अरु याहीकी संगति सों हमारी मति बुद्धि है सो कोल्हू कहिये उप पीलिवाकी यन्त्र, ताके बैल कीसी है रही है।

पुन सवैया ३१ सा।

ठौर ठौर रकतके कुंड केसनिके झुंड,
हाडनिसौं भरी जैसे थरी है चुरेलकी।
नेकुक धकाके लगें ऐसे फटि जाइ मानौं,
कागदकी पुरी किधौं चादरि है चैलकी॥
सूचै भ्रम ठानि ठानै मूढनिसौं पहिचानि
करै सुख हानि अरु खानि बद-फैलकी।
ऐसी देह याहीके सनेह याही संगति सौं,
ह्वै रही हमारी मतिकोल्हू केसे बैलकी॥४१॥

अर्थ—बहुरो देह स्वरूप कहै है—या देहमें ठौर ठौर लोहूके कुंड भरे हैं, अरु या देहमें अपवित्र केसनिके झुंड पाइये है अरु या देह हाडनिसों भरी है जैसे चुरैल दरतीकी थरी कहत थानिक है। चुरैलकी थलीमें हाड ही पाइये। थोरसे धकाके लागें या देह ऐसें फटि जाइ है मानो कागदकी पुरी है, कीधौं चैलकी चादर है, जूनी मैली चादर है थोरेही धकैंते फटि जाइ। या देहकी ममता तें भ्रमकी वानि कहतें मिथ्या वानी, सूचें कहतें कहै। अरु मूढ लोगनि सोंहो पहिचानि परिचय ठान, कहतें रावै अरु देह है सो सुखकी हानि करै है अरु बद-फैलिकी खानि है ऐसी या देह है। याके सनेह सों अरु याही की संगति सों हमारी मति बुद्धि है सो कोल्हूके बैल की सी ह्वै रही है ॥४१॥

अथ—कोल्हूका बैलका अरु संसारी जीव का समान रूप कथन ॥सवैया ३१॥

पाटी बाधी लोचनिसों सकुचै दबोचनि सों
कोचनिके सोंच सोन वेदै खेद तनको।

धायवो ही धंधा अरु कधा महि लग्यौ जोत,
वार वार आर सहै कायर है मनकौ ॥
भूख सहै प्यास सहै दुर्जन की त्रास सहै,
थिरता न गहै न उसास लहै छिनकौ ।
पराधीन घूमै जैसैं कोल्हूकौ कमेरौ वैल,
तैसोई सुभाव भैया जगवासी जनकौ॥ ४२॥

अर्थ—अब कोल्हूकी वैलकी अवस्था और संसारी जीवको ताहीके समान कहै है— जाके सोचन परि पाटी बंधी है दरोच फहिर्य पगनितें ठेलिवा वातें सकुचे है। अरु आरिके कौच कहवे घावे लागे है ताके सोचसौं शरीरकौ खेद, बैठे नहीं दौरौ फिरै। अपने धधा माहि धायवो ही करै। अरु कधा माहि जोत लग्यौ रहै, वार वार आर सहिवौ करै। अरु मनकौ कायर है, भूख भी सहै है, प्यास भी सहै है, दुर्जनके त्रासभी सहै है, थिरता ग्रहै नहीं क्षणमात्र सुखसौं उसास लै सकै नहीं पराधीन घूमै जैसै कोल्हूकौ कमेरौ कहवें काम-करनहारो वैल

T ~ ,

घूमे है अहो भैया ! तैसो ही स्वभाव अगत्रयवासी लोक कौ है ॥४२॥

अथ जगत्रयवासी जीव व्यवस्था ॥ सवैया ३१ सा ॥

जगतमैं डोलै जगवासी नररूप धरि,
प्रेतकेसे दीप किधौं रेत केसे थूहे है ।
दीसे पट भूषन आडवर सौं नीके फिरै,
फीके छिनमांभि साझि अ वर ज्यों सूहे है॥
मोहके अनल दगे माया की मनीसौं पगे,
डाभकी अनीसौं लगे उस केसे फूहे हैं ।
धरमकी बूभि नाहिं उरभे भरम माहि,
नाचि नाचि मर जाहि मरी केसे चूहे हैं ४३

अर्थ—अथ जगवासीकी व्यवस्था कहै हैं—जगवासी जीव है सो मनुष्य रूप धरिकै जगतमें डोलि रहे हैं ए जीव कसे है मानौ प्रेत केसे दीप है प्रेतके दीप हुइकै सिताव मिटि जाइ अथवा रेतके थूहे है वस्त्र भूषणके आडंवर सो नीकेसे फिरत दीसै हैं अरु छन एक माहि

फीक हुइ जात है जैसें अम्बर आकाशके विषें साँझ समै
फूहे कहते बादर है। मोहकी अगनितें दागें है। अरु
मायाकी मनी कहते अपना इनसों पगे कहते व्यापि रहे
है, एस्यै है। डाभकी अनीसा लगी उस वैसे फूहे जैसें
है गिंदु है धर्मकी बूझि नाहीं। अरु भर्म माहि उरझि
रहे, जैसै मरी उतपातके चूहे नाचि नाचि मरि जाहि है,
वैसे ए संसारी जीव नाचि नाचि मरि जाहि है ॥४३॥

अथ—जगत व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाको तू कहत यह स पदा हमारी सो तो,
साधनि अडारी ऐसे जैसें नाक सिनकी।
जाको तू कहत हम पुन्ययोग पाई सो तो,
नरककी साई है बडाई डेढ दिनकी॥
घेरा माहि परो तू विचारै सुख आखिनको,
माखिनके चूटत मिठाई जैसें भिनकी।
एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव,
जगमें असाता है न साता एक छिनकी ४४

अर्थ—अब जगवासी जीवकी मोहकी व्यवस्था
है—अरे प्रानी ! जाकों तू कहत है यहु सपदा हमार
सा तौ साधु लोगन ऐसैं डारि दीनी है जैसें नाक सि
कहते नाककौ मल है। अरु जाकों तू कहतु है यहु
पुन्य योग पाई है सो ता नरककी साई, राज्यादिक
डेढ दिनकी है। परिवारके घेरामें परो थकौ आखिन
सुख विचारै हैं पै यहु परिवार घेरौ कैसौ है ?
माखिनिकी जुटी मिठाई, मिनकी कहते भन भनाट में
रहै, तैसे परिवार घेरौ है। एतैं परि जगवासी जीव उ
होतु नाही। अरु माच विचारसे तौ जगत में असाता
है पै एक चणकी साता नाही ॥४४॥

अथ—उपदेश व्यवस्था ॥ दोहरा ॥

ए जगवासी यह जगत इन्हमौ तोहि न
तेरे घटमें जग वसै तामे तेरा राज ॥४५॥

अर्थ—एजु पूर्व कहे सो कहे हैं—ऐसे जगवा
लोक हैं, अरु इन्हिकौ वास यहु जगयत्र है, इन्हि लोग
सौ इन जगयत्र सौं तेरौ कार्य नहीं, सम्बन्ध न राखिवौ

अब तेरेही घटमें जगत्र वासी है तिन्ह जगत्रमें तेरो राज्य है

अथ—पिंड ब्रह्मांड वर्नन॥ सवैया ३१ सा ॥

याही नर-पिंडमें विराजे त्रिभुवन थिति,
याहीमें त्रिविध परिनाम रूप सृष्टि हे।
याहीमें करमकी उपाधि दुख दावानल,
याहीमे समाधि सुख वारिदकी वृष्टि हे॥
या मेकरतार करतूति याहींमें विभूति,
यामें भोग याहीमें वियोग यामे धृष्टि हे।
याहीमें विलास सब गर्भित गुपत रूप
ताहीकों प्रगट जाके अन्तर सुदृष्टि हे॥४६॥

अर्थ—अब 'जो पिंड सो ब्रह्मांड' यह कहावति साचा करि दिखावै है—या मनुष्यके पिंडमें कटिते नीचे पाताल लोक, नाभिमों तिर्यंच लोक, ऊपरि उर्द्ध लोक, ऐसी त्रिभुवन स्थिति है अरु याही में केई परिनाम उपजति है केई विलै जात हैं केई थिर है ऐसे त्रिविध सृष्टि बन है। और याही पिंडमें कबहों समाधिसुख जो आवै है सोई

वारिदकी वृष्टि है, दावनल मेघ वर्षा है। याही पिडमें कर्म को कर्त्ता पुरुष है। याही पिडमें कर्मसों वियोग है। याही धृष्टि कहता, आत्मा धीस पाईये, ऐसी भाति याही पिंडमें गर्भित कहत मध्य गिर्भ गुप्तरूप प्रच्छन्न रूप सब विलास है पै एतै विलास के अन्तर सुदृष्टि है ताही को प्रगट है ॥४६॥

अथ—गुरूपदेश कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

रे रुचिवत पचारि कहे गुरु
तू अपनो पद बूझत नांहीं ॥
खोज हिये निज चेतन लच्छन
है निजमें निज गूझत नाही ॥
सिद्ध सुच्छद सदा अति उज्जल,
मायाके फंद अरूझत नाही।
तेरो सुरूप न दुन्दकी दोहीमे
तोहीमें है तोहि सूझत नाही ॥४७॥

अर्थ—अब याही वातको गुरू उपदेश देहै—पचारि

कहते वौलाइके गुरु कहे है, रे रुचिवत भव्य ! तू अपनो पद कहते स्थानक बूझत नाही है अपनो चेतन लचन हीये में खोजु ए अपना लचन आपमें है गूझत नाहीं सो गुप्त नाही । तेरौतो स्वरूप सिद्ध समान है । स्वच्छद कहते अपने आधीन है, सदाई अति निर्मल है । ये माया जाल के फदमें नाही अरूझत है, तेरौ स्वरूप तो दु दकी दोही में नहीं, भ्रम जालकी दुविध में नाही, तोही में है पै तोहि सूझत नाही ॥४७॥

अथ ज्ञान माहात्म्य कथन । सवैया ३३ सा ॥

केई उदास रहैं प्रभु कारन,
केई कहीं उठि जाहि कहींके ।
केई प्रनाम करें गढ मूरति,
केई पहार चढे चढि छींके ॥
केई कहैं असमानके ऊपरि,
केई कहैं प्रभु हेठि जमींके ।
मेरो धनी नहिं दूर देशान्तर,
मोही में है मोहि सूझत नीके ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब ज्ञान जागे अपनी ईश्वरता पाईये यह कहे हैं—केई तौ अपनो प्रभु पहिचाननका उदासी ह्वै बैठ रहे है। केई कहीं चे जरु कहीं चे त्रको उठि जाइ हैं। केई तो मूर्ति गढिके प्रनाम करें हैं, केई तो प्रभु मिलनका पहार चढे हैं, केई छींके चढै हैं, कइरू तौ प्रभुकौं असमानके उपरी कहै हैं। ऐसी श्रद्धा लियें वैशेषिक प्रमुख हैं। केई तो जमीनके हठि प्रभुकों कहे हैं, ऐसी कुरान वाले की हैं पै यहु बात निश्चै सों तो यो है जो मेरौ धनी कहीं दूर देशावर नाही, माहीमें है, । अरु अनुभव तें मोहि नीकै सुभतु है ॥ ४८ ॥

अथ दोहा ॥

कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ।
सुथिरचित्त अनुभौ करौ, यहु पद परसै सोइ ४६

अर्थ—सद्गुरु कहे हैं—जो समकिती होइ सो परम उदासीन रूप है कें, सुथिर चित्त राखिकें अपनौ अनुभव करै तब याके पदकों परसै ॥ ४६ ॥

अथ मन स्वरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

छिनमें प्रवीन छिन ही मे मायासौं मलीन,
छिनुकमें दीन छिन मांहि जैसो शक है ।
लीये दौर धूप छिनु छिनुमें अनत-रूप,
कोलाहल ठानन मथान को सो तक है ।
नटको सौ थार किधौ हार है रहट-कोसो,
धारकोसो भौंर कि कुभारकोसो चक्र है ।
ऐसौ मन भ्रामक सुथिर आजु कैसौ होत,
ओर हीको चचल अनादि ही को वक्र है ५०

अर्थ—अब मनकी चंचलता कहिकै मन थिर राखिवे उपदेश दे है—यौ मन चनमें प्रवीन है रहै, चणमें मा[illegible] सौं मलीन वो रहै है, चण एकमें दीन दशा धारै है चण[illegible]कमें शक्र कहत इन्द्र जैसे हाइ वैठे है दौर धूप कहत[illegible]रा धावो करै है, चणमें अनत रूप धारै है । ऐ[illegible] कोलाहल मचाइ राखै है, मथानीकी छामी निलोवत जैसे कोलाहल करै तैसे । जैसैं नट मोपाको थार

किधो अरहटकी मालि घूमि रही, कै नदीकी भोंरी यों घूमि रह्यौ कै कुभारकौ चाक सौ भमि रह्यौ, मनतौं ऐसो सदा भ्रामक कहतैं भमि रह्यौ है। सौ तौ मन आन ही कैसें थिर होत, ओरैं जातिकौ चचल है, अरु अनादि कालकौ वाकौ ही चलै है ॥ ५० ॥

अथ—मनकौ चचलताको ओर कहै हैं ॥सवैया३१॥

धायौ सदा काल पै न पायौ कहो साचौ सुख
रूपसौ विमुख दुख कूप-वास वसा है।
धरमकौ घाती अधरमको स घाती महा,
कुरापाती जाकी सनिपातिकीसी दशा हैं।
मायाकौ झपटि गहे कायासौं लपटि रहे,
भूल्यौ भ्रम भीरमें वहीर कौसौ ससा है।
ऐसौ मन चचल पताका कौसौ अचल सु,
ज्ञानके जगेसौ निरवान पद धसा है ॥५१॥

अर्थ—अब औंरौ ही मनकी चचलताको कहै है—सदा काल में दौरौ रहै है पै या मनकौ कहौं साचौ

सुख न पायौ, अपने समाधि रूप सा विमुख भयो। अरु दुख रूप कूप वासमें वस्यौ है। ए मन धर्मकौ घाती है अरु अधर्मकौ संघाती है ऐसौ कुरापाती है। जाकी दशा सन्निपाती पुरुषकी सी लगै है, द्रोह प्रपचको कपटि ग्र है, मायाके मोहसों मगन है रहै, भ्रम-जालमें फस्यौ भूल्यौ ही फिरै, जैसे कटककी वहीरमें ससलौ ही जीव आनि फस्यौ भूल्यौ ही फिरै, ऐसौ जो मन है सौ पताका कहियै धुजा ताकै अचल वस्त्र ज्यौं चचल ह्वै रह्यौ है, सो ज्ञानके जागै तैं निरवान कहियै मोक्ष-मार्ग ताके पथ में धसै नैठै ॥ ५१ ॥

अथ मनकी चचलताका विशेष लक्षण ॥ दोहरा ॥

जो मन विषय कषायमें, वरतै चंचल सोइ।
जो मन ध्यान विचार सो, रुकै सु अविचल होइ

अर्थ—जो मन विषय कषाय रूप राग द्वेषमें वर्तै सो तो मन चचल जानिये। जा मन राग द्वेष छाड ध्यान विचार मों रुक्या रहै सो अविचल होइ ॥ ५२ ॥

अथ शिक्षा कथन ॥ दोहरा ॥

तातें विषय कषाय सौं, फेरि सु मनकी बांनि।
शुद्धातम अनुभवविषें, कीजे अविचल आनि॥

अर्थ—तातें विषय कषाय सौं जो जो मनकी बांन लगी है सो फेरिकें अपने शुद्धात्माकें अनुभव विषें मनकों अविचल कीजे॥ ५६॥

अथ विचार शिक्षा कथन॥ सवैया ३१ सा॥

अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज,
निराधार निगम निरंजन निरंध है।
नाना रूप भेष धरै भेषको न लेश धरै,
चेतन प्रदेश धरै चेतनको खंध है॥
मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमे तो ही सौं,
न तोहीसो न मोहीसो निरागी निरबंध है
ऐसो चिदानन्द याही घटमें निकट तेरे,
ताहि तू विचार मन और सब धंध है ५७

अर्थ—अब मन थिर करिवेकों आत्मा ही कों विचार करनौ ऐसैं कहै है। ए आतमा अलख है, अमूर्ति है,

ए अरूपी है, ए अविनासी है, ए अज कहते जायौं नहीं याकै कोऊ आधार नहीं ज्ञान रूपी है याकै कोऊ रंग नहीं याकै कोऊ रंध छिद्र, व्यवहार देखियै तौ नाना प्रकारकौ भेष धारै है। निश्चय में देखिये तौ भेषकौ लेश हू धरै नाहीं, चेतनाके प्रदेशनिकौ धरै है अरु चेतनाकौ खंध कहतैं पुंजरूप है। यह उपदेश मनकौं वाह्यात्माकौं है, सो वाह्यात्मा मनमों कहै है। यौ चिदानन्द जो है सो मोही मों मो पिंड सो मोहि धारै है। अरु हो मन! सो चिदानन्द तौ मैं तो ही सा विराजै है पै निश्चै नयतैं तोही सौ मोही सौं याको मोह नाहीं ऐसौ नीरागी निबंध है। ऐसौ चिदानन्द भगवान है सो अरे मन! याही घटमें, जहा तू रहै है तहा याही रहतु है तातैं या ईश्वरकौं ही विचारिवो करि और प्रपंच सब धंधरूप है ॥ ५४ ॥

अथ शुद्ध अनुभव शिक्षा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

प्रथम सुदृष्टिसो शरीर रूप कीजै भिन्न,
तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानियै।

अष्ट-कर्म भावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न,
ताहूमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानियै ॥
तामें प्रभु चेतन विराजत अखड रूप,
धरै श्रुत ज्ञानके प्रवान उर आनियै ।
वाहीको विचारि करि वाहीमें मगन हूजे,
वाको पद साधिवे कों ऐसी विधि ठानियै ५५

अर्थ—वा चिदानन्दको जैसै शुद्ध अनुभव होइ तैसी ही शिक्षा कथन करें—प्रथम तौ सम्यग्दृष्टि सों शरीररूप बाह्यात्मा भिन्न राखियै, ता बाह्य आत्मामें और ही सूक्ष्म शरीर कर्म सबधी अतरात्मा सोई भिन्न जानियै, तिहिं अतरात्मा सों जो परमात्मा सों जो परमात्मा के ज्ञान ढकानो, दर्शन ढकानो, ऐसै आष्ट प्रकार कर्म भावकी उपाधि लागी सोऊ भिन्न जानियै । अरु तिन्ही अतरात्मामें सुबुद्धिकौ विलास जो भेद ज्ञानादिक सोऊ भिन्न जानियै। तिाह सुबुद्धि विलास में चेतनरूपी प्रभु जा है सौ अखड रूपी विराजै है। अरु वह चेतन श्रु त ज्ञानके प्रमान तें हियै

में ठीक ठहराइये। अरे हो मन! तू वाही कौ विचार में मगन हुवै अरु वा चेतन पदसाधिवे कौ इतने मोक्षसाधिवे कौं ऐसी विधि करियें ॥ ५५ ॥

अथ—ज्ञाता जीव कथन ॥ चौंपाई छंद ॥

यह विधि वस्तु व्यवस्था जानें,
रागादिक निज रूप न मानें।
तातें ज्ञानवत जग माही,
करम बंधको करता नाही ॥५६॥

अर्थ—अब ज्ञाता जीव कौ स्वरूप कहे हैं—ऐसी भांति वस्तुकी व्यवस्था जानै। अरु जो राग द्वेषादिक भाव है सो अपनौ रूप न मानै। तातै ज्ञानवंत है सो जगत्रयमें कर्मबंधकौ कर्ता नाही कह्यौ ॥५६॥

अथ—ज्ञाताकी क्रिया कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

ज्ञानी भेदज्ञानसौं विलेच्छि पुद्गल कर्म,
आतमीक धर्मसो निरालो करि

ताकौ मूल कारण अशुद्ध राग-भावनाकै,
नासिवैकौ शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतौ ॥
याही अनुक्रम पररूप सनवध त्यागि,
आपु माहि आपनौ स्वभाव गहि आनतौ ।
साधि शिव-चाल निरवध होतु तिहकाल,
केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतौ ५६

अर्थ—अब ज्ञाताकी क्रिया कहै हैं ज्ञानी होइ सो भेदज्ञान सो पुद्गलीक कर्मसौं विलछन करै कैसैं करै ? सो कहै है —आत्मीक धर्म तैं पुद्गलीक धर्म न्यारो करि जानै, ऐसैं विलछण करे । अरु तिहि पुद्गल धर्मकौ मूल अशुद्ध राग द्वेषादिक भाव है ताकौ नाश करिवकौ शुद्ध अनुभव अभ्यासै, जैसे पूर्व कह्यौ है तैसी भांति अभ्यास राखै ऐसी भांति अनुक्रमें । प्रथम सुदृष्टि सों शरीर रूपकी भिन्न या रीतिसौं जैसे अनुक्रम कह्यौ तैसी भांति पूर्व संबधसों अनादि कर्म बंधकौ त्यागिकै आप माहि आपनौही ज्ञानादिक स्वभाव गहै । ऐसें शिव पद की साधना कौ करिकैं

तिहांकाल निरंधन भए हैं तैसें निरंधन होइ केवल ज्ञान पाइके लोकालोक को जाननहार होइ ॥२४॥

अथ—सम्यक्त धारी वैभव वर्नन ॥सवैया ३१ सा ॥

जैसें कोऊ हिंसक अजान महा वलवान,
खोदें मूल विरख उखारें गहि वाहसों।
तैसें मतिवान दर्व-कर्म भावकर्म त्यागि,
है रहे अतीत मतिज्ञानकी दशा हूसौं ॥
याही क्रिया अनुसार मिटें मोह अंधकार,
जगें जोति केवल प्रधान सविता हूसों।
चूकें न सकति सों लुकें न पुदगल माहि,
धुकें मोख- थलकों रुकें न फिरि काहूसों ५८

अर्थ सम्यक्त धारीकी पराक्रम कहै हैं—जैसें कोऊ हिंसक पुरुष भील प्रमुख है, हिंसाके फलकौ अजान है, अरु महा वलवान है, सो वृक्षके मूलकों खोदिकें पीछे अपने भुजवलतें उखारि डारै है. तैसें मतिमान कहियें सम्यक्ती पंडित है सो पुदगल स्वरूपी द्रव्यकर्म कों जैसें ज्ञानावरनपनों अर

दर्शनावरनपनौ इत्यादिक आठ, रागादि भावकर्मको त्यागिकै मतिज्ञानकी दशातें अतीत व्है कर्म रहित हो रहै। घन घन याही क्रियाकौ अनुसार लियें मोह अंधकार मिटै, यातैं केवल ज्ञानकी ज्योति जागै या ज्योति जो है सो मतिज्ञान प्रमुख सनिताहूसों प्रधान है, यातैं अनत वीर्य प्रगटै, फिरि या संगतिसों चूकै नहीं अरु मोक्षस्थान कों जाय ढुकै करु काहू सों फिरि रुकै नहीं ॥५८॥

इतिश्री समयसार नाटक विषें बंधद्वार विषैबाल बोधरूप समाप्त भयो।

इति बंधधिकार सम्पूर्णम् ॥

मोक्ष-द्वार ।

प्रतिज्ञा (दोहरा)

बंध द्वार पूरौ भयौ, जो दुख दोष निदानु ।
अब बरनौं संक्षेप सौं, मोक्ष द्वार सुख थानु १

अर्थ—जो दुखकौ निदान अरु दोषकौ निदान बंध है ताकौ द्वार सम्पूर्ण भयौ । अब जो सुखकौ स्थानक जो मोक्ष है ताकौ द्वार संक्षेपसौं वरनों हों ॥१॥

अथ—ज्ञान विलास वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

भेदज्ञान आरासौं दुफारा करै ज्ञानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै ।
अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै,
करम भरम को खजानौ खोलि खरचै ॥
यौंही मोख मुख-धावै केवलि निकटि आवै,
पूरन- समाधि लहै पूरत कै परचै ।

भयौ निरदौरि जाहि करनौ न कछु और,
ऐसौ विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै ॥२॥

अर्थ—अब मोक्ष द्वारके आदि ज्ञान विलास कौं नमस्कार करै है—जैसैं कोऊ पारखू रूप मुद्रा प्रमुख द्रव्य कौ सुलाककी आर सौं भेदै सो धातु कुधातुकी न्यारी करै तैसैं ज्ञानी जीव है सो भेदज्ञान रूपी आरासौं आत्मा पनौ, कर्मपनौ दुफारा करै। ए दोनु धारा दोनु रीत भिन्न भिन्न वरत्वै। अरु यामैं आत्मीक धारामैं तौ अनुभवकौ अभ्यास धारै। तातैं परम-धर्म कहतैं शुद्ध समाधि ताकौ गहै। अरु जा कर्म भर्म जाल न्यारो जान्यौ है ताकौ सत्तारूप खजानौ खोलि खरचै, सौ विशेषकैं निज रारवै। ऐसैं षपक श्रेणी करिकै मोक्ष कौ धावै। तहा केवल ज्ञान निकट आवै। तहा पूर्ण आत्म-स्वरूपके परिचयतैं पूर्ण समाधि पावै। पीछै भव भ्रमणकी दौर छाडि निरदौर भयौ कृतकृत्य भयौ। जाकौ और कछु करनौ न रह्यौ, तातैं विश्वकौ नाथ भयौ, ताहि बनारसीदास अरचै ॥२॥

अथ—सुबुद्धिविलासवर्णन ॥ सवैया ३१ सा ॥

काहू एक जैनी सावधान है परम पैनी,
ऐसी बुद्धि-छैनी घट माहि डारि दीनी है
पैठी नोकरम भेदि दरव करम छेदि,
सुभाउ विभाउ ताकी संधि सोधि लीनी है
तहां मध्यपाती होय लखी तिन्हि धारा दोऊ
एक मुधामई एक सुधारस भीनी है।
मुधामों विरचि, सुधा सिंधुमें मगन हूसे,
एती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है

अर्थ- अब सुबुद्धिके विलास सों आत्मास्वरूप मधि
कहै है—काहू एक जैनी जैन आगमके जाननहारे स
धान है के परम पैनी अति तीखी ऐसी बुद्धि रूप छैनी
सोनारकी छानी,शस्त्र विशेष,अपने घटमें डारि दीनी।
या सुबुद्धि छैनी नोकर्म कहिये आत्म प्रदेशनि विषै श
रूप जो औदारिकादि वर्गणा है तिहि नोकर्मको भेदि
पुद्गल रूपी कर्मको छेदिके स्वभावता अरु विभाव
संधि सोधि लीनी है। ताही संधि विषै मध्यपाती क

मिश्रित होइकै तिन्हि पुरुष दोइ धारा लखी। दोइ भांति लखी। तामें एक सुधा मई कहतें एक अज्ञानमई, एक सुधारस भीनी कहत अमृत रस भीनी ज्ञान समाधि मई है यहा रागद्वेषादिक की दशा है, सो तौ सुधा दशा है। तातैं निरचिकें वैराग्य धारिके सुधासिंधु मगन हुवै। ज्ञान समाधि रूप सुधा समुद्रमें मगन रहिये इहाजों इहालौं इतनी क्रिया कही, एसी सब क्रिया एक समय बीचि करे ॥३॥

पुनः दोहरा

जैसे छैनी लोहकी, करे एकसों दोइ ॥
जड चेतनकी भिन्नता त्यों सुबुद्धि सो होइ ॥४॥

अर्थ—जैसे लोहकी छैनी होइ सो एकसों दोइ करे। तैसें जड चेतनकी एकता भाजि भिन्नता करनी, सो सुबुद्धि सों ही होइ॥४॥

सुबुद्धिविलासकथन सवैया ३१ सा (सर्व लघु चित्र)

धरति धरम फल हरति करम मल,
मन वच तनु बल करति समरपन।
भखत असन सित चखति रसन रित,

लखति अमित वित करि चित दरपन ॥
कहति मरम-धुर दहति भरम पुर,
गहति परम गुरु उर उपसरपन ।
रहति जगति हित लहति भगति रति,
चहति अगति गति यहु मति परपन ॥५

अर्थ—अब जैसें सुबुद्धिको विलास होइ तैसें
हैं—सुबुद्धि है सो धर्मरूप फलकों धारै है, कर्मरूप
को हरै है. या क्रिया विषै मनोबल, वचनबल, का
समर्पण करै, इतने तीनौ बल तिहिं क्रिया विषै लग
असन कहते भोजन, सित कहतें शीतल भखै। रस
कहते जीभ सवाद विना चाखै। अमित वित कहतें
परिमाण अपनो ज्ञानादिक धन चित्त रूप दर्पण
तामें लखै मर्मधुरा कहते मर्मकी बात, जीवकौ स्वरूप
भर्म पुर कहतें मिथ्या नगर ताकौं दहै जालै ।
उपसर्पन कहतें थिरता राखिकै परमगुरु परमात्माकौ
जगतको हितकारी रहै। तीनों लोककी भगति अरु
कहतें सुख लहै इतने सब लोगनिके परलोक

अगति गति कहत जामें और सामान्यरो गमन नाही, इतनै सारगति चाहे। ऐसं मतिसौं परपन रहतं उत्कृष्टविलास है।

ज्ञाताको विलासवर्नन सवैया ३१ सा (सर्व गुरु चित्रा)

राणाकोसो बाना लीनैं आपा साधै थानाचीन्है,
दाना-अंगी नाना-रंगी खाना-जंगी जोधा है।
मायावेली जेती तेती रेतें मेघा रेती सेती
फंदाहीको कंदा खोदै खेती कोसो लोधा है॥
बाधासेती हांता लोरें राधा सेती तांता जोरें
बांदीसेती नाता तोरें चांदी कोसो सोधा है।
जानें जाहि ताहि नीकें मानै राही पानी पीकें
ठानें बाता डाही ऐसो धाराबाहो बोधा है ६

अर्थ—अब ज्ञाता को विलास कहै है—जो जोद्धा कहवे ज्ञानी है सो राना कहियें राजा पातिसाह ताको सो बाना लीयै रहै है जैसे रानो आत्म-साधन करै, अपनौ मंडल साधि राखे। यह अपन थानाकी चीन्है नेगाहदारीमें राखै। दाना अंगी होइ, नादान होइ अरु

च्यारी उपायतें नाना रंग करै, खाना अगोमें ओधार होइ ऐसै ज्ञाता ह्रै आत्म – साधन करै, गुनथाना चीन्है अरु त्यागी होइ। कर्मनिर्जरामें नाना प्रकारके रंग धारै, राग द्वेष दुर्जन सों लरै, हटाइ दें। ऐसे एक पदके दोइ अर्थ कहे। जैसें लोहा रेवीसो रहै, रवीसा लोहाकों रेति डारै तैसें जितनी तिननो माया बेली कहत भर्म जाल गज बेलि कों, मेधा सो बुद्धि, तिहिरूप रवी सेती रतें घनि डार अरु फदके रूपकी खोदें। जैसे लोधा कहिये किसान खेतकौ करनहार, खेत धरतीमें कद मूल कों खादि डारै। बाधा कहिये कर्म बन्ध तिन्ह सो हाता जारे, जुदाइगी करे राधा कहिये सुबुद्धि तिन्हसों तांता ओरै। नादी कहिये अज्ञान भाव तिन्हसों नाता सधध तोरै। जैसें सोना रूपा की चादीको सोधनहार वस्तु उज्जल करै, जाही ताही नीकै जानै सोहे, नयको भी नीकों जानै। उपादेय कौ भी नीकजानें पै हेयकों राही पाहो फूस समान, पीक समान जानै। ऐसी भांति डाही वातें ठहरावै ऐसौ सम्यक धारा को वहनहार बोधा ज्ञानी, पंडित ज्ञाता होइ ॥६॥

अथ—ज्ञाता चक्रवर्ती समान ॥ सवैया ३१ सा ॥

जिहिकै दरब मति साधन छखंड थिति,
विनसै विभाव-अरि पकति पतन है।
जिहिकै भगतिको विधान एई नौ निधान,
त्रिगुनके भेद मान चौदह रतन है॥
जिहिकै सुबुद्धि-रानी चूरै महा मोह वज्र,
पूरै मंगलीक जे जे मोराके जतन है।
जिनकै प्रमाण अंग सौहै चमू चतुरंग
तेई चक्रवर्ती तनु धरै पै अतनु है॥७॥

अर्थ—अब ज्ञाताकौ चक्रवर्ती समान कहि दिखावै है—जिहि छहों द्रव्य प्रधान करि साधै, सोवौ छहौं खंड साधिलीनैं। अरु जिन्हकै राद्वेषादिक विभाव चित्त से सोई वाके अरि पकति पतन है कहते शत्रु समूहको नाश भयौ अरु नव प्रकारकी भक्तिकौ विधान कहते करतो एई जाकै नव निधान है। ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जो तीन गुन हैं अरु जाके क्षयोपसमा माफक जो भेद उपजै हैं सो जाकै चौदह रतन है। चक्रवर्तीकी स्त्री रत्न होइ, सो चक्रवर्तीके

पट खड साधिकैं राज्याभिषेक समय होइ तब चक्र रत्न हाथ सौं चूरिकैं मुह आगे मगलीक चौक पूरै । तैसैं जिन्हिके सुबुद्धि रूप स्त्रीरत्न महा मोहरूपी वज्र कौं चूरि के मोक्षके जतन हेतु मगलीक पूरे, मगलीक कार्य करै । अरु प्रत्यक्ष प्रमाण करिकैं अर्थको ग्रहै है। तातैं जिन्हकैं प्रमाण रूप अग है सोई चतुरंग सेना भई । ऐसें ज्ञाता चक्रवर्ती शरीरधारी है पै अशरीरी जैसे हैं ॥७॥

अथ—नोधा भक्ति वर्नन ॥ दोहरा ॥

श्रवन कीरत चितवन सेवन वदन ध्यान ।
लघुता समता ऐकता नौधा भक्ति प्रधान ८

अर्थ—पूर्वे जो नौधा भक्ति सभारी थी अब ताकौ वर्नन करैं है—उपादेय स्वरूपकों सुनै । कीरतन कहतै कहै। चितवै- ध्यावै । सेवाकरै- पूजाकरै। स्तुति करै । ध्यान लगावै । सताव सौ तन्मयता है—समाधि लगावै एक मेक होइ । एई नौधा कहतें नौ भेदसैं भक्ति प्रमान है ॥८॥

अथ—अनुभव वचन ॥ सवैया ३१ सा ॥

कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें,
लच्छण विभेद भिन्न करमको जाल है।
जानें आपा आपुकों जु आपु करे आपु विषै,
उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥
सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरो,
निहचै सुभाउ यहु व्यवहार चाल है।
मैंतो शुद्ध-चेतन अनंत चिन्मुद्रा धारी,
प्रभुता हमारी एक-रूप तिहु-काल है ॥९॥

अर्थ—अब जो ज्ञाता मोक्षकौ उन्मुख भयौ ताके अनुभव की दशा कहे हैं—जिन्हि आत्माकी अनुभव पायौ सोई अनुभवी जीव ऐसे कहे हैं—मेरे अनुभव में लक्षण भेद करिके कर्म जाल अब भिन्न दीसन लाग्यौ यहा आत्मा ही कर्त्ता कारक, आत्मा ही करन कारक करिकै आत्मा ही आधार कारक विषै, आत्मा ही कर्म कारक को जानै। अरु इहांके पर्यायनिकी उत्पत्ति है नाश है अरु द्रव्ये ध्रुवता है ए तीनों ही धारा असराल वहि रही

है, पै ए तीनों धारा विकल्प रूप है, अरु मोसौ तौ निर्विकल्प सर्वथा न्यारे ही है। विकल्प में तौ निश्चय नाहीं। अरु मेरौ तौ चेतन स्वरूप निश्चय स्वभाव है। अरु जो पूर्व तीन धारा कही सोतौ व्यवहार नयकी चालि में है अब सिद्धांत वचन कहै हैं तातैं मै तौ शुद्ध चैतन्यरूप हों। अरु अनंत चिन्मुद्रा धारी कहतैं अनत ज्ञान को धारी हों। ऐसी हमारी प्रभुता तिहों काल विषै [illegible] है ॥६॥

अथ—चेतना वर्नन ॥ सवैया ३१ [illegible]

निराकार चेतना कहावै दरशन [illegible]
साकार चेतन शुद्ध ज्ञान गुनसार है।
चेतना अद्वैत दोऊ चेतना [illegible]
सामान विशेष सत्ता [illegible] है ॥
कोऊ कहै चेतना चिह्न [illegible] आतमानें
चेतनाके नाश होत [illegible] विकार है।
लक्षणको नाश [illegible] नाश मूल [illegible]

तातैं जीव दरवकौ चेतना आधार है ॥१०॥

अर्थ—अब चेतना ही कौ स्वरूप दिखावैं हैं—जो आत्मा कौ दर्शन गुन निराकार कहियै है सो तौ निराकार चेतना भई, । अरु जो आत्मा कौ शुद्ध ज्ञान गुन सारभूत है, सो तौ साकार चेतना भई,कहियै विशेषता लीयै है , तातैं साकार है । ऐसैं निराकारपनैं, साकारपनै दर्शन ज्ञान मैं द्वैत भाव भयौ पै चेतनामैं तौ अद्वैत-भाव ही रह्यौ । अरु चेतना गुनते चेतना द्रव्य है तातैं चेतन द्रव्यमैं दोनु समाइ गए । अरु निराकारपनौ तथा साकारपनौ सामान्य विशेष है सो तो सामान्य विशेष चेतन द्रव्यकी सत्ता कौ निस्तार है । काई मूढमति वैशेषिक प्रमुख कहै आत्मा मैं चेतना चिन्ह नाहीं ? चेतना लचरण नाहा ? ताकौं कहियै, अरे मूढ ! चेतना चिन्ह नहीं तौ चेतनाके नाश भयेतैं त्रिविधि विकार होइगो सो कहै है–लक्षणके नाश भयेतैं वस्तु की सत्ता को नाश होइ, अरु वस्तुकी सत्ताका नाश भये तैं मूल रूप वस्तुकौ ही नाश होइ तातैं जीव द्रव्य जानिवेकौं तौ चेतना ही कौ आधार है ॥१०॥

पुनः दोहरा ॥

चेतन लक्षण आतमा आतम सत्ता मांहि ।
सत्ता परिमित वस्तु है भेद तिहोंमें नाहि ११

अर्थ—आत्माको चेतना लक्षण है सत्ता धर्म आत्मा ठहरै नाहीं तातैं आत्मा सत्ता माहि है । अरु अपनी सत्ता परमानै वस्तु हैइ । वस्तु विचारे दखियें तब तिहो वस्तुमें भेद कोऊ नाही ॥११॥

अथ—चेतना अविनासी यहु कथन ॥सवैया २३ सा

ज्यों कलधात सुनारकी संगति,
भूषन नाम कहे सब कोई ।
कंचनता न मिटी तिहि हेतु,
वहे फिरि ओटिकै कंचन होई ॥
त्यो यहु जीव अजीव संजोग,
भयो वहु-रूप भयो नहिं दोई ।
चेतनता न गई कबहो,
तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई ॥१२॥

अर्थ—अब लक्षणको शाश्वतपनौ अविनासीकपनौ जैसे दिढावें है—जैसें कलधौत कहियें सौनौ, सो सोनारनि धरिकें भूषन करों तबतें सब कोई लोग सोनारकी संगति याकों भूषन कहने लागे तोहू वा वस्तुकी कचनता मिटी नहीं। तिहि कारन करिकें वहै भूषन वस्तु अगनि फिरि औटिकें शुद्ध स्वभाव कचन होई। तैसें यह जीव शुद्ध सो अजीवरूप कर्मपुद्गल रागादिक औरहू पुद्गल संयोगतें एक सताए लाख कुल कोडिमें बहुरूप भयौ तोह दुविधा में न भयौ, जातें जीव के बहुरूप भयौ हों चेतनता कवहो न गई तिहिं कारन करिकें सो सब रूपमें जबही कहावे है। विस्तार जाकौ वडो सोई ब्रह्म कहियें ॥१२॥

पुन सवया २३ सा ॥

देखु सखी यह आपु विराजित,
याकी दशा सब याही कों सोहै
ऐकमें ऐक अनेक अनेक मे
दुंद लियें दुविधा न हि दो हैं ॥
आपु सभारि लखे अपनो पद,

आपु विसारिकै आपहि मोहै ।
व्यापक-रूप यहै घट अंतर,
ज्ञानमें कौन अज्ञानमें को है ॥१२

अर्थ—औरौं योही अर्थ विशेषपनै कहै हैं—आत्मा की अनुभूति सुबुद्धि सखी सों कहै है, हे सखी! देखियो, अपनौ ईश्वर विराजतु है। अरु वा ईश्वर की दशा ही कौ सब सोहै। जैसो विरुद्धपनौ और ठौर न सोहै। लक्षण करि एकतामें देखिये तौ एक रूप है। अरु अनेक अपर सत्तामें देखिये तौ अनेक रूप है। अरु दुंद दशामें देखिये अज्ञान दशामें देखिये तब दुविधा, दोई रूप है सो दुविधा कहै हैं। कब हों तौ अपनौ पद,अपनौ स्वरुप सभारिकै आपुही लखैं। कबहीं कि अपनपौ विसराइकै आप ही मोहमें परई। हे सखी! यहु ईश्वर घटके अंतर व्यापक रूप है, तातें जिहि तिहि अवस्थामें व्यापे है। तब ज्ञान में और कौन है अरु अज्ञानमें और कौन है ॥१२॥

अथ—अब या बात पर दृष्टांत देहैं पुनः सवैया २३ सा

जो नट एक धरै बहु भेष,
कला प्रगटै जग कौतुक देखै ।
आपु लखें अपनी करतूति,
वहै नट भिन्न विलोकत भेखै ॥
त्यों घटमें नट चेतन राउ,
विभाउ दशा धरि रूप विशेखै ।
खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद,
दु द विचारि दशा नहिं लेखै ॥१४॥

अर्थ—अब दृष्टांत या बात पर कहै–जैसें कोऊ नट सो बहुभेष धारे है । आप अपने भेष की कला प्रगटावै तब सब जगत वाकौं कौतूहल देखें पै वह नट अपनी या आप लखै है तिहि भेषकौ आपतें भिन्न देखै है । तैसैं : में चेतन राट रूप नटुआ है, सो विभावदशा धरिकैं ा विशेष करै है, पै जब सुदृष्टि खोले है तबतौ अपनो : लखै है । अरु दु द विचारकी दशा अपने लेखेमें न वि ॥१४॥

अथ चेतना उपादेय यहु कथन ॥ अडिल्ल छंद ॥

जाके चेतन-भाव चिदातम सोइ है।
और भाव जो धरै सु औरैं कोइ है॥
यौं चिन्मंडित भाव उपादे जाननें।
त्याग जोग परभाव पराए माननें ॥१५॥

अर्थ—अब चेतना लक्षण सब भेष में एक रूप है, सोई उपादेय वस्तु है यह कहैं—जाके विषै चेतना भाव है सो चिदात्मा चिद्रूप कहिये। यहा चेतना भावतें और भाव कों जोई धारे है सो तौ कोई और ही है। यातें चेतना मंडित भाव है सो तौ उपादेय रूप जानिये अपनौ करि जानियै। अरु चेतना भावतें जो पर भाव है सो सब त्याग योग्य हैं, पराए करि मानि लीजै ॥१५॥

अथ सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गकौ साधन कथन। सवैया ३१सा

जिन्हके सुमति जागी जोगसौं भए विरागी,
पर-संग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवन में।
रागादिक भावनिसौं जिन्हकी रहन न्यारी,

कबहों मगनह्वै न रहै धाम धन में ॥
जे सदीव आपसौं विचारै सरवग शुद्ध,
जिन्ह के विकलता न व्यापे कछू मन में ।
तेई मोख मारग के साधक कहावें जीव,
भावैं रहो म दिर मे भावैं रहो वनमें ॥१६॥

अर्थ—अब जो सम्यग्दृष्टि चेतना को उपादेय राखि के मोक्ष मारग के साधक भए ताकी व्यवस्था कहै है जिन्हिके हिये सुबुद्धि जागी, अरु भोग विषय सों जे विरागी भए । अरु जो राग द्वेषादिक भाव पदार्थ है तिन्हि सौं जाकी रहनी न्यारी है, तातैं धाम कहतें घर, और जो धन है तामें मगन होइ रहैं नहीं अरु जो सदाई निश्चै दृष्टि दे कें आत्माको सर्वांगशुद्ध विचार है, तातें जाके मन में विकलता न व्यापै है । जैसी दशा लीऐ जो जीव रहै हैं तेई जीव मोक्ष मार्ग साधक कहावैं, मैं एतौ भावे मंदिर में रहो, भावे वन में रहो, सब ठौर एक दशामें हैं ॥१६॥

अथ विचच्छन दशा वर्नन ॥ सवैया २३ सा ॥

चेतन म डित आप अखडित,

शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ।
राग विरोध विमोह दशा,
समुझै भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥
भोग सयोग वियोग विथा,
अवलोकि कहे यहु कर्मज घेरो ।
है जिन्हको अनुभौ इह भांति,
सदा तिन्ह को परमारथ नेरो ॥१७॥

अर्थ—अब मोक्ष निजीक विचक्षण पुरुष की दशा कहे हैं—परमात्मा में दृष्टि देकें यहु विचार करै जो मेरो पदार्थ है सो चेतना मडित है । अरु अखंडित अग है, अछेद्य है, शुद्ध है, पवित्र है, यातें जो न्यारा राग द्वेष मोह की दशा बहि रही है ताकों तो भर्म रूप मिथ्याजाल रूप पुद्गल को नाटक करि समुझै है । जो पुद्गल जोग तें ही ए भांति उपजे है। अरु पच इन्द्रिनिको भाग सजोग, अरु ताही के वियोग, ऐसी बाह्यात्माके विषै व्यथा अवलोकि कैं कहै यहु कर्म का घेरो है, कर्म को उदै है । ऐसौ अनुभव जाके नित्य प्रति रहै है तिन्हकों परमात्मरूप, मोक्ष सदा नेरो निजीक है ॥१७॥

अथ—चोर तथा साहू वर्नन ॥ दोहरा ॥

जो पुमान परधन हरे सो अपराधी अज्ञ ।
जो अपनो धन विवहरै, सो धनपति धरमज्ञ ॥

अर्थ—अब मोक्षतै दूर सो तो चोर, मोक्षके निजीक सोई साहूकार ऐसो कहे है—जो कोई पुमान कहतै पुरुष पर-धन हरै है सोई अपराधी अज्ञ कहत अज्ञान कहिये अरु जो अपना ही धनको व्यवहार राखै है सोई धनपती कहतै साहूकार, धमज्ञ कहतै धर्मको जाननहार है ॥१८॥

पुन दोहरा ।

परकी संगति जो रचे, बंध बढावै सोइ ।
जो निज सत्तामें मगन, सहजै मुक्ती होइ १६

अर्थ—अब सहज मोक्ष कहे है—जो पुरुष पर कहतै कर्मकी संगति कहतै सहवास साथ, रचे है अपना मानि बैठे है वही बंधको बढावै है। अरु जो अपनी चेतन जातिकी सत्ताको अपनो शुद्ध स्वरूप माने है अरु अनुभवै है वह सहज मुक्तिको पावै है ॥१६॥

अथ—वस्तु सत्ता वर्नन ॥

उपजै विनशै थिर रहै, यहुतो वस्तु वखान ।
जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवान ॥२०॥

अर्थ—अब वस्तु कहा कहिये अरु सत्ता कहा कहिये ताकौ व्यौरा कहैं—उत्पत्तिवंत, विनाशवंत, थिरतावंत, यो तौ वस्तुकौ वखान है। अरु जो वस्तुकी मर्यादा वस्तु कौ परिमान है, सोई धर्म सत्ता कहिये। अनुमान प्रमान-ग्राह्य है ॥२०॥ अथ—सत्ता व्यवस्था वर्नन ॥ सवैया ॥

लोकालोक मान एक सत्ता है आकाशदर्व,
धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमित है।
लोक परिवान एक सत्ता है अधर्म द्रव्य,
कालके अणू असंख्य सत्ता अगनित है ॥
पुद्गल शुद्ध परमाणुकी अनंत सत्ता,
जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है।
कोऊ सत्ता काहूसों न मिलै एकमेक होइ,
सबै असहाय यों अनादिही की थिति है २१

अर्थ—कैसें कैसें द्रव्यकी कैसी कैसी सत्ता सो कहे हैं—आकाश द्रव्यकी मर्यादा लोक अलोक लों एक है, तातें आकाश द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु धर्मास्तिकाय द्रव्य लोक परिमान एक रूप है, तातें धर्म द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु अधर्मास्तिकाय द्रव्य लोक प्रमान एक-रूप है, तातें अधर्म द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु काल द्रव्य के अणु हैं लोकाकाश परिमानें असंख्यात हैं, तातें कालाणू की असंख्य सत्ता है। ए कथन दिगंबर संप्रदाय में। अरु योग शास्त्रे। अरु लोक विषै पुद्गल-रूपी शुद्ध परमाणू अनंत हैं, तातें परमाणू की भी अनंत सत्ता है अरु लोक विषै जीवकी न्यारी न्यारी स्थिति कहतें चेतनावगाहना है जा कोऊ आप अपनी सत्ता है सो और काहूकी सत्ता सों मिलै नहीं। तातें सबकी सत्ता असहायपनें वर्ते है। ये अनादि कालकी थिति ऐसी है ॥२१॥

अथ—चेतन सत्ता वर्नन सवैया ३१ सा

एई छहों दर्व इन्हि ही को है जगत जाल,
तामे पाच जड एक चेतन सुजान है।

काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिलै कोइ
एक एक सत्तामे अनन्त गुन गान है ॥
एक एक सत्तामे अनत परजाय फिरैं,
एकमें अनेक इहि भांति परवान है ।
यहै स्यादवाद यहै सतनिकी मरजाद,
यहै सुखपोष यहै मोखको निदान है २२

अर्थ—अब चेतन द्रव्यकी सत्ताको वर्नन करै हैं—एई छहों द्रव्य कहे, अरु इनिहीकी जगत जाल वरते हैं। तिन्हि छहों में पाच जड़रूपी है, एक चेतन अरूपी जानन हार है। इहा पुद्गलकी अनत सत्ता कही, ऐसैं अनतपनै करिकै काहूकी सत्ता काहू सों मिलै नाहीं। इतनै न्यारी न्यारी अनत सत्ता है। अरु हर काहूकी एक एक सत्तामें अनतगुनको गान है अनत गुन कहे है अरु एकएक सत्ता में अनत पर्याय अनत अवस्था भेद फिरैं, तातैं जो पूर्वे एक में अनेक कहे है सो इहि भांति सौं है। इहि प्रमान सो स्याद्वाद मतमें याही बात प्रमान है। सत पुरुषके वचन

की मर्जादा ही है, योही मति मुसकी पोषनहार है । योही
बोध मोक्षको निदान है । मूल कारन है ॥२२॥

अथ—एक जीव द्रव्य सत्ता वर्नन ॥ सवैया ३१ सा

साधी दधि मथनमें अराधी रस गथनिमें
जहा तहा ग्रथनिमे सत्ताहीको सोर है ।
ज्ञान भानु सत्तामें सुधा निधान सत्ता हीमें
सत्ताकी दुरनी साझि सत्ता मुख भोर है ॥
सत्ताको सरूप मोख सत्ता भूलें येहे दोष,
सत्ताके उलघें धूम धाम चिहो ओर है ।
सत्ताकी समाधिमे विराजि रहे सोई साहू ।
सत्ताते निकसि और गहे सोई चोर है ॥२३

अथ—इतो है होइगो जो ऐसें वचन सो वस्तुकी
ग्रही जाइ सो सत्ता धर्म कहिये तातें एक जीवकी सत्ता को
है—जो वस्तुमें छती देखिये, जैसें दहीके मथनमें घीकी
सत्ता साधिये जैसें ऊखमें मधुर रस है तो तातें वस्तु निपजै
यातें रस मार्गमें सत्ता बिना सिद्धि नहीं । ऐसें तहां वह

ग्रन्थनिमें सत्ता ही कौ सोर है, शब्द है। वस्तुमें छतिपनो सत्ता कहिये शास्त्रमें सत्ता अर्थ ऐसे ज्ञान रूपी भानुकौ उदय, जीवकी सत्तामें निपजे सुधा कहते अमृत सोई सत्ता में निधान पिन सत्ता हीमें पाईये। जा सत्ताकी दुरनी कहते छिपनौ सोई मभा रूप है अरु सत्ताको मुख है सोई भार कहते प्रभात है। जा जीवकी सत्ताकौ स्वरूप है सोई मोक्ष कहिये। सत्ताका भूलवो सोई दोष रूप है। सत्ताकी उलंघना किये चिहानार कहते च्यारों तरफ, धाम धूम निपजै वस्तु विसंस्थुल होइ, जो अपनी सत्ता है सद्भ्रुवपनौ है, ताहामें विराजि रहे सोई साहूकार कहिये। सत्ताव निकसके औरकी सत्ताको ग्रहै सोई चोर कहिये ॥२३॥

अथ—समाधि वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जामे लोकवेद नाहि थापना उछेद नांहि,
पाप पुन्य खेद नाहि क्रिया नाहि करनी।
जामें रागद्वेष नांहि जामें वंध मोक्ष नांहि,
जामें प्रभुदास न आकाश नाहि धरनी ॥

जामें कुल रीति जांहि जामें हारि जीति नाहि
जामें गुरु सीप नाहि वीख नाहि भरनी ।
आश्रम वरन नांहिकाहू की सरन नाहि,
ऐसी शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥२४॥

अर्थ—अब सत्ताकी समाधि वर्नन करें है जामें लौकीक वेदकी नांही, अरु जामें थापनाको उछेदि नाही, पाप पुन्यको खेद नाही अरु जामें कोऊ क्रिया करनी नाही, जामें राग द्वेष नाही, जामें बंध नाही, मोक्ष नाही, जामें प्रभुता नाही, दासपनो नाही, जामें आकाश नाही, धरनी नाही, जामें कुल रीति नांही, जामें हार नाही, जीति नाही, जामें गुरु की शिक्षा नांही, जाम वीख भरनी नाही, चाल-नी हालवी नाही, जामें कोऊ आश्रम त्योहार नांही, जो कोऊ सरना रूप नाही, ऐसी शुद्ध सत्ता की भूमिका समाधि रूप वरनी है। इतनै स्वरूप समाधि में ही शुद्ध सता पाईयै ॥२४॥

अथ—मिथ्या दृष्टी अपराधी यह कथन ॥दोहरा॥

जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जान ही, सो अपराधी जीव। २४।

अर्थ—अब मिथ्या दृष्टि कों चोर अपराधी कहि दिखावे है—केवल ज्ञानपनौं ही समता कहिये समाधि कहिये, सो जाके नाही। अरु जो सदा ही पर वस्तुकी ममतामें मगन रहे, अपने घट में अपना सरूप में जो न रमि रह्यो तिन्हि आतमाराम कौं न जानैं। सोई जीव अपराधी चोर कहिये ॥२५॥

अथ मिथ्यामति वर्नन ॥दोहा॥

अपराधी मिथ्यामती, निरदे हिरदे अंध।
परको मानें आतमा, करें कर्मको बंध॥२६॥

अर्थ—पराई वस्तु गहै सोई अपराधी, सोई मिथ्या मती सोई निरदई हीयें अंध, सोई पररूप पुद्गलकों आतमा करिके माने ऐसें कर्म ही बंध करें ॥२६॥

अथ—झूठी करनी वर्नन ॥दोहरा॥

झूठी करनी आचरे, झूठी सुख

झूठी भगति हियैं धरैं, झूठे प्रभु को दास ।

अर्थ—जब अपनी वस्तु न जानी, तब तौ जो क्रिया करैं, आचरैं सो सब झूठी। वाकों जा सुखकी आशा है सो सब झूठी। अपनौ प्रभु जान्ये बिना जोग भगति हियै धरैं सोई सब प्रभुको पाय बिना दासपना राखै सो सब झूठो ॥२७॥

अथ—मूढ व्यवस्था ॥सवया ३१ सा ॥

माटी भूमि शैलकी सो संपदा बखानैं निज,
कर्म मे अमृत जानैं ग्यानमें जहर है।
अपनौं न रूप गहे और ही सौं आपा कहे,
साता तो समाधि जाके असाता कहर है ॥
कोपके कृपान लिए मान-मद पान किए,
मायाकी मरोरि हिये लोभ की लहर है ।
याही भांति चेतन अचेतन की संगति सौं,
साचुसो विमुख भयो झूठमें बहर है ॥२७॥

अर्थ—अब मूढ लोककी झूठपनाकी व्यवस्था कहै हैं ए जो माती धातु हैं सो धरनी पहारकी माटी है, ताको तौ सम्पदा करि बखानैं। अपनी शुभ क्रिया में अमृत जानै अरु ज्ञानमें जहर जानैं। इतनै क्रिया में मिद्धि जानैं जो अपनों रूप चिदानदमइपनों है ताकों ग्रहै नाहीं, अरु जो शरीरादिक है ताको आत्म रूपक है। अरु जो साता वेदनी उपजै है ताकों तौ समाधि करि जानै। असातावेदनी कहर, उपद्रव मानैं। क्रोधकी कृपान कहतैं खड्ग सो लियैं रहै मान अहंकार रूप मदकों पीयें रहै। हियें में माया की मरोरि राखैं। लोभकी लहरि खायवो करै। याही भांति सो अचेतनकी संगति सो इतनै जड पुद्गलकी संगति सों चेतन है सो साचुसों विमुख भयो अरु झूठमें लग रहै, याही में तत्पर है ॥२८॥

अथ—सम्यग्दृष्टि व्यवस्था कथन ॥दोहरा॥

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञान कला घट माहि
परचै आतमरामसौं, ते अपराधी नांहि ॥२९॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि साहूकार की व्यवस्था कहे है—जिन्हिके मिथ्यामति भाजि गई, घटमें ज्ञान कला प्रगटी आत्मारामको पहिचान्यौ परिचय पायो, ते लोक अपराधी न किये। साहु कहिये ॥२६॥

अथ—ज्ञानीकी व्यवस्था कथन ॥सवैया ३१ सा॥

जिन्हिके धरम-ध्यान पावक प्रगट भयो,
सर्से मोह विभ्रम विरखि तीन्यौ डढे हैं।
जिनिकी चितौंन आगें उदै स्वान भू सि भागें,
लागें न करम रज ज्ञान-गज चढे हैं॥
जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग आगम में,
आगममें निपुन अध्यातम में कढे हैं।
तेई परमारथी पुनीत नर आठो जाम,
राम रस गाढ करैं यहे पाठ पढे हैं॥३०॥

अर्थ—अब ज्ञानीका परिचय कहे हैं जिन्हिके हियेमें धर्मध्यान रूप पावक कहते अग्नि प्रगट भयो, तातैं सशय, मोह, विभ्रम ए तीन्यौ ही वृक्ष रूप है सो डढे कहतै जल

गये हैं । जिन्हिकी चितौन आग कहैं ते ज्ञान दृष्टि आगे उदय रूप कूकर है सो भूसिके भागै अरु ध्यान रूपी गज राज परि चढे, तातैं कर्मरूप रज लागन न पावै । आर फो अगम अथा है तामें जिन्ह की समुझि तरंग लागा ऐसैं आगम जैनवानी में निपुन भए, अरु अध्यातम ज्ञानमें चढे, तेई सम्यग्दृष्टि परमार्थक पावनहार पुनीत कहते पवित्र रूप हुई रहै । आत्मारामके अनुभव रसमें आठों पहर गाढे, मगन भए याही पाठ पढि रहै है ॥२०॥

पुन सवैया ॥२१ सा ॥

जिन्हिकी चिहुटि चिमटासी गुन चुनिवेकों
कुकथाके सुनवेकों दोउ कान मढे हैं ।
जिन्हिकौ सरल चित कोमल वचन बोलै,
सोमदिष्टि लियै डोलै मान कैसे गढे हैं ॥
जिन्हिकै मकति जगी अलख अराधिवेकौं,
परम समाधि साधिवेकों मन बढे हैं ।
तेई परमारथ पुनीत नर आठौं जाम,

राम नाम गाढ करैं यहै पाठ पढै है ॥३१॥

अर्थ—औरो ही ज्ञानीकी अवस्था कहै है-जैसैं चिमटा कहतें हातकी चिमटी अथवा चीपी सौ सांसा काहू वस्तु छोटी कों चुनि लीजैं, वैसैं पराए गुन चुनिवेकों जाकी ऐसी चिहुटी है। अरु कुकथा, विकथा सुनिनेकों दोऊ कान मढि राखेंहै। कपट विना जिन्हि कौ सरल चित्त है। निरहंकारपनें कोमल वचन बोले है। काम क्रोधादि विकार विना सौम्य दृष्टिलियें डोलें है। मानौ मैंणसै घरें कोमल पुरुष है।/अपन अलख नायेक आराधिवेकौं जिन्हिकी सुमति जागी है। अयोग अवस्थामें जा परम समाधि होइ है, तिन्हिकै साधिवेकौ जिनिके मन चढै है, तेई सम्यग्दृष्टि परमार्थके पावनहार पुनीत कहतें पवित्र रूप हुई रहै हैं। आत्मारामके अनुभव रस में गाढे मगन भये या ही पाठ पढै रहै हैं ॥३१॥

अथ—समाधि वर्नन ॥दोहरा॥

राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननको दोइ।
जब समाधि परगटभई, तब दुविधा नहि कोइ।

अर्थ—अब समाधिको स्वरूप कहै है आतमाराम है सो रासक कहतै रस भोक्ता है। अरु राम कहतैं रमिवौ सोई रसी है, एकाहिवे मुनिवेको रसिक अरु रस ए दोइ है पै जब यामैं समाधि प्रगट होतु है तव दुविधा नाहीं दीसतौ रसिक रस एक वस्तु है ॥२२॥

अथ—शुभ क्रिया वरनन ॥दोहरा ॥

नदन बदन स्तुति करन, श्रवन चितवन जाप
पठन पढावन उपदेसन,वहुविधि क्रियाकलाप ३३

अर्थ—राम है ओर रसिक अवस्था धारत एती क्रिया करै है-सो कहै—नंदन कहतें आनंद पावे है, वदन कहवे प्रनाम करै है सुनै है, थुति करन कहतैं भांत भांति गुन स्तुति करै है, ऊँसै गुन सुनै है, गुन विचारै है, याजाप जपै पढ़ै पढावै उपदिशै, ऐसे रसिक अवस्था में भांति भांति क्रिया कलाप है ॥३३॥

अथ—कर्म मार्गसे मोक्ष नहीं होइगी यहु कहै है ॥दोहरा॥

शुद्धातम अनुभौ जहा, शुभाचार तिहि नाहि।
करमभारगविषै, शिवमारग ३४

अर्थ—एजु पूर्वे क्रिया कही तिन्हि करतही जहा शुद्ध आत्माकौ अनुभव होइ तहा शुभाचार हू छूटि जाय, कृत-कृत्यपनातें ए अजोगी दशामें है। कर्म है, सो कर्ममार्ग विर्षे ठहरै। इतने ससार मागमें ही रहै। शुभ कर्म हू ससार मार्ग है। शिव मार्ग है सो शिवमाहि कहतें शुद्ध आत्मा ही में है ॥२४॥

पुन ॥ चौपाई छन्द ॥

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी,
कही जिनद कही मैं तैसी।
जे प्रमाद-सजुत मुनिराजा,
तिन्हिके सुभाचार सौं काजा ॥२५॥

अर्थ—जैसी भांति श्री जिनेन्द्र देव वस्तुकी व्यवस्था कही तैसी आगम प्रमान तै मैंहू कही। अरु जो मुनिराज प्रमाद संयुक्त हैं इतने दशामें हैं तिन्हिकै शुभाचार शुभक्रियाकौ आलबन लीयाही कार्य सिद्धि होइ ॥२५॥

पुन ॥ चौपाई छद ॥

जहां प्रमाद दशा नहि व्यापै,
तहां अवलंब आपनो आपै ।
ता कारन प्रमाद उतपाती,
प्रगट मोख मारगको घाती ॥२६॥

अर्थ—जहां मुनिराजको आत्माके अधिकवीर्यांश तैं प्रमाद न व्यापै है, तहां आपनो अवलंब आपही ले है । तिहिं कारनतें प्रमाद उतपाती है । अर प्रगटपनें मोक्षमार्गको घाती है ॥२६॥

पुनः ॥ चौपाई छंद ॥

जे प्रमाद संजुगत गुंसाई,
उठहि गिरहि गेंदूके नाई ।
जे प्रमाद तजि उद्धत होई,
तिन्हिकों मोख निकट द्रग सोई ॥२७॥

अर्थ—गुसाँई देशी भाषा है । इतनें जे मुनिराज प्रमाद संयुक्त है ते तौ गिंदुक (गेंद) की नाईं तौ दरा कीसी रीति लियै उठत है गिरत हैं पै



मह

प्रमाद छोरिकै अप्रत्त दशातैं उठि खरै ह्वै है तिन्हिकौ तौ मोच्च अपनी दृष्टि सो ही निकट है ॥३७॥ ,

पुन ॥ चौपाई छंद ॥

घटमें है प्रमाद जब ताई,
परार्धान प्रानी तब तांई ।
जब प्रमादकी प्रभुता नाशै,
तब प्रधान अनुभौ परगासै ॥३८॥

अर्थ—जोलौं प्रमाद घटमें रहै है तौंलौ प्रानी पराधीन रहै है। अरु जब आत्माकी शक्ति जागैतैं प्रमादकी प्रभुता नासै तब प्रधान अपने अनुभौको प्रकाश होइ ॥३८॥

पुन ॥ दोहरा ॥

ता कारन जग पथ इत, उत शिवमारग जोर ।
परमादी जगको धकै, अपरमादि शिवओर ३६

अथ—तिहि कारन जगतको मार्ग प्रमादकी तरफ भयो । अरु अप्रमादकी तरफ मुक्तिको मार्ग है । प्रमादी होइ सौ जगतको ढुकै है अरु अप्रमादी मुक्तिकी तरफ ढुकै है ।३६।

पुन ॥ दोहरा ॥

जो प्रमादी आलसी, जिन्हिकै विकलप भूरि ।
होइ सिथिल अनुभौविषै, तिन्हिकौ शिवपथ दूर४०

अर्थ—जे प्रमादी आलसी है, जिन्हिकै भूरि कहतैं घने विकल्प रहै। अरु अपने अनुभवविषैं शिथिलपनें रहै हैं, तिन्हका मुक्तिमार्ग दूरि रहै ॥४०॥

पुन ॥ दोहरा ॥

जे अविकल्पी अनुभवी, शुद्धचेतनायुक्त ।
ते मुनिवर लघुकालमें, होइ करमसौ मुक्त ४१

अर्थ—अरु जे विकल्प विना अनुभवमें रहै, शुद्ध चेतना ही में युक्त रहै, ते मुनीश्वर अल्पकाल माहि कर्म सों मुक्त होइ हैं ॥४१॥

पुनः ॥ दोहरा ॥

जे प्रमादी आलसी, ते अभिमानी जीव ।
जे अविकल्पी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥४२॥

अर्थ—जो प्रमादवत हैं, आलसी ... बुद्धिवै

अभिमानी जीव कहियें । जे निश्चय रहित अपनें अनुभव में हैं, ते तो सदीव कहतें सदाई समरसी कहीयें ॥४२॥

अभिमानी तथा ज्ञानी व्यवस्था कथन कवित्त छंद

जैसे पुरुप रासें पहार चढि,
भूचर पुरुप ताहि लघु लग्गै ।
भूचर पुरुप लगे ताकों लघु,
उतर मिलें दुहोंको भ्रम भग्गै ॥
तैसें अभिमानी उन्नत लग,
और जीवकों लघु पद दग्गै ।
अभिमानीकों कहें तुच्छ सब,
ज्ञान जगे समता-रस जग्गै ॥४३॥

अर्थ—अभिमानीकी अवस्था अरु ज्ञानीकी अवस्था दृष्टांत करि दिखावें है—जैसे कोऊ पुरुष पहार परि चढिकें नीचे दृष्टिदे, तब भूचर कहतें तलहटीवारो पुरुप तिहिं पहार वारेकौ लघु कहतं छोटा सौ लागै । अरु तलहटीवारो पुरुप तिहिं पहारवारेकौ लघु लखै, देखै तौ पहारवारो छोटो

सो लागै। पीछैं दोनों उतरके मिलैतव दोहोंको भ्रम भागै तैसें अभिमानी पुरुष ऊ'ची गर्दन राखनहारो और जीवकों लघु पदको दाग है। इतनें छोटै तुच्छ करि जानें और पुरुष है सो तिहिं अभिमानी होकों तुच्छकरि जानें हैं ऐसें आप आपने विचारमें विषमता है सो ज्ञान जागें ही समता रूप होइ ॥४३॥

अथ—शुद्धात्मअनुभव प्रशंसा ॥ चौपाई-छंद ॥

जे समकिती जीव समचेती,

तिन्हिकी कथा कहों तुम सेती।

जहा प्रमाद क्रिया नहिं कोई,

निरविकलप अनुभो पद सोई ॥४६॥

अर्थ—अब शुद्ध आत्माके अनुभवकी प्रशसा कहै हैं जे जीव समकिती हैं, समचेती कहतें वीतरागपनेंचित्त समता वत हैं, । अहो भव्य ! तिन्हिकी कथा तुम्हसों मैं कहो हों। जहां कोऊ प्रमादकी क्रिया नांही, सोई निर्विकल्प अनुभो पद कहियें इतनें अनुभोमें विकल्प नांही ॥४३॥

पुन ॥ चौपाई छद।

परिग्रह-त्याग जोग थिर तीनों,
करम बंध नहि होइ नवीनों।
जहां न राग द्वेष रस मोहे,
प्रगट मोख मारग मुख सोहे ॥४७॥

अर्थ—जहां परिग्रहको त्याग है, अरु तीनों जोग थिर हैं, तहां नवीन कर्मकौ बंध नाहीं होतु है। इतनें नये कर्म न बंधै। अरु जहां जोगकौं राग द्वेष रस मांहे नाहीं, सोई प्रगटपनें मोक्षमार्गकौ मुख कहतें प्रारम्भ है ॥४७॥

पुन: ॥ चौपाई छंद ॥

पूरब बंध उदै नहि व्यापै,
तहां न भेद पुन्य अरु पापै।
दरबभाव गुन निर्मलधारा,
बोधविना एवंविध विस्तारा ॥४८॥

अर्थ—अरु पूर्व जो कर्म बंधे तिन्हिकौ उदै व्यापत नाहीं। अरु जहां पुन्य पापमें भेद नाही विचारिये, अरु जहां साधुके २८ मूल गुण द्रव्यपनें भावपनें निर्मल धारा

रायेंबदै हैं। अरु जहां बोध विना, ए रूढ़नें ज्ञानके प्रकार भांति भांति विस्तार में है ॥४८॥

पुन. ॥ चौपाई छंद ॥

जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी,
तिन्हिके हिरदै दुविधा कैसी।
जेमुनि खिपकश्रेणि चढि धाए,
ते केवल भगवान कहाए ॥४६॥

अर्थ—जिन्हिके जैसी सहज अवस्था भई, तिन्हिके हिये आतमा पहिचान वेकी दुविधा कैसे रहे ? ऐसे ही में जेई मुनि राजचपक श्रेणी चढिकै उदं मुख धाए, तेती केवल भगवान कहतें केवल भगवान कहाए॥४६॥

॥ दोहरा ॥

इहि विधि जे पूरन भए, अष्ट-कर्म वन दाहि।
तिन्हिकी महिमा जे लखे,नमे बनारसी ताहि ५०

अर्थ—ए भांति करिके अष्ट कर्म रूप वनको जालके पूर्ण आत्म स्वरूपमें जे भए हैं अरु ति [illegible] महिमाका जी [illegible] साच पर्न जानै है, [illegible] दास

नमस्कार करे है ॥ ५०॥

अथ— मोक्ष उत्पत्ति वर्नन ॥ छप्पय छन्द॥

भयो शुद्ध अकूर, गयो मिथ्यात भूरि नसि।
क्रम क्रम होत उदोतसहजजिम सुक्ल पक्ष ससि॥
केवल रूप प्रकासि
भासि सुख रासि धरम ध्रुव।
करि पूरन थिति आउ,
त्याग गति भाव परम हुव॥
इह विधि अनन्य प्रभुता धरत,
प्रगट बूंद सागर भयो।
अविचल अखंड अनभय अखय,
जीव दरव जग महि जयो॥५१॥

अर्थ—मोक्ष पदार्थ उत्पत्ति को क्रम कहे है— शुद्धताको अंकुर प्रगट भयो, मूलतें मिथ्यात नाश भयो। क्रमि क्रमि आत्माको उद्योत होंन लागो, जैसें चाँदने पक्ष में ससि कहतें चद्रमा क्रमि क्रमि करि उद्योतवंत होइ। ऐसें

क्रमि क्रमि उद्योत होत केवल रूप को प्रकाश होइ। अरु ध्रुव धर्म कहें आत्माको जो जो निश्चल धर्म, सुख रासि कहतें सुख समूह, सोई मासें। ता पीछे आयु कर्मकी थिति पूरन कर हैं। मनुष्य गतिकी भाव त्यागके परमात्मा होइ। ऐसी भांति सों अनन्य प्रभुता कहतें सबते उत्कृष्ट प्रभुता धारे। जैसें बूंद-बूंद एकठी होतु समुद्र होइ, तैसें क्रम क्रम सो पूर्ण भयो। प्रगटपनें भयो। फिर ताकौ चलिनौ नाहीं। खंडना नाही। भय नाही। क्षय नाही, तातें अनिचल, अखंड, अक्षय। ऐसो ज्ञान द्रव्य जगत माहि जयवंत होऊ ॥५१॥

अथ-अष्ट कर्म नाशतें अष्ट गुन प्रकाश वर्नन ॥सवैया॥

ज्ञाना वरनी कें गये जानियें जुहे सु सब,
दर्शनावरनके गयेते सब देखिये।
वेदनी करमके गयेतें निरावाध रस,
मोहनीके गयें शुद्ध चारित विशेषियें॥
आयुकर्म गयें अवगाहन अटल होइ,
नाम कर्म गये तें अमूरतीक

अगुरुलघुरूप होइ गोत कर्म गयें होतें,
अंतराय गयें तें अनत बल लेखियें ५२

अर्थ—अब अष्ट कर्मके नाश भएतें जा आत्माके आठ सहज गुन कौ प्रकाश होइ सो कहै है—ज्ञानावरनीके नाश भए तें जो लोग लोक में वस्तु है सो सब जानियें। इतने केवल ज्ञान प्रकाश होइ। दर्शनावरनी कर्मके च्चय गए ते लाकालोकके भाव सामान्यपने सब देखियै। इतने केवल दर्शन प्रगटै। वेदनी कर्म च्चय गए ए ते निराबाध रस उपजे। इतन अव्याबाधपनौं अनंत सुख उपजे। मोहनो कर्मच्चय गएते विशेषपने शुद्ध चारित्र होइ। इतन यथा ख्यात चारित्र स्पष्ट गुन होइ। आयु कर्म च्चय गएते अवगाहना अटल होइ। इतन अवगाहना सादि अनत स्थित होइ। नामि कर्म च्चय गए ते अमूर्तिक पनों जीव शुद्ध स्वरूप उपजे। गोत्र कर्मके च्चय गए ते अगुरूलघुपनो गुन उपजे। तातें जीव में न गुरुपनों होइ, न लघुपनों होइ। अतराय कर्म च्चय गए ते

अनन्त वल होइ। इतन अनत वीर्यपनाको गुन उपजै ॥५२

इति श्री समयसार नाटक विषै बालबोधरूप मोक्षद्वार सम्पूर्ण भयो ॥



सर्वविशुद्धि-द्वार

(१०)

प्रतिज्ञा ॥ दोहरा ॥

इति श्री नाटक ग्रथमें, कह्यौ मोख अधिकार ।
अव वरनौं सछेप सौं, सरव विसुद्धिद्वार ॥१॥

अर्थ—इति कहना सम्पूर्ण नाटक समयसारविषैंमोक्ष पदार्थको अधिकार कह्यौ। अव १० मों सर्वविशुद्धि द्वार सछेप सों वरनन करों हों ॥१॥

अथ शुद्धात्म दर्शन वर्नन। सवैया

करम को करता है भोगनिकौ

जाकी प्रभुतामें ऐसौ कथन अहित है।
जामें एक इन्द्री आदि पचधा कथन नाहि,
सदा निरदोष बंध मोखसों रहित है॥
ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाउ जाको,
लोक-व्यापी लोकातीत लोकमें महित है।
शुद्धवंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भरयो,
ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है॥२॥

अर्थ—इहा अब उपाधिरहित शुद्ध आत्मा को वर्नन करै है-कर्मको करतापनो, अरु सुख दुखको भोक्तापनो, ऐसो जो लोक व्यवहारमें कथन रहते कहावत है, सो नाही प्रभुतामें ईश्वरताई है। तामें अहित कारी है। अरु जाकी प्रभुताम ऐकेंद्री प्रमुख जो पाँच भेद को कहिवो, सोई अहितकारी है। सत्य नांही, सदा निर्दोष है, जाके निश्च य स्वभावमें बंध नांही, तामें मोच नाही, यातै बंध मोक्ष रहित है। सो एक द्रव्य कहा है? ऐसें प्रश्न परि कहै है—ए ज्ञान को समूह है, ज्ञान को पुंज है। जाको स्वभाव ज्ञान गम्य है, ज्ञान होतै जान्यो जाइ है, ये सब

ठौर व्यापि रह्यौ है। लोकातीत कहतें चौद लोकतें न्यारौ है अरु लोकमें महित कहतें पूजनीक उपादेय है। अनादि काल कौं याही भांति पाईयै, तातै जाकौं शुद्ध नय है। अरु शुद्ध चेतना के रस प्रदेशनि तें भर्यो है। ऐसैं ला हस है सो परम पुनीत साहित्य कहतें उत्कृष्ट शुद्धता महित है ॥२॥

पुन ॥ दोहरा ॥

जो निहचै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत।
सो चिद्रूप बनारसी, जगतमाहि जयवंत ॥३॥

अर्थ—जो निश्चय स्वरूपमें सदा निर्मल है। आदि अवस्था विषैं, अन्त अवस्था विषै एक रूप है। सोई चिद्रूप कहिये बनारसी दास स्तुति करै है— ऐसौ भगवान जगतमें जयवंत होऊ ॥३॥

अथ—जीव अकर्ता वर्नन ॥ चौपाई छंद ॥

जीव करम करता नहि ऐसे,
रस भोगता सुभाउ न जैसे।
मिथ्यामति सो करता होई,

गए अज्ञान अकरता सोई ॥४॥

अर्थ—अब जीव कौ अभोगता-पनो, अकरता पनौ, ठहरावैं हैं—जैसे जीव कर्मको कर्त्ता न कहिये, तैसैं रस कौ भोक्ता हू न कहिये। जब जीव मिथ्यामति हैं, तबतौ कर्त्ता व्यवत में मांचौ। अरु अज्ञान गए तैं सोई जीव अकर्तापनै है। ४॥

अथ—स्वभाव विभाव वर्नन। सवैया ३१ सा।

निहचै विचारत सुभाउ जाही आतमाको,
आतमीक धरम परम परगासना।
अतीत अनागत वरतमान-काल जाकौ,
केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना॥
सोई जीव ससार अवस्था माहि करमकौ,
करतासो दीसै लिये भरम उपासना।
यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्याचार,
'यहै भौ विकार यहै विवहार वासना॥५॥

अर्थ—अब आत्माको शुद्ध स्वभाव अरु आत्माकौ

विभाव ताको वर्नन करै है—निश्चय दृष्टि देखत जिन्हि आत्माको आत्मीक धर्म परमप्रकाशरूप ऐसौ सदा स्वभाव है। इतने निश्चय नयतै जिन्हिको परम प्रकाश स्वभाव है अरु निश्चय नय तैं अतीत, अनागत काल विषै, वर्तमान काल विषैं, लोकालोक भासना को करनहार केवल स्वरूप गुन है। सोई जीव ससार अवस्थामें भर्म उपासना लीयै, इतनें मिथ्यात्व ज्ञानकी सेवना लियें कर्मको कर्त्ता दीसै है। ऐसी मिथ्यात्व की सेवामें रहनां सो मोहको पसार है। याही व्यवहार वासना है ॥५॥

अथ—जीव अभोक्ता वर्नन। चौपई छद।

यथा जीव करता न कहावे,
तथा भोगता नाउ न पावे।
है भोगी मिथ्यामति माही,
गए मिथ्यात भोगता नांही ॥६

अर्थ—अब जीवकौ अभोक्तापनाके स्वरूपकौ वर्नन करै है-जैसे जीव कर्ता कहावै नही, तैसै भोक्ता नाम ■ धरावै नहीं। जैसै मिथ्यातमें कर्त्ता कहावै तैसै भोक्ता

हू मिथ्यातमे नाम धरावै । जैसें मिथ्यात गएतैं कर्ता नाहीं, तैसे मिथ्यात गएते भोगता हू नाहीं ॥६॥

अथ—भोगतापनो अभोगतापनोको लचन ॥सवैया ३१ सा

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजायबुद्धि,
सुतौ विषय भोगनिको भोगता कहायो है ।
समकिती जीव जोग भोगसों उदासी तातें,
सहज अभोगता गरथनिमें गायो है ॥
याही भांति वस्तुकी समाधि अवधारि बुध,
परभाव त्याग अपनो सुभाउ आयो है ।
निरविकल्प निरुपाधि आतम आराधि,
साधिजोग जुगति समाधिमें समायो है ॥७॥

अर्थ—अब भोक्तापनो को लचण अरु अभोक्तापनो को लचण स्वरूपै कहि दिखावै है—जगवासी जो अज्ञानी है, तीनौं काल विषै पर्याय बुद्धि है । इनके द्रव्य बुद्धि नाहीं । अरु मैं सुखी, मैं दुखी, जैसें पर्याय बुद्धि धारै है पै शुद्ध आत्म द्रव्य भिन्न पनैं न जानै है सो तौ अज्ञा-

वी जीव है सो मन वचन काय योगसों अरु विषय भोग सों उदासीनपनैं रहै है। अरु शुद्ध-आतम द्रव्य के अनुभवमें मगन है। तातैं समकिती कौ शास्त्रनिमें सहज अभोक्तापने ही गावे हैं। याही भाति बुध कहतें पडित है सौ वस्तुको समाधिका अवधारि कैं, इतनैं वस्तुकौ स्वरूप विचारिकैं यातें परभाव जानै ताकौं त्यागि करिकै अपनें सहज स्वभावमें आवै, तातैं निर्विकल्प कहनें सुखी दुखी इत्यादिक विकल्प विना निरुपाधि कहतां कर्म संयोग रूप उपाधि विना। ऐसौ आतमा को आराधि कै ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जोगकी जुगति कौं समाधि मैं समायौ सौ सहज स्वरूप में समायौ ॥७॥

अथ जीव अभोक्ता वर्नन ॥ सवया ॥

चिनमुद्राधारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन,
रतन भडारी अपहारी कर्म रोग का।
प्यारौ पडितनकौं हुस्यारौ मोक्ष मारग में,
न्यारो पुद्गलसौं उज्यारौ उपयोगकौ ॥

जानें निज पर तत्त्व रहे जगमें विरत्त,
गहे न ममत्त मन, वच, काय जोगकौं।
ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करमकौ,
करता न होइ भोगता न होइ भोगकौ ॥८

अर्थ—अब अभोक्ता जीवकी अवस्थाकौ वर्नन करै है—चिन्मुद्राधारी कहतें चेतना चिन्हको धरनहार । ध्रुव कर्म कहतें निश्चल स्वभाव जो ज्ञातापनौ, ताकौ अधिकारी ज्ञानादिक जो गुन है, तिहि रत्नकौ भंडार है । कामरूप रागकौ अपहारी कहत विनाशकारी है । पंडितनको प्यारा सो तत्वज्ञानीको वल्लभ भयौ, मोक्ष मार्गमें हुस्यारी कहतें सावधान भयौ । पुद्गलीक धर्मसो यारी रहन लागी। मति-श्रुतादि उपयोगकौ उजियारौ भयौ । अपनें पराये सब तत्त्व जानें । जगतमें विरक्त रहै । मनोयोग कौ, वचन योग कौ, कायजोगकौ ममत्व ग्रहै नही, तिहि कारन ते ज्ञानी जीव ज्ञानावरनी प्रमुख कर्मकौ कर्ता हू न होइ । अरु सुख, दुख भागकौ भोक्ता हू न होइ ॥८॥

॥ दोहरा ॥

निरभिलाष करनी करै, भोग अरुचि घट माहि
तातैं साधक सिद्ध सम, करता भोगता नाहि ६

अर्थ—निरभिलाष कहतें इच्छा विना क्रिया करै। अरु घट पिंडमें भोगकी रुचि नाही, तातें मुरुषिकी साधक पुरुष सिद्ध समान कह्यो। कर्त्ता हू नाही ? अरु भोक्ता हू नाही ॥६॥

अथ–अह बुद्धि वर्नन ॥ कवित्त छन्द ॥

ज्यों हिय-अंध विकल मिथ्यात धर,
मृषा सकल विकलप उपजावत।
गहि एकत पक्ष आतमको,
करता मानि अधोमुख धावत ॥
त्यों जिनमती दरव-चारित्री,
करि करनी करतार कहावत।
वंछित मुकति तथापि मूढमति,
विनु समकित भव पार न पावत ॥१०॥

अथ—अब अह-बुद्धितें कर्त्तापनौ होइ ऐसी कहै

है—जैसैं कोऊ हिये अन्ध पुरुष विकल मिथ्यात धारी जैते हिये में विकल्प उपजावे, त ते सब मृषा कहते झूठे विकल्प उपजावे है। क्रियावादी को एकांत पक्ष गहिके आत्माकौं कर्त्ता मानिये। अधोमुख कहते नीच गातकौं धाइ रह्यौ है। तैसें जो जिनमत्ती है, भाव चरित नाहीं है अरु द्रव्य चारित्री है, अनूकरनी करै है। अरु क्रिया करत शुभ क्रियाके कर्त्ता आप कहावे हैं, मुकतिकौ वाछै तथापि कहते तोहु मूढमती है। समकित विना भवकौ पार न पावति है ॥१०॥

चौपाई छंद।

चेतना अ क जीव लख लीन्हा,
पुदगल करम अचेतन चीन्हा।
वासी एक खेतके दोऊ,
जदपि तथापि मिलैं नहीं कोऊ ॥११॥

अर्थ—अब निश्चय स्वरूपकी वात कहै है—जीवको अ क कहते चिन्ह चेतना लखि लीज्यौ। पुदगल अरु कर्म ए दोनू अचेतन कहते जड चीन्हि लीज्यौ। खेत्र एक प्र-

चेतन ए दोनू एक खेतके गामी है, एकक्षेत्रावगाही है जो पै ऐसें है, तौहू कोऊ काहूसों मिलै नाही ॥११॥

दोहरा ।

निजनिज भाउ कियासहित,व्यापक व्यापक कोइ
करता पुद्गल कर्मको, जीव कहासौं होइ १२

अर्थ—पदार्थ है सा आपने भावकी क्रिया सहित रहै है— जामें व्याप रहिये सो वस्तु व्याप्य कहिये। अरु व्यापनहारो पदार्थ व्यापक कहिये, यातैं पुद्गल व्याप्य में जीवको व्यापकपनो नांहि। तातैं पुद्गलीक कर्मको कर्ता जीव कहातें होइ ? ॥१२॥

अथ कर्ता कथन। सवैया ३१।

जीव अरु पुग्गल करम रहै एक खेत,
जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कहिये।
लच्छन स्वरूप-गुन परजै प्रकृति भेद,
दुहों में अनादि ही की दुविधा ह्वै रही है॥
एतें परि भिन्नता न भासै जीव करमकी,
जोलों मिथ्या भाउ तोलों ओंधी वाउ ... है

ज्ञानके उदोत होतु ऐसी शुद्ध दृष्टि भई,
जीव कर्म पिंडको अकरतार सही है ॥१३॥

॥ दोहरा ॥

अर्थ - अब व्यवहारमें जैसें जीवकौं करतापनौं ठहराइये है सो कहै है - तिहि आकाश प्रदेशनि विषै पुद्गलीक कर्म अवगाह रहै है, तिहा आकाश प्रदेशनि विषैं जीव प्रदेश हु अवगाहि रहै है। ऐसे जीव अरु पुद्गल एक क्षेत्रमें रहै हैं। जो पै ऐसैं हैं तोहू चेतन में चेतन की सत्ता। अरु अचेतनमें जडताकी सत्ता ऐसी न्यारी-न्यारी सत्ता कहिये। लछन भेद करिकै, स्वरूप भेद करिकै गुन पर्याय भेद करिकै, प्रकृति भेद करिकै, ऐसे अनादि कालकी दुहौंन दुविधा हुइ रही है। एवं परि लछन प्रमुख की भिन्नता मिथ्या भाव ते जीवकर्मकी जौलो भासै नाही, तौलौं ओंधी साउव ही है। समकिती होतें समकितीकी ऐसे शुद्धदृष्टि भई, जो कर्मपिंडको अकरतार जीव सही है १३

॥ दोहरा ॥

एक वस्तु जैसी जुदै, तासौं मिलै न आन।
जीव अकरता कर्म सो, यह अनभौ परवान १

अर्थ—जो एक वस्तु जैसी भाति सोहै, तासों आन कहतें और स्वरूप वाली वस्तु मिलै नाही। याही तें जीव कर्मको अकर्त्ता है। यह तो अर्थ अनुभव प्रमान ही तें पाईये ॥१४॥

अथ—मूढ कर्त्ता यहु कथन। चौपाई-छन्द।

जे दुरमती विकल अज्ञानी,
जिन्हि सुरीति पररीति न जानी।
माया मगन भरमके भरता,
ते जिय भाव करमके करता ॥१५॥

अर्थ—अब मूढजीव है सो कर्मको कर्ता यहु कहै है जे जीव दुष्ट बुद्धि विकल है, अज्ञानी हैं, जिन्हि अपनी रीति पराई रीति न जानी है, माया जालमें मगनहैं। भरम के भरता कहतें धनी है तेई जीव भाव कर्मको कर्ता कहत करनहार हैं ॥१५॥

दोहरा।

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखें न जीव अजीव
तेई भावित कर्मके, करता होंहि सदीव ॥१६॥

अर्थ—जेई जीव मिथ्यामति अंधकारतैं जीव अजीव भिन्नपनौं न लखैं तेई जीव सदीव कहते सदाही भावित कर्म कर्ता हैं। आप आपनैं कर्मको स्वभाव, सोई भावित कर्म कहियै ॥१६॥

दोहरा।

जे अशुद्ध परिनति धरैं, करैं अहं परधान।
ते अशुद्ध परिनामके, करता होंइ अजान १७

अर्थ—जेई जीव अशुद्ध परिनतिकौ धरैं हैं, अशुद्ध परिनाम धारैं हैं, सब क्रियामें अहं-कर्त्ता ऐसौ प्रमानकरैं हैं, तेई जीव अज्ञान थकै अशुद्ध परिनामनिके कर्त्ता होय हैं, ॥१७।

शिष्यको प्रश्न। दोहरा।

शिष्य कहै प्रभु तुम कह्यौ, दुविध कर्मको रूप,
दर्व कर्म पुद्गलमई, भाव-कर्म चिद्रूप ॥१८॥

अर्थ—अब शिष्य प्रश्न करैं हैं। शिष्य कहै है—हे प्रभु! तुम कह्यौ कर्मस्वरूप दोइ प्रकारसो है एकतौ पुद्गल मई, सो पुद्गल पिंड रूप द्रव्य कर्म है, दूसरौ भाव कर्म

है सो चिद्रूप कहत चेतना विकाररूप है ॥१८॥

दोहरा ।

करता दरवित कर्मको, जीव न होइ त्रिकाल ।
अब भावित कर्म तुम्ह, कहो कोनकी चाल १९

अर्थ स्वामी ! और तुम ऐसें क्यो जो द्रव्य कर्मको करनहारो तीनों काल विषैं जीव नाही है । हे स्वामी ! तो ए भावित कर्म है सो तुम कौनकी चाल कहतु हो ?॥१९।

दोहरा ।

करता याको कौन है, कौन करै फल भोग ।
कै पुद्गलकै आतमा कै दुहोंको संयोग ॥२०

अर्थ—या भावित कर्मको कर्ता कौन है ! और या कर्म के फलको भोग कौन करै है ? पुद्गल कर्ता भोक्ता है, कै आत्मा कर्ता भोक्ता है, कै पुद्गल आत्माको संयोग कर्ता भोक्ता है ? ॥ २० ॥

अथ—गुरु उत्तर कथन । दोहरा ।

क्रिया एक करता युगल, यों न जिनागम माहि
अथवा करनी औरकी, और करै यों नाहि । ~

सहजैं जीव ही भोगवे ॥ २५ ॥

अथ—एकांती वादी वचन ॥ सवैया ३१ सा ॥

केई मूढ विकल एकन्तपच्छ गहैं कहैं
आतमा अकरतार पूरन परम है ।
तिन्हिसौं जु कोऊ कहैं जीउ करतार है तासौं,
फेरि कहैं करमको करता करम है ॥
ऐसैं मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव,
तिन्हिकैं हियै अनादि मोहको भरम है ।
तिन्हिको मिथ्यात दूरि करिवेको कहै गुरु,
स्यादवाद परवान आतम धरम है ॥२६॥

अर्थ—अब साख्यमतवारे एकात वादीको वर्नन करे है–कोई मूढ मोही जीव, ज्ञान करि विकल एकात पच्छ गहिके ऐसै कहै है—ए आतमा अकर्ता है, परम पूर्ण है । तिहां एकात—वादी सों जो काऊ ऐसो कहै 'आतमा कर्ता है' तासों फेरि साख्यमती प्रमुख एकांतवादी कहै है, कर्म को कर्ता कर्म ही है । ऐसैं मिथ्यात में

मगन मिथ्याती जीव मूढ़घाती हूं है, व घात करै है। जिन्हके हिये में अनादि कालतें मोह भर्म भरि रह्यो है, तिन्ह मिथ्यामतीके मिथ्यात्व दूरि करिवे कों स्याद-वाद रूप जो आत्मधर्म है सो प्रमान करिकें कहै है॥२६॥

अथ—स्याद्वाद कथन। दोहरा।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान।
नहिं कर्ता नहि भोगता, निहचै सम्यक्वान २७

अर्थ—अब जैसें स्याद्वादमें वस्तु स्वरूप है तैसें कहै हैं—मिथ्यात में मगन अजान थको तौ चेतन कर्ता है भोक्ता है अरु समकिती जीव निश्चय नयतें कर्ता हू नाही भोक्ता हू नाही। २७।

अथ स्याद्वाद उपदेश कथन। सवैया ३१ सा।

जैसें सांख्यमती कहै अलख अकरता है,
सर्वथा प्रकार करता न होइ कबहीं।
तैसें जिनमती गुरुमुख एक पक्ष सुन,
याहि भांति मानै सो एकंत तजो ~

जौलौं दुरमति तौलौं करमको करतार,
है सुमति सदा अकरतार कह्यो सबही।
जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जबही सो
सो तो जगजालसौं निरालौ भयौ तबही २८

अर्थ—अब याही बात स्याद्वाद करी उपदेश करि दिढ़ करै है—जैसे सांख्यमती अपने मतमें ऐसी प्ररूपना करै जो अलख पुरुष है सो सर्वथा प्रकार करिके अकर्ता है वे कब हीं कर्ता होइ नाही। अरु सत्व रज तमो गुण रूप प्रकृति कर्ता है। ऐसी भांति ज्यौं सांख्यमती कहै तैसी भांति कोऊ जिनमती हू गुरु के मुखतैं निश्चय नय की एक पच सुनिके याही भांति मानै। इनतैं जीव अकर्ता मानै सो अवतौ एकांत पच छांडो। श्री जिनेश्वर के स्याद्वाद जैसैं ठहराउ है, जौलौ दुरमती, दुष्टबुद्धि मिथ्यामती, अहंबुद्धिमें है तौलौं जीव कर्मको कर्ता है। अरु सुमति आये सदा अकर्ता कह्यौ। जाके घटमें अपना ज्ञायक स्वभाव जब ही जाग्यौ, सो तौ जगत जाल सौं तब ही निरालौ ही भयौ। अर्द्ध—पुद्गल परावर्तन मांहि ससार मानि राख्यौं सोनिरालो ही भयो।

अथ—बौद्धमती वर्नन । दोहरा ।

बौध छिनुकवादी कहै, छिनभंगुर तन माहि ।
प्रथमसमय जो जीव है, दुतियसमय सो नाहि २९

अर्थ—अब औरो एकांतवादी बौद्धमतीकी बुद्धिको वर्नन करै है—बौद्ध है सो क्षणिकवादी है, अरु ऐसें कहै है—शरीरमें जो कोऊ पदार्थ है सो क्षणभंगुर है। अब याको अर्थ कहै है। जो कोऊ जीव पदार्थ शरीरमें प्रथम समय है सो दूसरे समयमें न पाईये, यातें सब क्षणभंगुर है ॥२९॥

दोहरा ।

तातै मेरे मत विषैं, करे कर्म जो कोइ ।
सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ ।३०।

अर्थ—औरौ बौद्धही कहै है—तातें मेरे मतमें ऐसी श्रद्धा ठहरी है जो कोऊ कर्मको करै है सो तौ कर्मको भोगता नाहीं । क्षणभंगुरपनातें भोक्ता और ही होइ ॥३०।

अथ—मत मंडन उपदेश दोहरा ।

एक एकंत मिथ्यात पख, दूरि करनके काज

चिद्विलास अविचल कथा, भाखै श्री जिनराज

अर्थ—अब एकांत वादी, बौद्धमतीके मत खडनेकौ उपदेश आर भै है-- यहु जो एकांत क्षण भंगुरपनौ सो मिथ्या पक्ष है, ताके दूरि करिवे को चिद्विलास अविचल कथा कहतें जीवकैं अचलपनाकी बात श्री जिनवर देव कहै है ॥३१॥

अथ—दृष्टांत कथन । दोहा ।

बालापन काहू पुरुष, देख्यौ पुर इक कोइ ।
तरुण भयो फिरकै लख्यौ, कहै नगर वह सोइ ३२

अर्थ—अचलपनौ समझाइनकौ दृष्टान्त कहै है--काहू पुरुषन बालपनैं कोऊ नगर देख्यौ है, अरु सोई तरुण ज्ञान भयो तब तरुनपनामें फिर वह नगर देख्यौ, लख्यौ, तब कहै-- यहु तौ नगर जो बालपनें देख्यौ है ॥३२॥

दुहोपनमें एक थो, तो तिन्हि सुमिरिन कीय
पुरुषको अनुभयो, और न जानें जीय ३३ .

अर्थ—अब इहां जीवकौ अचलपनाकौ सबध दिखा-

वै है—जौ दुहौं पनमें रहतें दुहौं कालमें जीव एकही थो तो तिहि पुरुष देख्या नगरको सुमरन कीन्हां जो यहु सत्य है, और पुरुषको अनुभयौ कहतें भोगव्यौ कार्य और पुरुष न जानें ॥३३॥

दोहरा।

जब यहु वचन प्रकटपनें, सुन्यौ जैनमत शुद्ध।
तब एकांतवादी पुरुष, जैन भयौ प्रतिबुद्ध ॥३४

अर्थ—जब यहु प्रवचन प्रगटपनें सुन्यौ। अरु शुद्धमत जैनको सुन्यौ, तब एकातवादी पुरुष प्रति बूझिकैं जैन भयौ, बौद्धमत छाड्यौ ॥३४॥

अथ—बौद्धमती सर्दहना कथन। सवैया ३१।

एक परजाय एक समेमें विनसि जाय,
दूजी परजाय दूजी समै उपजति है।
ताकौ छल पकरिकैं बौध कहैं समै समैं,
नवौ जीव उपजै पुरातनकी छिती है॥
तातें मानैं करमको करता है और जीव,
भोगता है और ताके हिये ऐसी मती है।

मोहके मरोरि सों भरम को न छोर पावै,
धावै चिहो ओर ज्यो बढावै जाल मकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठको झरोखैं झूली,
फूली फिरै ममता जजीरनि सों जकरी ॥२८॥

अर्थ—अब दुर्बुद्धिको विचार कहै है–कायासौं प्रीति विचारी हारि जीति करिकै मायाहीमें गढि रहै, हठ रीति लीयै रहै, जैसें हारिल पंखी अपने पाउन लकरी पकरी ही राखै, लीन्ही न छाडै । तैसै औरहू दृष्टांत कहै–जैसें कोऊ चोर चंगुन पंथ देखरि गाढकों मढिल मदिर पारि चलावै, तिहि नैधका नारि करि कै मोह भूमीको गढि रहै, तहां अपनें पाइ गाढे पै पकरी टेक न छाडै । मोह कर्म की मरोरि लगी, तातैं भरमकी छोर न पावै । इतनैं भ्रम न छोडे चिहोओर धावै । जैसी मकरी जाल बढावती च्यारो तरफ दौरै । एसी दुर्बुद्धि भूलिही फिरै, फूली फाली फिरै, ममता रूप जजीरनितैं जकरी रहै, झूठकैं झरोखेझूली रहै ।

पुन । सवैया ३१ सा ।

बात सुनि चौंकि उठै बातहीसों भौंकि उठै,

वातसौं नरम होइ वातहीसौं अकरी ।
निंदा करै साधुकी प्रशंसा करै हिंसककी,
साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी ॥
मोख न सुहाइ दोष देखै तहां पैठि जाइ,
कालसौं डराइ जैसैं नाहरसौं बकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठके झरोखै झूली,
फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी ॥३८

अर्थ—आगे ही याही बात कहैं—कोऊ अध्यात्मकी बात कहै सो सुनिकै चाकि उठै, जो यह कहा बात है। अरु याही अध्यात्म बातसौं भौंकि उठै । कदायद (कलह) करन उठै । अरु वानै मन रुखती बातसौं नरम होइ रहै । मन मानी बात बिना आकी प्रकृति राखै । मोक्षमार्गके साधक जो है ताकी निन्दा करै । अरु जो हिंसातै धर्म कहै है ताकी प्रशंसा करै, अपनी प्रभुता, तासौं साता सुख मानैं असाता उपजी कौ फक्करी करि मानैं । मोक्षकै सुहावै नाही । जहाँ कोऊ दोष देखै तामैं चतुराईके अभिमान सौं पैठि जाइ । काल मृत्युसौं ऐसो डरै जैसैं नाहरसौं बकरी

निरजोग शुद्ध परजोगसों अशुद्ध है।
वेद-पाठी ब्रह्म कहे मीमासक कर्म कहे,
शिवमती शिव कहे बाध कहे वुद्ध हैं॥
जैना कहे जिन न्यायवादी करतार कहे,
छहों दरसनमे वचनको विरुद्ध है।
वस्तुको स्वरूप पहिचानें माई परवीन,
वचनके भेद भेद मानें सोई शुद्ध है।४३।

अर्थ—अब न्यारे न्यारे मतकी व्यवस्था कहे है—जीव वस्तु एक है अरु याके गुन अनेक है, रूप अनेक है नाम अनेक हैं। निरजोग कहतें पराया जाग विना अपनें स्वभावमें रह्यौ शुद्ध है। अरु पराए जाग सों अशुद्ध है। वेदपाठी प्रभाकर याकों ब्रह्म कहै। मीमासक जमिनि-याकौ कर्म कहै है। शिवमती मो वैशेषिक याकौ शिव कहै है। बौद्धमती याकों बुद्ध कहै है। जैनी याका जिन कहै। न्यायवादी नैयायिक याकौं कर्त्ता कहै है। ऐसैं छहों दर्शनमें शुद्ध जीवके कहिवैमें वचनकौ विरोध है। ए ही छहों दर्शनमें वस्तुकौ स्वरूप पहिचानै सोइ प्रवीन कहावै। अर वचनके भेदतें समभिरूढ नय लियैं वस्तुकौ

भेद प्रवीन मानैं मोई शुद्ध बात है ॥ ४३ ॥

अथ-मत स्थापन कथन । सवैया ३१ सा ।

वेदपाठी ब्रह्म मांनि निहचै स्वरूप गहै,
मीमासक कर्म मानैं उदै में रहतु है ।
बौद्धमती बुद्धि मानि सूक्षम स्वभाव साधै,
शिवमती शिवरूप कालकौ कहतु है ॥
न्यायग्रथके पढैया थापैं करतार रूप,
उद्दिम उदीर उर आनद लहतु है ।
पांचौ दरसनी तेतौ पोषैं एक एक अंग,
जैनी जिनपथी सरवगी नैं गहतु है ।४४।

अर्थ — अब छहों दर्शनके मत स्थापना करैं हैं— वेदपाठी कहतें वेदांती सो जीव वस्तुका ब्रह्म मानिकै निश्चै स्वरूपका ग्रहै, तातैं निश्चै एक लक्षण तैं अद्वैत मत ग्रहै है मीमासक सो यज्ञके करनहारे जीवका कर्म रूप मानै है, तातैं उदय रूप भयौ जो पूर्व कर्म सस्कार ताकौं ग्रहै । बौद्धमती जीवकौं बुद्ध मानिकै क्षण-भंगुरपनातैं सूक्ष्म—

स्वभाव साधै है, तातै वस्तु स्वभाव ही को कर्ता मानै। शिवमती वैशेषिक जीवको कालरूपी मानिकै शिव रूप कर्ता कहै है। न्याय ग्रथके पढनहारे इतने प्रमाणादिक १६ पदार्थ मानन हारे शुद्ध जीवका ही कर्ता थापिके उद्यम की उदीरणामें हिये आनंद पाइ लह लहै है। ऐसैं जो पाचौं दर्शनी है तेतो वस्तु स्वभावादिक पाचौंनयके एक एक अग पोषै हैं। एकात पक्ष ग्रहै है। अरु जो जिन मार्गी जैन वहावै है सोतो सर्वांगी सर्व नय ग्रहै है। ४४

अथ–मतस्थापना एकत्वीकरन । सवैया ३१ सा।

निहचै अभेद अग उदै गुनकी तरग,
उद्दिम की रीति लियें उद्धता सकति है।
परजाय रूप को प्रवान सूक्षम सुभाउ,
काल-कोसी ढाल परिनाम चक्रगति है॥
याही भाति आतम दरवके अनेक अग,
एक मानै एक को न मानै सो कुमति है।
एक डारि एकमे अनेक खोजै सो सुबुद्धि,
खोजी जीवै वादी मरै साची कहावति है।४५।

अर्थ—अब ज्यों मत स्थापना में न्यारी न्यारी बुद्धि कही सो सब एकही दिखावे है—सब जीव में लक्षण भेद नहीं, ऐसे निश्चय अंग साचो। तरतम जोगे गुनकी तरंग उठि रही है याते उदै अंग साँचो। अरु जीवकी उद्धति सगति है तिहि तिहि विषै प्रवर्ते है तातै उद्यम अंगतें करतारनाहू साचो। अरु पर्याय क्षण क्षणमें न्यारे न्यारे है, ताके रूपका प्रमान सूक्ष्म है तातै बौद्ध सूक्ष्म स्वभाव साधै है, सोउ साचो। अरु परिनाम की गति है सो फिरते चक्र जैसी गति है, सो काल द्रव्यकी ढालतै है, तातें इहा काल हू कर्त्ता साचो। याही भांति आतम द्रव्य अनेक अंगते पाइये। या अंगनिमें एक अंग मानें अरु एक अंग न मानें सोइ कुमति कहावें। एकात पक्ष छांडिके एक वस्तुमें अनेक अंग खोजे सोई सुबुद्धि कहिये। खाजी जीवें वादी मरे या कहावति साची है।

अथ, स्याद्वाद स्वरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

एकमें अनेक है अनेक हीमें एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है।
करता अकरता है भोगता अभोगता

उपजै न उपजति मूए न मरतु है॥
बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछु,
भेखको न भाजन पै भेखसो धरतु है।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतन की संगति सों,
उलट पलट नट बाजीसी करतु है। ४६।

अर्थ—अब जैसें स्याद्वादको स्वरूप है सो कहै है— एक द्रव्यमें अनेक पर्याय है अरु अनेक पर्यायमें एक द्रव्य है, याते हर कोऊ वस्तु यहु एक ही है अथवा अनेक ही है, ऐसो कछु कह्यो न परै है। व्यवहारतें कर्त्ता है, निश्चयतें अकर्त्ता है। व्यवहारतें भोक्ता है निश्चयतें अभोक्ता है। व्यवहारतें उपजतु है, निश्चयतें नाही उपजतु व्यवहारतें मूआ, निश्चयतें न मूआ। व्यवहारमें बोलै है विचारै है, निश्चय तें कछु बोलै नहीं, विचारै नहीं अविकल्पी है। निश्चयतें भेषको भाजन कहते स्थानक नाही, व्यवहार तें भेषको धारनहार है। ऐसो चेतनावत ईश्वर है सो अचेतन पुद्गलकी संगति सौं उलट पलट ह्वै रह्यो है। नट की सी बाजी करि रह्यो है। ४६।

अथ अनुभव व्यवस्था कथन । दोहरा ।

नरवाजी विकलप दशा, नाही अनुभो जोग ।
केवल अनुभो करन को, निरविकलप उपयोग ४७

अर्थ—अब अनुभवम आत्म द्रव्य जैसी अवस्था पाईये सो कहै है—एजु पूर्व उलट पलट आत्माक नट की सी वाजी कही सा तौ विरुल दशा है। यह दशा अनुभव मे योग्य नाही। नि केवल अनुभव करन कौं निर्विकल्प ही उपयोग देखौ सो सत्य है ॥ ४७ ॥

अथ—अनुभव दृष्टान्त कथन (सवैया ३१ सा।

जैसैं कोऊ चतुर स वारी है मुकत माल,
माला की क्रियामे नाना भातिको विनान है।
क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वालो,
मोतिनिकी सोभामें मगन सुखवान है ॥
तैसे न करै न भुजै अथवा करै सु भुजै,
और करै और भुजै सब नय प्रवान है।
यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग

निरविकलप अनुभौ अमृत पान है ॥४८॥

अर्थ—अब अनुभव विषै निर्विकल्प उपयोग दर्शावनेकौ दृष्टांत कहै है–जैसे काहू चतुर पुरुष मोतीयन की माला संवारिके बनाई, उनि माला की क्रिया में भांति भांति को विज्ञान रहै। अब ता माला कौं पहिरन वाला उहि माला के क्रिया कौ विकल्प न देखें अरु मोतीयनि की सोभा में मगन हुई जाइ। अरु सुख पावै। जैसे मोतीयनि की माला में अनेक विज्ञान है। तैसे द्रव्य हू अनेक विकल्प है जो आत्मा कर्त्ता नाही, भोक्ता नांही, अथवा कर्त्ता हू है, भोक्ता हू है। अथवा राग द्वेष करन हारे और है, अरु भोगनहारो और, ए सब नय प्रमान है। जो पै ए सब प्रमान है। तोहू ए विकल्प विधि त्याग योग्य है अरु अनुभव है सो निरविकल्प है, अमृत समान उपादेय है ॥४८॥

अथ–कर्त्ता कथन ॥दोहरा॥

दरब करम करता अलख, यहु व्यवहार कहाउ।

निहचै जो जैसो ...

अर्थ—अब स्याद्वादी आत्मा कौं कर्म को कर्त्ता जिहि नय सौं मानै सौ कहै है—पुद्गल द्रव्य रूप कर्मकौ कर्त्ता अलक्ष्य पुरुष आत्मा है, यह व्यवहार में कहनो बंन है। निश्चय नय में यहु बात है, जैसौ जो द्रव्य है ताकौ भाव स्वरूप तैसो है। यातैं पुद्गल द्रव्य क्रिया पुद्गल ही त होइ ।४६।

अथ–विपरीत बुद्धि कथन। सवैया ३१ सा।

ज्ञान को सहज ज्ञेयाकार रूप परिनवें,
यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञान रूप कह्यौ है।
ज्ञेय ज्ञेय रूप यौं अनादि ही की मरजाद,
काहू वस्तु काहूको सुभाउ नहीं गह्यो है॥
ऐतैं पर कोऊ मिथ्यामति कहै ज्ञेयाकार,
प्रतिभासनिसो ज्ञान अशुद्ध ह्वै रह्यौ है।
याही दुरबुद्धि सौं विकल भयो डोलति है,
समुझै न धरम यौं भरम माहि वह्यौ है ।५०।

अर्थ—अब जैसे बुद्धि में विपरीतिपनौं भासै है सौ कहै है–ज्ञान कौ ? सहज स्वभाव है  ज्ञेय

कहतें जानिवा याग्य पदार्थ है ताकौ जो आकार है तिहि रूप आत्मा को ज्ञान परिनमैं। जद्यपि कहतें तौ ज्ञान है सो ज्ञान रूप ही कहावै, पै ज्ञेय रूप न कहावै, अरु जा ज्ञेय पदार्थ है सो ज्ञान में परिणयो है, ताहू ज्ञेय रूप ही कहावें। यहु अनादि काल की मर्यादा है। कोऊ वस्तु और काहू का स्वभाव ग्रहै नाहीं, ऐसी तौ मर्यादा यहु बात है। एतै परि कोऊ वैशिपिक प्रमुख मिथ्यामति कहै है, ज्ञेय पदार्थ के आकार प्रतिभासन सा ज्ञान पदार्थ अशुद्ध ह्व रह्यौ है, अब यह अशुद्धपनौ मिटैगौ तब ही मुक्ति होइगी। या ही दुष्ट बुद्धि सों मिथ्यात्व मोह सों विकल भयौ, इत उत मालि रह्यौ है। धम कहियैं वस्तु को स्वभाव ताको ए समझे नाहीं। तातैं भर्म में पड्यौ फिरै है।५०।

अथ—व्यापक कथन। चौपाई छंद।

सकल वस्तु जग में असहाई,
वस्तु वस्तु सों मिलै न काई।
जीव वस्तु जाने जग जेती,
सोऊ भिन्न रहै सब सेती। ५१।

अर्थ—अब आपने स्वभाव में सब पदार्थ व्यापि रह हैं कहै है-जगत में समस्त भाव असहाय पने वर्ते है, कोऊ काहू की सहाई नाही, यो ही अब प्रगटपने कहै है—जो वस्तु है सो और विलच्छन वस्तु सों काई न मिलै। जीव है सो जगतमें जती वस्तु है तेती सब जानै है इतने सब ज्ञेय वस्तु जीव के ज्ञान में परिनमै है, तौहू सोऊ जीव सब वस्तुतैं भिन्न ही रहै है। अपने ए न्यारे लछन तें। ५१।

अथ - व्यवहार निश्चय कथन। दोहरा।

करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोइ।
यहु कथनी विवहार की, वस्तु स्वरूप न होइ ५२

अर्थ—अब व्यवहार की कहावति दिखावै है-कोऊ अज्ञानी जीव है सो कर्म कौ करै हू है, अरु या कर्म कौ फल हू भोगवै है, या कहावति व्यवहार में है, पैं जैसैं वस्तु कौ स्वरूप है तेसी कहावति नही है। ५२।

अथ—विपरीति बुद्धि वर्नन। कवित्त छंद।

ज्ञेयाकार ज्ञान की परिनति,

वस्तु स्वभाव मिटै नहिं कोई,

तातैं द्वेष करै सठ यों ही । ५५ ।

अर्थ—ज्ञेय वस्तुको आकार प्रतिभासै है सो ज्ञानको मल मानै है, या मलका नाश करनकी उद्दिम ठानैं, उपाय करै । जिहि वस्तुको जा जैसो स्वभाव है सो तो क्यों हीन मिटै है तातैं सठ कहतें मूर्ख लोक या ही झूठो द्वेष करै है । ५५ ।

। दोहरा ।

मूढ मरम जानैं नहीं, गहैं एकंत कु पक्ष ।
स्यादवाद सकग नेमैं, मानैं दक्ष प्रत्यक्ष । ५६ ।

अर्थ—मूर्ख है सो मर्मकी बात न बूझै, अरु एकांत कुपक्ष ही ग्रहैं । अरु दक्ष कहतैं डाहो पुरुष है सो स्याद-वाद मतके आश्रय तें सर्व गमकी प्रत्यक्ष पनैं मानैं । इतनैं निराकार साकार सब नय मानैं । ५६ ।

अथ—सम्यक्त्वकी स्तुति । दोहरा

शुद्ध द्रव्य अनुभौ करै, शुद्ध द्रव्य घट माहि ।
तातैं सम्यक्वंत नर, सहज उच्छेदक नाहि ।५७।

अर्थ—अब स्याद्वाद लियें जो सम्यक्ती है ताकी स्तुति करें है—सम्यक्ती के हियेमें जो अनुभव है, सोई द्रव्यकी शुद्ध करें हैं। हियेमें वस्तु स्वभाव जानिवेसें शुद्धदृष्टि, है तातें जो सम्यक्त्वत पुरुष है सो सहज स्वभाव को उच्छेदक होतु नाही। इतन सहज स्वभावको उच्छेद न मानें। ५७।

अथ—अव्यापक द्रव्य कथन। सवैया ३१ सा।

जैसें चन्द्र किरन प्रगटि भूमिसेति करें,
भूम तीन होति सदा जोतिसी रहति है।
तैसें ज्ञांन सकति प्रकशै हेय उपादय,
ज्ञेयाकार दीसै पें न ज्ञेयको गहति है॥
शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनवें,
सत्ता परिवानि मानि ढाहे न ढहति है।
सो तो और रुप कबहों न होय सरवथा,
निहचे अनादि जिनवानी यो कहति है॥५८॥

अर्थ—अब पर वस्तुमें पर द्रव्यको अव्यापक पनो दृष्टांत करि दिखावें है जैसें सरद पूर्णिमामीके

समय चंद्रमाके किरन प्रकाश करिके भूमिको श्वेत रूप करैं है पै जा चन्द्रमाकी ज्योति भूमि सी होतु नाहि, सदा ज्योति रूप ही रहे तैसें ज्ञानकी प्रकृति ऐसी है जो हेय उपादेय वस्तुरों प्रकाशैं तब तौं ज्ञान ज्ञेयके आकार दीसें है, पै ज्ञेयके वस्तुको स्वरूप पनै ग्रहे नाही। शुद्ध वस्तु है, सो शुद्ध पर्याय रूप पनैंही परिणमें। अरु जितनी अपनी सत्ता है जितन मे वस्तु को स्वरूप पनें है। जितन प्रवान माही शुद्ध पर्यायको परिणमनिम पै यहु स्वरूप द्वार यो न है है। सा तो शुद्ध वस्तु काहुकी सगतिसो सर्वथा प्रकारें कब हो और रूप न होय। निश्चय मे ए बात है अनादि कालतें ऐसो जिन बानी कहतै सिद्धान्त बानी वहा कहे है॥ ५८॥

अथ—यथा स्वरूप कथन ॥सवैया २३ सा॥

राग विरोध उदै तवलों जवलों,
यहु जीव मृषा-मग धावै।
ज्ञान जग्यो जव चेतन को तव,
कर्म-दशा पर-रूप कहावै॥

कर्म विलेछि करै अनुभौ तहा,
मोह मिथ्यात प्रवेश न पावै ।
मोह गये उपजें सुध-केवल,
सिद्ध भयो जग माहि न आवै ॥५६॥

अर्थ—अब जैसी वस्तु की जैसो स्वरूप है सोई प्रगटपनै कहै है—जौलों यहु जीव मिथ्यात मारग में दौरै, धावै है, तौलों रागद्वेष की उदय है । तातै सत्यमार्ग पाइ न सकै । जबतैं चेतन शुद्ध वस्तुकी ग्रान न आग्यौ, तबतौ कर्म दशा रूप कहावै । ग्रात्मा ते भिन्न लखावै । जहां चेतन को अनुभव कहतें सत्यार्थपनें जानिवी है सो कर्मका विलक्षण करै है । इतने भेदविज्ञानतें, भिन्न भिन्न लक्षणपनै जानै है । तहा मोहरूपी मिथ्यात प्रवेशक मोह के गए तैं सुध समधि में केवलज्ञान उपजै । तबतौ सिद्ध भयो । फेरि जगत मं न आवै ॥५६॥

अथ-अनुक्रमस्वरूप वद्धमानता कथन । छप्पय-छन्द

जीव कर्म सयोग, सहज मिथ्यात्वरूप धर,
रागद्वेष परिनति प्रभाव, जानें न आप पर-।

तम मिथ्यात मिटगयौ, भयो समकित उदोतससि,
रागद्वेष कछु वस्तु नाहि, छिनु माहि गए नसि ॥
अनुभौ अभ्यासि सुखरासि रमि,
भयो निपुन तारन तरन ।
पूरन प्रकाश निहचल निरखि,
बानारसि वंदत चरन ॥६०॥

अर्थ—अब जैसे अनुक्रम वस्तु स्वरूपको प्रगटपनै स्वभाव उद्योत होइ सो कहै है—अनादि कालको जीवकै कर्मको संयोग है तातैं सहज सनबंध मिथ्यात रूप धारी जीव है। अर जीव कबहीं रागमें परनयौ रहै तातैं ए राग द्वेषकी परिणति प्रभावतैं आपा पर पनो न जानै। ऐसे म कबहीं मिथ्यात रूप तम कहिते अंधेरो मो मिटि गयौ तहां समकित रूप ससि कहतै चन्द्रमा की उद्योत होते ए खबरि पाई, एजु राग द्वेष है सो कछु वस्तु नाही। इतनें भली वस्तु नाही। तब तो याके अनादर तैं राग द्वेष छण में भाग गए। जब या पीछें, अपनो अनुभवको अभ्यास ल्यायौ। तबतैं सहज सुखराशि सुख

रासिमें रमि रह्यौ। ऐसी भांति निपुन भयौ। सर्व ज्ञानी भयौ तारन तारन समर्थ प्रभु भयौ। अब ए पूर्ण प्रकाश अनंत काललों निश्चल भयौ, ताको ध्याननयनतें निरखिके बनारसीदास वा प्रभुके चरण वंदे है।६०॥

अथ—प्रश्नोत्तर कथन सवैया ३१ सा॥

कोऊ शिष्य कहे स्वामी राग द्वेष परिनाम,
ताको मूल प्रेरक कहहु तुम्ह कौन है।
पुग्गल करम जोग किधौ इन्द्रिनीको भोग,
किधौ परिजन किधो धन किधौ भौन है॥
गुरु कहै छहो दर्व अपने अपने रूप,
सबनिको सदा असहाई परिनौन है।
काऊ दर्व काहूको न प्रेरक कदाचि तातें,
रागद्वेष मोह मृषा मदिरा अचौन है॥६१॥

अर्थ—अब या राग द्वेषके हेतुकौ प्रश्न शिष्य करै है, गुरु उत्तर कहै—कोऊ शिष्य आचार्य को विनय करि कहै, अहो स्वामी! एजु आतमा कू राग द्वेष परिनाम उपजै है सा या राग द्वेष परिनामनिको निश्चय

प्रेरक तुम्ह कौनसा कहा था ?, आत्माकू पुद्गलीक कर्मको जोग है सोउ कहा हेतु है कि अथवा, कहा पंच इंद्रियको भोग है सोउ राग द्वेष परिनामनि को हेतु है। कि अथवा कहा, इहां धन ही हेतु है। अथवा कहा, इहां भौन मंदिर इहां हेतु है। अब गुरु कहै है—अहा शिष्य! या परिनामान विषे तू पुद्गल संबंधी हेतु मानूं है सो तो झूठै। जु छहों द्रव्य हैं सो अपनें अपने रूप जीवा, अपनी सत्ताये है। सब ही द्रव्यको परिणमन सदा असहाई है तहां हेतुपनो मिथ्यात कर्म अथवा मोहरूप मदिरा को अचौन करणो पीवणा हेतुपनो हैं ॥६१॥

अथ—मूर्ख प्रश्न गुरु उत्तर कथन ॥दोहरा॥

कोऊ मूरख यों कहै, राग द्वेष परिनाम।
पुग्गलकी जोरावरी, वरतै आतमराम ॥६२॥

अर्थ—अब कोऊ मूरख रागद्वेष परिनामनिको प्रेरक पुद्गलको वन है कहै है ताको उत्तर गुरु कहै—कोउ मूरख लोग ऐसें कहै है, एजु राग द्वेष परिनाम है सोतो आत्माराम के विषे पुद्गल की जोरावरी है। इतनं यहु पुद्गलको जोर देखिये है ॥६२॥

दोहरा ।

ज्यौं ज्यौं पुग्गल वल करैं, धरि धरि कर्म ज भेप ।
राग द्वेप कौ परिनमन, त्यौं त्यौं होइ विशेप ६३

अर्थ—ज्यों ज्यों कर्मज भेप धारिके, इतनौ कर्म वर्गना रूप धारिकै पुद्गल द्रव्य अपनो वल विस्तार करै, त्यौं त्यौं राग द्वेपकौ परिनाम विशेप रूप होइ सो आत्मा विपै दीसै । ऐसै सांख्यमती है । ६३ ।

दोहरा ।

यह ही जो विपरीत पख, गहै सरदहै कोइ ।
सो नर रागविरोध सो, कवहो भिन्न न होइ ६४

अर्थ—ऐसी भांति कोऊ सांख्यमती सरीखौ पुरुप विपरीत पक्ष ग्रहे है, अरु सरदहै है सो तौ पुरुप रागद्वेप सो ऐसी सरधातें भिन्न कवहो होइ नाही ।६४।

दोहरा ।

सु गुरु कहैं जगमे रहै, पुग्गल संग सदीव ।
सहज शुद्ध परिनमनकौ, औसर लहै न

—अब सद् गुरु कहै है—अरे प्रानी

पुद्गल के सयोग जीव सदैव रहै हैं, तातें सहज शुद्ध परिनामनि कौ जीव औसर न पावै। इतनैं अपनो शुद्ध परिनाम ग्रह सकै नहीं। ६५।

दोहरा।

तातें चिद्भावनि विषै, समरथ चेतन राव।
राग विरोध मिथ्यातमे, सम्यक में शिवराव ६६

अर्थ—तातें चेतन राय है सो चिद् भाव विषै कहतां ज्ञान भाव विषे समर्थ हैं। इतनै ज्ञानपनाका कार्य में समर्थ है। अरु मिथ्यात की मगनतातें ज्ञानपना में राग द्वेष परिनाम दीसै है। अरु जीव सम्यक भाव में हो है तव शिव भाव उपजै हैं। ६६।

अथ-व्यापकता कथन। दोहरा।

ज्यो दीपक रजनी समें, चिहु दिशि करै उदोत
प्रगटै घट पट रूप में, घट पट रूप न होत ६७

अर्थ—अब ज्ञान भाव में पुद्गल को भाव व्याप्य सकै नहीं। तातें पर भावसो व्यापकपनो न कहै। जैसे रात्रिसमैं दीपक चिहो दिशि उद्योत करै है, प्रकाश करे

है। या प्रकाश में घट पटादिक पदार्थ प्रगटे है, पै दीपक की उद्योत, घट पट रूप होइ नहीं। ६७।

दोहरा।

ज्यों सुज्ञान जानै सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म।
ज्ञेयाकृति परिनति विषै, तजै न आतम धर्म ६८

अर्थ—जैसे सुज्ञान है सो सकल ज्ञेय वस्तुको मर्म जानै है। जानिवा योग्य भाव है सो सब जानै है। या ज्ञान में ज्ञेय पदार्थ को आकार हूं परिनमै है, पै ज्ञान है सो आत्मधर्म शुद्धपनौ छाडै नहीं। ६८।

दोहरा।

ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहै विकार न कोइ।
राग विरोध विमोहमय, कबहीं भूल न होइ ६९

अर्थ—ज्ञान धर्म, सो जानपनौ, सदा अविचल है। या जानपना में तो विकार कोउ ग्रहै नहीं। जो राग द्वेष मोह में आप है ही है, ताहू जानपना की तो कबहू भूलि होइ नाहीं। ६९।

दोहरा।

अैसी महिमा ज्ञान की, निहचै है घट माहि।
मूरख मिथ्यादृष्टि सों, सहज विलोकै नाहि ७०

अर्थ—एसी ज्ञान की महिमा निश्चय स्वरूपं घट में है। मूर्ख है सो मिथ्यादृष्टि सौं सहज स्वरूप विलोकै नही है। ७०।

अथ-मूढ स्वभाव कथन। दोहरा।

पर स्वभाव में मगन है, ठाने राग विरोध।
धरै परिग्रह धारना, करै न आतम सोध ॥७१॥

अर्थ—अब जीवकौ अनादिकालतैं जैसौ मूढ स्वभाव है तैसौ कहै हैं—शुद्ध चेतना स्वभाव तैं और स्वभाव में है, सो पर स्वभाव है, तातैं मगन हुइकै राग द्वेष में ही ठहरो रहै। या ही राग द्वेष तैं परिग्रह धारना धारै। अरु आत्मद्रव्य कौ शोधन न करै। ७१।

अथ-कुबुद्धि तथा सुबुद्धि विवरन कथन। चौपाई।

मूरख के घट दुर्मति भासी,
पंडित हियैं सुमति परगासी।

दुरमति कुवजा करम कमावे,
सुमति राधिका राम रमावै। ७२।

अर्थ—अब मूढ के कुबुद्धि है पंडित के सुबुद्धि है ताको व्यौरो कहै है- मूर्ख प्रानी के घट में दुमति भासि रही है, अरु पंडित प्रानी के हिये में सुबुद्धि प्रकाशी है। दुर्बुद्धि है सो कुवजा कंस की दासी समान है, सो कम की कमावनहार है। अरु सुबुद्धि है सो राधिका समान है, सो आतमाराम नायक की रमावनहार है। ७२।

पुन । दोहरा ।

कुवजा कारी कूवरी, करै जगत में खेद ।
अलख अराधे राधिका, जाने निजपरभेद ।७३।

अर्थ—कुवजा दासी, कारी अरु कूबरी, जग में खेद प्रयास, काम कमावन को बहुत करै। अरु राधिका है सो तो अलख नायक ही को आराधै, खेद न धारै। यहु मेरे इष्ट नायक है, और पर है ए सो जानै। ७३।

अथ कुबुद्धि यथा। सवैया ३१ सा।

कुटिल कुरूप अंग लगी है पराए संग

यातैं मदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ७५

अर्थ—अब सुबुद्धि अरु राधिका को एक सौ स्वरूप कहै है—सुबुद्धि होइ सो आतम रूप की रसीली होइ। राधा हू रूप की रसीली है। अरु भ्रम रूप कुलफ उखेल वैंकों कीली कहतें कुंजी है। सुबुद्धि है सो सीलरूप समुद्र में भीली रहै। राधिका हू ऐसी है अरु सुबुद्धि राधिका ए दोऊ सीली प्रहात सौं सुखदायक है। ज्ञानरूप भानु कहतें सूर्य ताको उदयको प्राची कहतें पूर्व दिशा है, निदान की, ज्याचन हारी नहीं। इतने नि.स्पृह पनै। सुबुद्धि अरु राधिका इह, निरवाची कहतें वचन गोचर नहीं, ऐसे ठौर राची है। जाकी साची ईश्वरताहे है। धाम कहतें घर ताकी खबरिदार है, जिनसों रमि रहिए सो राम। इतन अपनो इष्ट ताकी रमनहार है। राधा रस रथ सो राधा। वल्लभीके मार में के रम ग्रन्थ में राधा नाम ईश्वरकी प्यारी है। सा सुबुद्धि ही है। ऐसी सत गोकुल की मानी निरवानी कहतें स्वच्छपनें रहनहारी। अरु नूर कहतें सोभा

द्वी निशानी। ऐसी सुबुद्धि नवें है। यातें या सुबुद्धिकों
विग्र रानी कहिये। ७५।

दोहरा।

ह कुनजा यह राधिका, दोऊ गति मतिवान।
ह अधिकारनि करमकी, वह विवेककी खानि७६

अर्थ—वह कुमति तौ कुबजा भई, वह सुमति राधि-
ा भई। ए दोऊ आप अपनी गति मति लीये रहे हैं।
ह कुमति कुबजा तो कर्म बंध की अधिकारिन है। यह
मति राधिका विवेक की खानि है॥ ७६॥

दोहरा।

दरब करम पुद्गल दशा भाव-कर्म मति वक्र।
जो सुज्ञानको परिनमन, सो विवेक गुनचक्र।७७।

अर्थ—जो ज्ञानावरनादिक द्रव्य कर्म है, सो तौ
पुद्गल द्रव्य रूप है। अरु मति की जो वक्रताई है सो
भाव कर्म कहियें। अरु जो सुज्ञान को परिनाम होइ सो
विवेक गुन को चक्र कहिये। ७७।

अथ—कर्मचक्र यथा। कवित्त छंद।

जैसें नर खिलार चौपरिको,
लाभ विचारि करै चित चाउ ।
धरै सभारि सारि वुध बलसौं,
पासा जो कुछ परै सो दाउ ॥
तैसें जगत जीव स्वारथ कौ,
करि उद्यम चिंतवै उपाउ ।
लिख्यौ ललाट होइ सोई फल,
कर्म चक्रको यहै सुभाउ । ७८ ।

अर्थ—अब भाव कर्म के चक्र परि दृष्टान्त दिखाव है—जैसें काउ चौपरि कौ खिलारी पुरुष चित्तम लाभ विचारिकै खेलिवेकौ चाउ राखै, हौस राखै, अपनी बुद्धि बलसौं जुग प्रमुख को जतन राखिके त्रिक, चौक प्रमुख दाव परि सारी सभारि के धरै, प दाव तौ पासा क-याधीन होतैं । जगतवासी जीव उद्यम करिकै अपने स्वारथ कौ उपाउ चितवै, पै अपन ललाट मे लिख्यौ सोई फल होइ । इतन कर्म उदय माफक फल होइ । कर्म चक्र जो कुमति खेल है, तासौं यहु स्वभाव है । ७८ ।

अथ—विवेकचक्र यथा । कवित्त छंद ।

जैसे नर खिलार सतरंज को,
समुझै सब सतरंज की घात ।
चलै चालि निरखि दोऊ दल,
मुहरा गिनै विचारै मात ॥
तैसैं साधु निपुन शिव पथमे,
लच्छन लखै तजै उतपात ।
साधै गुन चितवै अभय पद,
यहै सु विवेक गुनचक्र की बात । ७६ ।

अर्थ—अब विवेक चक्रपर दृष्टांत कहै है—जैसैं कोऊ सतरंज को खिलारी पुरुष सतरंज खेल की सब ही घात दाव समुझै, अपने पराए दल परि नजरि राखिकै चाल चाल, अपना अपना पराया वजीर हाथी प्रमुख मुहरा गिनतो मैं राखै, मन मैं परका जीत करनो विचारै । तैसैं साधुलोक पंडित है सो मोक्षमार्ग मे खेलै । लक्षण तैं वस्तु को लखै, यामैं उतपात रूप कार्य होइ सो छांडैं । अपने गुनको साधन करै चितवै, अभयपद ।

सुविवेकचक्र की बात है ॥ ७६ ॥

दोहरा।

सतरज खेलै राधिका, कुबजा खेलै सार।
याके निसदिन जीतवो, वाके निसदिन हार ॥

अर्थ—सुबुद्धि राधिका तो सतरंज को खेल खेलि रही है। अरु कुमति कुबजा पासा सारिको सो खेल खेलै है। या सुमति राधिका के तो विवेकचक्र में रात दिन जीतवो है। अरु वा कुमति कुबजा के कर्मचक्रमें रात दिन हार है। ८०।

दोहरा।

जाके उर कुबजा वसे, सोई अलख अजान।
जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ।८१

अर्थ—जाके हियेमें कुमति कुबजा वसे सो तो अलख आत्मा अजान है। अरु जाके हिये में सुमति राधिका बसै है, सोई समकित बुध कहतें ज्ञानी कहिये। ८१।

अथ-ज्ञानक्रिया सहकार कथन। सवैया ३१ सा।

जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उदोत दीसे तहां

शुद्धता प्रवान शुद्ध चारित अंश है।
ता कारन ज्ञानी सब जानैं वस्तुमर्म,
विराग विलास धर्म वाको सरवस है॥
राग द्वेष मोहकी दशासों भिन्न रहै यातें,
सर्वथा त्रिकाल कर्म जालको विध्वंस है।
निरुपाधि आतम समाधि में विराजै तातें,
कहियै प्रगट पूरन परमहंस है। ८२।

अर्थ—अब जहा ज्ञान है तहा शुद्ध क्रिया हू है ऐसी कहै हैं—जिहि प्रानी विषैं शुद्ध ज्ञान की कला को उद्योत दीसै है, तिहि प्रानी विषैं तिहा काल विषैं आत्मा की शुद्धता प्रमान करकैं, शुद्ध चारित्रको अंश होइ। तिहिं कारन तें जो ज्ञाता होइ, सो तौ ज्ञेय कहतें हेय उपादेय रूप सब जानिबे योग्य वस्तुको मर्म जानै। तब हेय कौ छाड उपादेय को गहैं ऐसैं वैराग्यके विलासको स्वभाव सबै अंश करिकैं प्रगट होइ। अरु वैराग्य आये राग द्वेष मोह की दशा सों प्रानी भिन्न रहै हैं। वाहीतें पूवले कर्मकी निर्जरा अर वर्तमान काल विषैं कर्म न बंधै। जो प्रकृति

छुटी सो आगामी काल विषै न वधैगी। ऐसै सर्वथा प्रकार कर्म जाल कौ विध्वंस होइ। तब ही तौ रागद्वेषादिक उपाधि रहित आतम समाधि में विराजै तातै पूरन परमहंस प्रगटपन कहियै। ८२।

। दोहरा।

ज्ञायक भाव जहा तहा, शुद्ध चरन को चाल।
तातैं ज्ञानविराग मिलि, शिव साधैं समकाल८३

अर्थ—जहा ज्ञायक भाव है, तहा शुद्ध चारित्र का चालि पाइये, तातै ज्ञान अरु विराग मिलिकै समकाल शिव माग साधै ॥ ८३ ॥

दोहरा (कमल छपी पुस्तकमें)

जहा अंधके कंध पर, चढैं पगु नर कोइ।
याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोइ॥

दोहरा॥

जहा ज्ञान किरिया मिलै, तहा मोष मग सोइ।
वह जानैं पदको मरम, वह पदमें थिर होइ।८४।

अर्थ—ज्ञान अरु किरिया ए दोऊ एगठे हुइ रहै तहा

मोक्ष को मार्ग होइ। यह ज्ञान तौ वस्तु कौ मरम जानै अरु यह क्रिया तो अपने वस्तु स्वभावमें थिर होइ। ८४।

अथ ज्ञान क्रियाकौ स्वरूप कथन। दोहरा।

ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीवकी भूल।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, कर्म जगत को मूल।८५।

अर्थ—अब ज्ञान कौ जैसो स्वरूप है अरु क्रिया कौ जैसो स्वरूप है सो कहे है—ज्ञान जो है सो तो जीवकी सजगता इतनै जीवकी जागिवो है। कर्म कहतै क्रिया-कार्य करनो सो जीव की भूलि है तहा ज्ञान सो मोक्ष कौ अंकूर है। इतनै मोक्ष कौ हेतु है। क्रिया कार्य करनो सो तो भव भ्रमन कौ मूल है। ८५॥

दोहरा।

ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम।
कर्मचेतनामे वसे, कर्मबंधपरिनाम।८७।

अर्थ—चेतना दोइ प्रकार की पूर्वे कही है तामें ज्ञान चेतना के जागिवेतें केवलराम प्रगटै। अरु दूसरी कर्मचेतना कही है, तामें आत्मा के कर्मबंध के परिनाम उपजै है॥८७।

अथ ज्ञानक्रियाको प्रभाव भिन्न २ कथन। चौपाई

जबलग ज्ञान चेतना भारी,
तबलग जीव विकल ससारी।
जब घट ज्ञान चेतना जागी,
तब समकिती सहज वैरागी ॥८८॥

अर्थ— अब ज्ञानको प्रभाव अरु क्रियाको प्रभाव भिन्न २ कहि दिखावै है—जौलों क्रिया परनति करकै ज्ञान चेतना भारी भई। तौलों तौ इतन कर्म चेतना रूप भई। ससारी जीव विकल रूप हुइ रह्यो। अरु जबलों घटमे ज्ञान-चेतना जागृत रूप होइ तबतो समकिती कहावै। अरु सहजै वैरागी कहावै ॥ ८८ ॥

पुन। चौपाई।

सिद्ध समान-रूप निज जानैं
पर स योग भाव पर मानै।
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासै,
त्रिविधि कर्मकी ममता नासै ॥८९॥

अथ—अरु ज्ञान चेतना क जागिवतैं अपने रूप को

निश्चै सिद्ध समान जानै। अरु जा पर पुद्गल के संयोगतै भाव उपजै सो तो पर रूप मानै। शुद्धात्माके अनुभव कौ अभ्यास राखै। द्रव्य कर्म भावकर्म, नो कर्म, ऐसैं तीनों कर्म की ममता गमावैं। ८६।

अथ- ज्ञाता पूर्वकृत आलोचना कथन। दोहरा।

ज्ञानवंत अपनी कथा, करै आपसो आप।
मै मिथ्यात दशा विषैं, कीने बहुविधि पाप ६०

अर्थ—अब ज्ञाता होयकै जो पूर्व कालविषै कर्म किये है ताकी आलोचना लै अरु अपनी वीतराग वात कहै-ज्ञानवंत अपनी कथा आपसौं आपुही कहै, मै पूर्वकाल विषै मिथ्यात दशा माहि बहुभांति के पाप कीनै। ६०।

। सवैया ३१ सा।

हिरदै हमारैं महामोहकी विकलताहो,
तातें हम करुना न कीनी जीव घात की।
आप पाप कीनै औरन कौ उपदेश दीनै,
हुती अनुमोदना हमारे याही वातकी ॥
मन वचन काय में मगन हो कमाये कर्म

धाये भ्रम जालमे कहाए हम पातकी ।
ज्ञान के उदै भए हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ६१

अर्थ—हमारे हियेमें पूर्वकाल विषै महामोह की विकलता होती तातैं हम जीव घात की करुणा न कीनी निर्दय दशा राखी, अपनी कायातैं मैं आपु ही पाप कीनैं अरु औरनिकौं वचन करिकै पाप के उपदेश दीने, और कौं पाप करतौं देखि वाकी हम अनुमोदना करते रहे। ऐसी भांति मन वचन काया के अशुद्ध व्यवहार में मगन हुइकै कर्म कमाए। मिथ्या जाल में ऐसी भांति दौरे, तातैं हम पातकी कहाए। अब ज्ञान के उदय होतैं हमारी दशा ऐसी भई, जैसे भानु कहत सूर्य तिन्हि के भासत तैं जैसे प्रभात काल की अवस्था उद्योतवत होइ। तैसैं हमारी हू ऐसी अवस्था भई ॥६१॥

अथ—ज्ञाता ज्ञान प्रभाव कथन। सवैया ३१ सा।

ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहै,
करुना निधान अमलान मेरो रूप है।

कालसों अतीत कर्म चालसों अतीत जोग,
जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥
मोहको विलास यह जगतको वासमे तो,
जगत सों सुन्य पाप पुन्य अध कूप है ।
पाप किनि कियौ कौन करै करि है सु कौन,
क्रिया कौ विचार सुपने की दौर धूप है ॥६२॥

अर्थ—अब ज्ञाता ज्ञान के प्रभाव तैं जैसी अपनी अवस्था जानै तैसी कहै है—ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश होतु प्रमान, ज्ञानवान कहत ज्ञाता पुरुष ऐसे कहै मेरो स्वरूप करुना निधान है। सब को आप रूप जानकै सबकौ हित वच्छल है। अरु अमलान कहते निर्मल है। काल सों अतीत कहत काल के वश नहीं। इतनें शाश्वत है। कर्म चालिकौ जाकै भय नांही। इतन जाकै स्वभाव कर्म गमाड सकै नाही। मन वचन काय योग के जाल सों जो अजीत है। इतनें जोग जाल जाको जड करि न सकै। ऐसी जाकी महिमा अद्भुत है। अरु यही जगत कौ नाम है सो तो मोह कौ विलास है। ये मेरो विलास

नाही । जगत रहियें मन अमन ताते में तो शून्य कहत रहित हो । गति क्रम जगत करें है । मेरे स्वरूप में पुण्य पाप अन्धकूप समान है । यातें पाप पुण्य किनि कीन्हों, अबहू कौन करें है, आग कौन करेगौ । यहु जा क्रिया की विचार देखें में आवें है, सा तो सुपनाको दोर धान समान मिथ्या व्यवहार है । ६२॥

अथ–मिथ्या परिनाम वनन । दोहरा ।

मैं यों कीन्हों यो करों, अब यहु मेरो काम ।
मन वच काया में वसैं, ए मिथ्या परिनाम ।६३

अर्थ—अब मिथ्या परिनाम का वर्नन करें है—मैं एसें कीन्हों अब ऐसें करों है । अब यहु मेरो काम है सो करि हो । ग्यान चेतना जाग बिना मन वचन काया म ये मिथ्यात परिनाम बसे है ॥६३॥

दोहरा ।

मन वच काया करम फल, करम दशा जडअंग ।
दरवित पुद्‌गल पिडमय, भावित भरम तरग ६४

अथ—ए जो मन वच काय योग है सो कर्मको जाल

है। अरु कर्म दशा जड़रूप अंग है। ये जो मन वच काया है सो पुद्गल द्रव्यको पिंड है, तामें ए मिथ्यात तरंग भावित उपजे है ॥६४॥

दोहरा।

तातैं भावित कर्म सौं, धर्म स्वभाव अपूठ।
कौन करावै को करै, कौमल है सब झूठ ॥६५॥

अर्थ—तातैं आत्माके भावित धर्मसो इतनें शुद्ध जानपना सौं, ए मिथ्यात तरंग रूप कर्म स्वभाव उलटौ है। तातैं करावै कौन अरु करे कौन, इतनें अनुमोदै कौन, ए तौ मन प्रपंच झूठ है ॥६५॥

अथ— क्रिया की निंदा कथन। दोहरा।

करनी हितहरनी सदा, मुकतिवितरनी नाहि।
गनी बंध पद्धति विषैं, सनी महा दुखमाहि ॥६६॥

अर्थ—अब जोगतैं क्रिया होय ताकी निन्दा करै है—करनी क्रिया है सो सदा हित की हरनहार है। मुकति वितरनी कहतं मुकति की देनहारी क्रिया नाही। ये क्रिया कौं आगम में बंध पद्धति विषै ही ...

स्वरूप में है ॥१००॥

पुनः । सवैया २३ सा ।

सम्यकवन्त कहै अपन गुन,
मैं नित राग विरोध सों रीतो ।
मैं करतूति करों निरवञ्छक,
मोहि विषै-रस लागत तीतो ॥
शुद्ध सु चेतन को अनुभौ करि,
मैं जग मोह-महातम जीतो,
मोख समीप भयो अब मो कहुँ,
काल अनन्त यही विधि वीतो ॥१०१॥

अर्थ—समकिती जीव अपने गुन कहै है—मैं जो हों सो नित्य प्रति राग द्वेष सों रीतो कहतें रिक्त हों। इतनें राग द्वेष रहित हों में जो क्रिया करों सो राग द्वेष बिना वांछा रहित करों जो ये विषय रस है सो मोहि तीतो कहतै तिक्त लागै है, कडुक लागै है। शुद्ध अपने चेतन कौं अनुभव करकै मैं जगतमें मोहरूपी महा सुभट जीतों। अब ~~ स्वरूप के पाये तें मोक्ष सम्

भयौ। अरु मोक्ष एैसी भांति मेती अनंत काल रीतौ। अनंत काल लों ऐसैं ही रहौ, ये आसशा है ॥१०१॥

दोहरा।

कहै विचच्छन मैं सदा रह्यो ज्ञान रस राचि।
शुद्धातम अनुभूति सा खलित न होऊ कदाचि१०२

अर्थ—विचच्छन ज्ञानी पुरुष आसशा करिकैं कहै मैं सदा ही ज्ञान रस में राचि रह्यौं। अरु मैं शुद्ध आत्मा के अनुभूति कहतें अनुभवसा कदाचित् काल विषै खलित मति होउ, ये आसशा है॥ १०२॥

दोहरा।

पूरब करम विष तरु भए, उदै भोग फल फूल।
मैं इनको नहि भोगता, सहज होइ निरमूल १०३

अर्थ—ये पूर्वकृत पुन्य पाप कर्म है सो विषवृच्छ भए है अरु कर्म के उदय के भोग है सो वा वृच्छ के फूल फल है मैं इनि उदय भोग को भोक्ता नहीं। राग द्वेष रहितपनातें ये अनादि काल के साथ लगे उदय भोग है, सो निर्मूल होउ॥१०३॥

अथ वैराग्य महिमा कथन दोहरा।

जो पूरव कृत करम फल रुचि सों भुंजे नाहि।
मगन रहे आठों पहर शुद्धातम पद माहि १०४

अर्थ—अब उदासीनता वैराग्य कहिये ताकी महिमा कहै है—जो पूर्व काल में कर्म कीने ताको फल उदय भयो सो फल रुचि लगाय भोगवे नहीं। आठो ही पहर शुद्ध आतम स्वरूप में मगन रहे ॥१०४।

दोहरा।

सो बुध कर्म दशारहित पावै मोक्ष तुरन्त।
भुंजे परम समाधिसुख आगमकाल अनन्त १०५

अर्थ—सोई बुध कहतें पण्डित कर्म दशारहित हुइके तुरन्त मोक्ष पावै। सो पीछे अगामी काल विषै अनन्त काल लौं परम समाधि को सुख भोगवै ॥१०५॥

अब ज्ञानी पुरुष की महिमा कथन ॥ छप्पय ॥

जो पूरव कृत करम, विरस-विष फल नहिं भुंजै।
जोग जुगत कारज करत, ममता न प्रजुंजै॥
रागविरोध निरोध, संग विकलप सब छंडै।
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासी, शिवनाटक मंडै॥

जो ज्ञानवंत इहिमग चलत, पूरन ह्वा केवल लहे ।
सो परम अतींद्रिय सुख विषे, मगनरूप संतत रहे१०६

अर्थ—ज्ञानी पुरुष की जैसी क्रम क्रम महिमा बढै ता कहै है—जो ज्ञाता हो के पूरवकृत कर्मके सुख के विष-फल भोगवै नहीं। इतने इष्ट फल तै तो रति न उपजै। अनिष्ट फल तै अरति न उपजै। ऐसे भोग नाहीं। ऐसै ज्ञाता है, सो मन वचन काया जोग करि जुगत है। तातैं जोग की जुगति तैं कार्य करै है। पै तामें विष ममता प्रयुक्त नहीं। ऐसे राग द्वेष का निरोध करि के जोग संगति तै जो विकल्प उठै है सो सब छाडै। शुद्धातम के अनुभव को अभ्यास करिकै शिव नाटक कहतैं जासौ जीव मुक्त होइ ऐसो नाटक माडै। जो ज्ञानवंत इहि मारग चालै सो पूर्ण स्वभाव पाय कै केवलज्ञान पावै। पीछै जामो केवल पाय कै इन्द्रिय गोचर नहीं सो अतीन्द्रिय कहिये। ऐसो जो परम कहतैं उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख है ताके विषे सतत कहतै निरंतर मगन रहै।

अथ शुद्ध आतम द्रव्य वर्नन सवैया ३१ सा।

निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद,

जाके परगासमें जगत माइयतु है।
रूप रस गंधफास पुद्गल को विलास,
तासो उदवास जाकोजस गाइयतु है॥
विग्रह सौ विरत परिग्रहसौ न्यारो सदा,
जामें जोग निग्रह चिहन पाइयतु है।
सो है ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि,
अविनासी ईस मानि सीस नाइयतु है॥१०७॥

अर्थ—अब ही शुद्ध आतम द्रव्य है ताकौ वर्नन कहै है—जो निर्भय कहावै है, निराकुल कहावै है, निगम कहतें उत्कृष्ट अर्थ कहावै है, निर्भेद कहतें जाको भेद नाही। ऐसो प्रकाश रत पदार्थ है। जामें सब्र मावै है। जो ए रूप रस गंध स्पर्श विना पदार्थ है। रूप रस गंध जो स्पर्श है सो तौ पुद्गल को विलास है तासौ उदय बंध कहवे रहित जाको जस गाइये है। विग्रह कहते शरीर ताको विरत कहतें रहित। अरु द्रव्य भाव परिग्रह सों न्यारो है। जामें सदाई जोग विग्रहतें तीनों जोगतें निरहितरहवाक्ये चिन्ह लक्षण पाइये है। जहा ज्ञान है त्हां चह दह है

तातें सो ज्ञान प्रमाण है। अरु चेतना जौ निधान है, तिन्हि कौ अविनासी ईस्वर मानिकै सीस ऋहत मस्तक सो नमाइये है। १०७॥

पुन सत्या ३१ सा

जैसो निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो,
तैसो निरभेद अब भेद कौन कहैगो।
दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान,
पायो निजथान फिर वाहिर न वहैगो॥
कबहूं कदाचि अपनो सुभाव त्यागि करि,
राग रस राचिकै न परवस्तु गहैगो।
अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो,
याही भांति और हू अनत-काल रहैगो १०८

अर्थ—औरो ही शुद्धात्म द्रव्य सिद्धिकौ वर्नन करै है— अतीत काल में शुद्ध आतम द्रव्यको निश्चय नयते जैसै अभेद रूप हुतो सोतो अन केवलरूप पायें, निजभेद कहतें भेदरहित ही जानिये। अब या दशामें कौन मूर्ख भेद ठहरावैगो। नैयायिक ज्यों नैयायिक की प्ररूपना में समाधि

जोगातें आत्माकों कर्म रहित मानिकें संसार में अवतार मानै है, तिन्हिकों तिरस्कार करै है। जो कर्म रहित भयौ, अपने थानक पायौ तौ फिरि बाह्य संकट में क्यों परैगो ? अबहीं काल विषै कदाचित जो अपनौ स्वभाव प्रगट भयौहै ताकी त्यागि करके मिथ्यातीकी कहनवि, मैं जैसे धरती की भार उतारन कों ईश्वर अवतार ऐसौ दूषयै है। शुद्ध हुइकैं फेरि रागके रस शब्दिकें पर वस्तु को ग्रहै नाहीं। अम्लान-ज्ञान कहते जो ज्ञान फेरि कुमलावैं नाहीं। ऐसौ ज्ञान विद्यमान काल विषै प्रगट भयौ, सोतौ आगामीकाल विषै अनंत काल कों रहैगौ ॥१०८॥

सवैया ३१ सा

जबहीतैं चेतन विभाउ सौं उलटि आप,
समौ पाय अपनौ सुभाउ गहि लीनौ है।
तबहीतैं जो जो लेन जोग सो सो सब लीनौ,
जो जो त्यागजोग सोसो सब छाडि दीनौ है
लेवे कौ न रही ठौर त्यागिवेकौं नाही और
उवरो जु कारिज नवीनो है।

संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि,
मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है

अर्थ— अब फेरि अवतारके कारन को अभाव कहै है—अनादि कालतें चेतन मिथ्यात भावरूप विभाव में रंगि रह्यो है। सो समय प्रस्ताव पाइकै जबहीतें विभाव सौ उलटि कै उपराठो हुईकै अपनो शुद्ध स्वभाव हुवो, सो आपहि गहि लीनो। तब होवें जा ज्ञान दर्शनादिक भाव लैन जोग हुतो सो तो ली हो। अरु जोभा राग द्वेषादिक भाव त्याग जोग हुतो सा सब छाडि दीन्हों, तब तो लेर को कोऊ और ठौर रही नहीं। अरु त्यागिवेको और ठौर रही नाहीं। अबें इहां बाकी नयो कारिज कहा उपरचो है। जो कारिज करिवै को फेरि अब तारि लीजै। जो उपाधि संग हुतो सो सब त्यागिके, अङ्ग त्यागि कहते काय योग त्यागि कै। वचन तरंग त्यागि कहते वचन योग त्यागि कै, मन त्यागि कहते मनोयाग त्यागिकै, बुध त्यागि कहते विकल्प त्यागिके आत्माको शुद्ध करि लीन्हो ॥१०८॥

। अथ—एकांत द्रव्यलिंग की निंदा कथन '। दोहरा।

शुद्ध ज्ञानकै देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ।

तातैं कारन मोखको, द्रव्यलिंग नहिं होइ ११०

अर्थ—अब बाह्य भेश धारिवौ सो द्रव्य लिंग कहियै सौ एकातपनें मोक्षकौ कारन नाहीं, यहु कहिये है—आत्मा तौ शुद्धज्ञानमई है। अरु शुद्ध ज्ञान कै देह नाहीं है। अरु जब देह नाहीं, तब तौ ज्ञान कै मुद्रा भेप कोऊ नाहीं। तातें मोक्षकौ कारन द्रव्य लिंग होइ नाहीं, इतनें भेप लीनें मुकति नाहीं ॥ ११० ॥

दोहरा

द्रव्यलिंग न्यारौ प्रगट, कला वचन विज्ञान।
अष्ट महारिधि अष्टसिधि, एऊ होहिं न ज्ञान१११

अर्थ—ज्ञान तैं द्रव्य लिंग प्रगट न्यारौ है। अरु कला, विज्ञान, वचन विज्ञान सोऊ ज्ञानतैं न्यारो। आचार १ श्रुत २ शरीर ३ वचन ४ वाचना ५ बुद्धि ६ उपयोग ७ सग्रह शीलता ८ अष्ट महा ऋद्धियां हैं। अरु अणिमा १ गरिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ प्राप्ति ५ प्राकाम्य ६ ईशित्व ७ वशित्व ८ अष्ट सिद्धि हैं, सो ज्ञान नाहीं ॥ १११ ॥

अथ ज्ञान अभाव स्थान कथन । सवैया ३१ सा ।

भेषमें न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु वर्तनमें,
मन्त्र यन्त्र तन्त्र में न ज्ञान की कहानी है ।
ग्रथ में न ज्ञान नहि ज्ञान कवि चातुरीमें,
बातनिमें ज्ञान नहिं ज्ञान कहा बानी है ॥
तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्र थ मन्त्र बात,
इनतैं अतीत ज्ञान चेतना निसानो है ।
ज्ञान ही मे ज्ञान नहि ज्ञान कहीं और ठौर,
कहाँ जाके घट ज्ञान सोई ज्ञानकौ निदानहै११२

अर्थ—अब ए महिमावत स्थानक हैं तीऊ ज्ञान कौ ठौर नाहीं सो कहैं है—भेष में ज्ञान न पाईये । अरु गुरुवाई है साऊ ज्ञान को ठौर नाहीं । अरु मंत्र जंत्र तंत्र में ज्ञान की कहानी नाहीं । ग्र थ शास्त्र पढवेतै ज्ञान न पाईयै । अरु कविता चातुरी में ज्ञान न पाईयै, बात चातुरी मे ज्ञान नाहीं । अरु जो बानी है सो कहा ज्ञान है? इतनै बानी हू ज्ञान नाहीं । तातैं भेष, — ~ कविताई, ग्रथाभ्यास,

मन्त्र, यंत्र, तंत्र बात इन सबही ते अतीत कहते न्यारौ ही ज्ञान वस्तु है। सो चेतन की निसानी कहते लक्षण है। जाके घट में ज्ञान प्रगटो है सोई ज्ञान को निदानो कहते मूलहेतु है ॥११२॥

अथ—भेषादि धारक मूढ बहु कथन सवैया

भेष धरि लोगनिकौ वंचै सो धरम ठग,
गुरु सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये।
मंत्र तंत्र साधक कहावै गुनी जादूगर,
पंडित कहावै पंडिताई जामें लहिये॥
कवित्तकी कलामें प्रवीन सो कहावै कवि,
बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये।
एतौ सब विषैके भिखारी मायाचारी जीव,
इन्हिकौ विलोकिकै दयालरूप रहियै॥११३॥

अर्थ—अब जो पूर्वभेष प्रमुखके धारक कहे ताकी मूढता करि दिखावै है—भेष धारिकै लोगनिकौं भरमावै सो धर्म ठग कहावै। जाकी गुरुवाई की चाहना होइ सो गुरु कहावै

मन्त्र जंत्र तंत्र को साधक जो गुनी होय सो आदगर कह
तोनागारो कहावै। जामें पंडिताई पाइयै सो पंडित कह
कवि कलामें चातुरी जो प्रवीन होइ सो तो कवि कहावै
बात बताइ जानै सो पजारमीर ठहराइये। एती अवस्थ
धरनहार है, सो मन विषयके भिखारी कहतें इन्द्रिय वि
के जाचनहार, भिखारी मायाधारी जीव है। इन्द्रि
त्रिलोकिकें भनमें ऐसो न्याइये। यहां ए कहा अपनो स्व
पांवै ह। ऐसें याके परि दयालरूप रहिये ॥११३॥

अथ—अनुभव योग्यता कथन। दोहरा।

जो दयालता भावसो, प्रगट ज्ञानको अंग।
पै तथापि अनुभव दशा, वरते विगत तरंग॥११

अर्थ—अब जीवके अनुभव की योग्य दशा है सो क
है जो आत्मा शुद्ध पायें दयाल भाव प्रगटै है, सोतो ज्ञ
का अङ्ग प्रगट भयो जानिये। जो यह ज्ञान अङ्ग प्रग
जानिये। तौहू अनुभव दशा है सो विगत तरंग कहि
विकल्परहित वर्ते ॥११४॥

दोहरा।

दरशन ज्ञान चरन दशा, करै एक जो कोइ।

थिरह्वै साधे मोख मग,सुधी अनुभवी सोइ॥११५

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्रकी दशाको जो एक विकल्प रहित आत्मा कौ लखै। याही भांति थिररूप ह्वै कै मोक्ष मार्ग कौ साधै। सोई सुधी कहतें सुबुद्धिवंत अनुभव व त कहावे ॥११५॥

अथ अनुभव महिमा कथन। सवैया ३१ सा।

जोई दृग ज्ञान चरनातममें वैठि ठौर,
भयौ निरदौर परवस्तुकौ न परसै।
शुद्धता विचारै ध्यावै शुद्धतामें केलि करै,
शुद्धतामे थिरह्वै अमृत धारा बरसै॥
त्यागि तन कष्टह्वै सपष्ट अष्ट करम कौं,
करि थान भ्रष्ट नष्ट करै ऊर करसै।
सोई विकलप विजई अल्प काल माहि
त्यागि भौ विधान निरवान पद दरसै॥११६॥

अर्थ—अब अनुभव कहियें निसदेह शुद्ध स्वरूप-प्राप्ती ताकी महिमा कहै है—जो काऊ दर्शन ज्ञान

आत्मा विषै ज्ञानकी ठौर ठहराइकै ठाट बांधै, तहां निरदौर हुईकै। इतनै संशयरहित हुईकै पर वस्तुको परस न करै। तहा निश्चय नय गहिकै शुद्धताकी विचारै, शुद्धताकी ध्यावै, अप्रमादी ह्वैकै शुद्धता केलि करै, शुक्ल ध्यानकै प्रथम पाये में बैठिकै शुद्धतामें थिर होइ, महाआनंदरूप अमृतधारा वरसावै। यहा अभ्यर्थरूप लक्षण है। तातैं शरीर के कष्टकी त्याग है। लीनतातें शरीर कष्ट न जानै। सब स्पष्ट हुइक वीर्य फोरिकै आठौं कर्मको स्थान भ्रष्ट करै। इतनै सत्तातें चलावै। अरु नष्ट करै, कहतैं निर्जरावै। ऐसें और हू क्रमसे कहतें खैंच खैंच निर्जरावै सोई निरुन्द जालकी निजय पाइकै अल्प कालमें भव निधान कहतें भवकी श्रेणि बाधनी, सो त्यागिकै निर्वाण पद कहतैं मोक्ष पद सो देखै ॥११६॥

अथ—अनुभव शिक्षा। चौपाई-छन्द।

गुन परजे में दृष्टि न दीजै
निरविकल्प अनुभो रस पीजै।
आपु समाइ आपु में लीजै,

तनपौ मेटि अपनपो कीजै ॥११७॥

अर्थ—शिष्य पूछै ए अनुभव पाइवौ महाविषम है, ता परि गुरु शिक्षा देहै—आत्माके गुन पर्याय अनेक है वे तामें दृष्टि न दीजै। निर्विकल्प द्रव्यकौ अनुभव रस पीजै आत्मा आधार विषै आत्मा कौ समान करि लीजै। इतनै में लगाइयै। आप शरीर धारी है, या दशाकौ राय जाग पनौ जा है सो मेटि आत्मा स्वरूप करियै ॥ ११७ ॥

दोहरा

तजि विभाव हूजे मगन, सुद्धातम पद माहि॥
एक मोख मारग यहै, और दूसरो नाहि ।११८

अर्थ—आत्म स्वभाव विना और रस सब ही विभाव है। तिन्हकौ छाडिकैं शुद्ध आत्माके चिदानद स्वभाव मांहि, मगन हूजे। एक कहतें अद्वितीय मोक्षकौ मारग यो ही है। यातें दूसरो और कोऊ मोक्ष मार्ग नाहीं॥ ११८ ॥

अथ—द्रव्यलिगी व्यवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

कोई मिथ्या दृष्टी जीव धरै जिनमुद्रा-भेश।
क्रियामें मगन रहे कहे, हम जती

अतुल अखंड मल-रहित सदा उदोत,
ऐसे ज्ञान भावसौं विमुख मूढमती है ॥
आगम सभालै दोप टालै विवहार भालै,
पालै व्रत जदपि तथापि अविरती है ।
आपुकौं कहावै मोख मारग के अधिकारी,
मोखसौं सदीव रुष्ट दुष्ट दुरमती है ।११६।

अर्थ—अब शुद्ध आत्मा स्वरूपके अनुभव विना महाव्रती हू द्रव्यलिंगी जानिये यहु कहिये है—केई जीव मिथ्यादृष्टि है। अरु काहू आचार्य के उपदेश रसतें जिन मुद्रा भेष धारी है अरु साधुकी क्रियामें मगन रहे है। अरु अपने मनसौं अथवा काहूके पूछे सौं ऐसैं कहे। 'हम जती हैं' इतने महाव्रती है। अरु जो अतुल कहता जाकी तुलना नाही। अखण्ड कहते संपूर्ण विभावमल रहित सदा प्रकाशवंत, अपना अपना अनुभव स्वरूप तौ ज्ञान भाव है, तासौं विमुख है। याही तें मूढ मती है। अरु क्रिया तौ ऐसै करे है, आगम सिद्धांत सभारे है। अरु आहारादिक के दोष टालै है, व्यवहारमें दृष्टि राखै

है। ऐसें यद्यपि महाव्रत पाले है तौऊ निश्चय नयतें ए अविरति कहियें। ऐसें जु है सो आपुकों मोक्ष मार्गके अधिकारी लोकमें कहावें है, वह मोक्ष सों सदा रूठो ही रहे। इतने अभव्य को भी क्रियाके बलसौं नवमा ग्रैवेयक की गति कही। पीछे ए दुष्ट दुर्गतिमें परै ॥ ११६ ॥

दोहरा।

जे व्यवहारी मूढ नर, परजैबुद्धी जीव।
तिन्हिकौं बाह्य क्रियान कौ, है अवलंब सदीव॥

अर्थ—जैसे कोऊ मनुष्य व्यवहार में ही रहै है। अरु जे जीव पर्याय बुद्धि हैं। जो शुभ संगति सौ जीव होइ तो भलो, ऐसें पर्याय बुद्धि धारै है तिन्हि कों तो बाह्य क्रिया को अवलंबन सदा ही बन्यो है ॥ १२० ॥

अथ—महामूढ वर्नन। चौपाई-छंद।

जैसें मुगध धान पहिचानें।
तुष तंदुलकौ भेद न जानें॥
तैसें मूढमती विवहारी।
लखै न बंध मोख विधि न्यारी॥१२१॥

अब व्यवहारी की महा मूढताको वर्नन

—जैसे काऊ मुग्ध कहतें मनको भोलो पुरुप है सो धानको तौ पहिचानें पै तुप अरु तदुल कौ वामें भिन्नता है सौ न जानें। केवल व्रीहि धान जानें। तैसे जो व्यवहारी मूढ मती है सोतौ बध विाघ अरु मोख विधि न्यारी न्यारी लख सकै नाही ॥ १२१ ॥

दोहरा

कुमतीवाहिज दृष्टिसौं, वाहिज क्रिया करत।
मानैं मोख परपरा, मनमें हरस धरत।१२२।

अर्थ—कुमति होइ सो पर्याय वुद्धि तें साता वेदनी को समाधि सुख जानि कै ताकी हेतुरूप वाह्य क्रिया करै अरु वाह्य क्रियामें मगन होतौ याही तें निर्जरा मानि मोच परपरा मानें। अरु मनमें आनन्द पावें।१२२॥

दोहरा

शुद्धातम अनुभौ दशा, कहे समक्ति कोइ।
सो सुनिकै तासो कहैं, यह सिवपथ न होइ १२

अर्थ–यहां कोऊ समकिती शुद्ध आतमाकी अनुभ दशा मोचकी कारन कहै है, तहा सो वचन सुनकैं तासे

ऐसैं कहै है यहु तौ मोक्ष मारग होइ नाहीं ॥१२३॥

कवित्त छंद

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर,
मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि ।
ते हिय अंध बंध के करता,
परम तत्त्व को भेद न जानहि ॥
जिन्हके हिये सुमतिकी कनिका,
बाहिज क्रिया भेष परमानहि ।
ते समकिती मोखमारगमुख,
करि प्रस्थान भवस्थिती भानहि १२४

अर्थ—जिन्हके घटमैं देहबुद्धि रहै है। इतनैं देहधारी देहकी भिन्नपनौं न जानै है। अरु मुनीश्वर की मुद्रा धारिकैं क्रिया हो ताकौ प्रमाण करै हैं ते हिये के अन्ध हैं। अरु बंधके करन हारे हैं। अरु परम तत्व कहतैं मोक्ष तत्व तिहुकौ भेद न जानैं। अरु जिन्हकै हिये में सम्यग्दृष्टि लिये सुबुद्धिकी कनी जागी, सो तौ बाह्य क्रियाकौ भेष

रूप प्रमान करै, ते तो समकिती कहिये । अरु भाव मारग सन्मुख प्रस्थान करि कहता प्रमान करिकै भव स्थिति कहतें ससार स्थिति मानहि कहतें भाजैं ॥१२४॥

अथ—मोक्षको उपदेश सक्षेपमात्र । सवैया ३१ मा

आचारज कहैं जिन वचन को विसतार,
अगम अपार है कहैंगे हम कितनो ।
बहुत बोलिवेसों न मुकसूद चुप्प भली,
बोलिये सुवचन प्रयोजन है जितनो ॥
नानारूप जलपसों नाना विकलप उठै,
तातैं जितो कारिज कथन भलो तितनो ।
शुद्ध परमातमको अनुभौ अभ्यास कीजै,
यहै मोख पथ परमारथ है इतनो ॥१२५॥

अर्थ—अब सक्षेप सो नि. केवल उपादेय रूप मोक्ष मारग को उपदेश दे है—आचार्यजी शिष्य सो कहे है. यहा बहुत बोलनै सो हमारे मुकसूद नाहीं, यातैं चुप्प ही भली । अरु जितनो एक प्रयोजन है इतनो ही बोलिवो भलो नाना प्रकार सैं जो जलप कहतें बोलतो करिये तो

नाना प्रकार के विकल्प उठें तातें जितो एक कार्य है तेतो ही कथन भलो। शुद्ध परमात्म द्रव्यके अनुभवको अभ्यास कीजै। योंही मोक्ष मार्ग जानियै। सब बातमें इतनौ ही परमार्थ है ॥ १२५ ॥

दोहरा।

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकति पथ साधन अहैं वाग जाल सब और।

अर्थ—जिन क्रियातें शुद्ध आत्माको अनुभव होइ सोई क्रिया। अरु शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दृष्टिकी दौर मुक्ति पथकौ कारण है। और सब वाग् जाल कहते वचनाडंबर है ॥१२६॥

अथ–शुद्धजीवद्रव्य वर्नन। दोहरा।

जगत् चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास।
निरविकलप सासुत सुथिर, कीजे अनुभवो तास॥

अर्थ—अब शुद्ध जीव द्रव्यकौ वर्नन करे है—जो पदार्थ सर्व जगतमें चक्षुरूप है अरु आनंदमई है। जाकी भास कहते ज्योतिवान अरु चेतना है। तामें कोऊ

ल्प नहीं, भेद नहीं। सासुतो है स्थिर है। ते पदार्थको अनुभव कीजे, तब मुक्ति पाइये ॥१२७॥

दोहरा।

अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीतममत्व।
ज्ञानगम्य बाधारहित, सोहै आतम तत्व ॥१२८॥

अर्थ—जो कबहू अपने सुभावतै चलै नाहीं ऐसो अखंडित ज्ञानमई है, पूरन कहतै पूरन समाधिवंत। अरु ममत्व रहित, इन्द्रिय ग्राह्य नाहीं तातै ज्ञान गम्य है। अछेद्य, अभेद्य है, तातै बाधा-रहित है, सोई आत्मतत्व कहै हैं ॥१२८॥

दोहरा।

सर्वविशुद्धिद्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपथ।
कुन्दकुन्द मुनिराज कृत, पूरन भयौ गरथ॥

अर्थ—जिस द्वारमें आत्माकी सर्व विशुद्धि पाइये सो यह द्वार कह्यौ, सो प्रगट मोक्षको मारग कह्यो। श्री सीमन्धर स्वामीकी वानी सुनकै श्री कुदकुन्दाचार्य यह ग्रंथ कीन्हौ

ऐसी सम्प्रदायघात है, सो ग्रन्थ सपूर्ण भयो ॥१२६॥

इति नाटक समयसार भाषा ग्रंथ के विषै सर्वविशुद्धि द्वारमें बालबोध रूप अर्थ सम्पूर्ण भयो।



अथ ग्रन्थव्यवस्था कथन। चोपाई।

कुन्दकुन्द मुनिराज प्रवीना,
तिन्ह यह ग्रथ यहालों कीना।
गाथावद्ध सुप्राकृत वानी,
गुरु परम्परा रीति वखानी ॥१३०॥

अर्थ—अब ग्रन्थके करनहार को नाम कहैं अरु ग्रन्थ की महिमा कहे हैं कुन्दकुन्द नामें मुनिराज यहते आचार्य सो अध्यात्ममें प्रवीन भये तिन्ह आचार्य इहु सर्व विशुद्धि द्वार लों यह ग्रन्थ कीन्हों, सो ग्रंथकर्ता पाछैं प्राकृत गाथा-वद्ध वानी प्रकाशी वह वानीको गुरु सम्प्रदायतें अमृतचद्र आचार्य वखानी ॥१३०॥

चौपाई छन्द

भयो गरथ जगत विख्याता,
सुनत महासुख पावहि ज्ञाता ।
जे नव-रस जगमाहि बखाने,
ते सब समयसार रस साने ॥ १३१ ॥

अर्थ—या ग्रंथके टीका व्याख्यान करनत कुन्दकु आचार्यको कीन्हों ग्रंथ जगतमें विख्यात भयौ, याको सु ज्ञाता होइ तौ महासुख पावै । जगतमें जे नव रस बख हैं वे सब ही नव रस समयसार रसमें साने कहते सम हैं ॥१३१॥

दोहरा ।

प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होइ ।
नवरस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाने कोइ

अर्थ—प्रगटरूप संसाररूपमें यह बात प्रगट रूप है नाटक होइ सो नव रस मय होइ । पै शांत रसमें जो

अथ नवरसके नाम । कवित्त छन्द ।

प्रथम सिंगार-वीर दूजो रस,
तीजो रस करुना सुखदायक ।
हास्य चतुर्थ रौद्र रस पंचम,
छट्ठम रस बीभच्छ विभायक ॥
सप्तम भय अष्टम रस अद्भुत,
नवमो शांत रसनिको नायक ।
ए नव रस एई नव नाटक,
जो जहं मगन सोइ तिहि लायक ॥

अर्थ—अब नव रसको वर्णन करै है । अब नव रसके नाम कहै है—प्रथम शृंगार-रस, दूसरो वीर रस, तीसरो करुना जगतमें सुखदायक है । चौथो हास्य रस, पांचमो रौद्र रस, छट्टो बीभत्स रस विभाय कहतै चित्त रंगको करनहार है । सातमो भय रस, आठमो अद्भुत रस । नवमो शांत रस, सब रसनो नायक है । ए नव रस कहिये, एई नव नाटक होइ । जो जिहि रसमें मगन ह्वै रह्यो है सो रस तिनके लायक है ॥१२३॥

अथ नवरस अवस्था कथन। सवैया ३१ सा

सोभामें सिंगार वसै वीर पुरुषारथमें,
कोमल हिएमें करुना रस वखानिये।
आनन्दमे हास्य रुण्ड मुण्डमे विराजै रुद्र,
वीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये।
चितामें भयानक अथाहतामें अदभुत,
मायाकी अरुचितामें शांत रस मानिये।
येई नव रस भवरूप एई भावरूप,
इनिको विलेछिन सुदृष्टि जागें जानिये॥

अर्थ—अब नव ही रसके स्थाई भाव कहै है—सोभा विभूषामें श्रृंगाररसको वास है। अर्थ-साधनरूप पुरुषार्थमें वीर रसको वास है। हृदयके कोमलपनामें करुना रसको वास है। रन-संग्राम विषै रुण्ड मुण्ड बिखरे होंइ तहां रौद्र रसको वास है। कोई सूगामणी ठौर देख, मनमें ग्लानि आनिये, तहां विभच्छ रसको वासु है। चितामें भय रसको वासु है। जो कोऊ अथाह अघटमान वस्तु जानिये तहां

अद्भुत रसकौ वास है। जहां मायाकी अरुचि होइ तहां शांत रसकौ वास प्रमाण करियें। एई नव रस है सो नवरूप कहते समाररूप है। अरु एई नव रस भावरूप कहते भले भाव है। इन नव रसकौ विलेछिन कहते विवेक सो तौ जगतमें सुन्दिष्टि जानियें।

अथ—नवरस ज्ञानगर्भित एकीभूत कथन। छप्पय।

गुन विचार सिंगार, वीरउद्यम उदार रुख।
करुनासम रस रीति, हास हिरदै उछाह सुख।
अष्टकरम दल मलन, रुद्र वरत तिहि थानक।
तन विलेछ वीभच्छ, दुन्द मुख दशा भयानक।
अदभुत अनतवल चितवन, सांत सहज वैराग्य ध्रुव
नवरस विलास परगासतव, जव सुवोध घटप्रकट हुव

अथ— नव रस भावरूप ज्ञानमें गर्भित है सो एक ठौर दिखावे है ज्ञानादिक गुणमें आत्मा विभूषित देखिये, तहाँ तो श्रृंगार रस उपज्या। अरु आत्माके निर्जरा प्रमुख को उद्यम देखिये तहां तो उदार प्रधान वीर रस है। अरु याके उपशम रसके रीति देखिये तब तें याको करुना रस

समता जानिये । जब याके अनुभव में उछाह अरु सुख उपजे है सो तो हिये मे हास्य रस उपज्यो । महा बलवान आठ कर्मके अनतप्रदेशी दल है ताको महा मल करतो देखिये तो आत्मा रौद्र रस-मई होइ रह्यो है । जब तन मिलेछि कहता शरीर-स्वरूप विचारे है तब याके बीभत्स रस है। जब तो आत्मा अपनो स्वरूप न पावे है अरु दु द दशामें रयोहै तब तो भय रसमें देखिये । याके अनत वीर्य को जब चिंतवन कीजे तब तो आत्मा अद्भुत रस मय पाइये । जब वो राग द्वेष निवारिके सहज वैराग्य कौ ध्रुव निश्चल धारे है तब वो शात रसमय पाइये । नव भाव रसके विलासको प्रकाश तबहि होइ जब घटमें सुबोध प्रगट होइ ॥१३५॥

अथ ग्रथस्तुति । चौपाई छंद ।

जब सुबोध घटमें परगासे,
तब रस विरस विषमता नासे ।
नव रस लखें एक रस माहो,
तातै विरस भाव मिट जाही ॥१३६॥

अर्थ—अनकुदकुद आचार्यकृत ग्रथकी स्तुति करै है, अर प्रशसाकी बात कहै है—जब तौ घटमें सुबोध प्रकाशै है, तबतौ ए रस सहित है, ए विरस है ऐसौ जा विषमता भाव है सो सब नाशै। याको हेतु यहै नव रस है सो तौ एक भाव रस मे ही लखै। तातै विरस भाव मेटिकै, एक ही रसमें याकौ रहिवौ होइ ॥१३६॥

दोहरा

सवरसभित एक रस, नाटक नाम गरथ।
जाकै सुनत प्रवान जिय, समुझै पथ कुपथ १३७

अर्थ—सबही नवही रसमै गर्भित एक रस मई भयौ समयसार नाटक नामे गरथ श्री कुदकुद आचार्य कीन कीन्हों जाकै अर्थ भावका सुनत प्रमाण जीव है सो मार्ग कुमार्ग कौ समुझै। १३७।

चौपाई

वरतै ग्रथ जगत हित काजा,
प्रगटे अमृतचन्द्र मुनिराजा।
तब तिन्हि ग्रथ जानि अति नी

अर्थ—तौ यहु ग्रंथ अति ही सोभा पावै। वह ग्रंथतो मन्दिर भयौ याकै परि यहु स्याद्वाद का विस्तार कलशरूप होइ। तब अपने चित्तमें अमृतवचन गढ़िकै खोलै सो दोष रहित धरै, श्री अमृतचन्द्र आचार्य ऐसैं बालै॥ २॥

दोहरा

कुन्दकुन्द नाटक विषै, कह्यो दरब अधिकार।
स्यादवाद नय साधिमें, कह्यौ अवस्था द्वार ॥३॥

अर्थ—श्री कुंदकुंद आचार्य के कीन्हां नाटक ग्रंथ विषै जीव अजीव द्रव्यका अधिकार कह्यौ। अब मैं स्याद्वाद नयकी अवस्थाकी द्वार कहो। अरु साध्य वस्तुकी अवस्था की द्वार कहौ। ३॥

कहौं मुकति पदको कथा, कहौंमुकतिकौ पंथ।
जैसें घृत कारज जहां, तहं कारन दधि- मंथ।

अर्थ—साध्य सरूप मोक्ष पद और साधक स्वरूप मोक्ष मारग का कथन करता हूँ। जिस प्रकार कि घृतरूप पदार्थ की प्राप्तिके हेत दधि मथन कारण है॥ ४॥

चौपाई ।

अमृतचंद्र बोले मृदुवानी,
स्यादवाद की सुनो कहानी ।
कोऊ कहै जीव जग मांही,
कोऊ कहै जीव है नांही ॥ ५ ॥

अर्थ—श्री अमृतचन्द्र आचार्य ऐसे कोमल वानी बोलै अहो शिष्य ! स्याद्वादकी कथा कहानी सुनौ । कोऊ अस्तिवादी तो ऐसे कहै है—जो जगत में जीव वस्तु है । कोऊ नास्तिवादी, ऐसौ कहै हैं जु जीव वस्तु है नाहीं ।५।

दोहरा ।

एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग ।
छिनभंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥६॥

अर्थ—कोऊ अद्वैतवादी ब्रह्म एक रूप ही कहै । कोऊ नैयायिक वैशेषिक जीव अगनित पनै कहै । कोऊ बौद्धमत लियें जीवको क्षणभंगुर कहै । कोऊ सांख्यमत लियें जीवको सर्वथा अभंग ही कहै ॥ ६ ॥

दोहरा ।

न अनन्त इहि विधि कही, मिलै न काहू काइ ।
जो सब नै साधन करै, स्यादवाद है सोइ ॥ ७॥

अर्थ—अब समभिरूढनैं मार्ग सो नय कहिये । सो इहि विधि अनंत नय कहा । यामें काऊ नय काहू नय सौं मिल नाही विरोधी है अब इहा जो सबही नय सबही नयको साधन करै । इतनें सबही नय साची कहि दिखावें सोई स्याद्वाद जानिये ॥ ७ ॥

दोहरा ।

स्यादवाद अधिकार अब, कहो जैनको मूल ।
जाके जाने जगत जन, लहैं जगत जल कूल ८

अर्थ—तिहि स्याद्वाद को अधिकार कहो हों । यहु स्याद्वाद जैन आगमनको मूल है । तिहि स्याद्वादके अनन्त प्रमान जगतवासी लोग हैं सो जलधिको मूल कहतें तट सोई लहैं ॥ ८ ॥

अथ—प्रश्नोत्तर कथन । सवैया ३१ सा ।

शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीन कि पराधीन

जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिए ।
जीव है सदीव किधौ नाहीं है जगत माहि,
जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए ॥
सतगुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन,
एक अविनश्वर दरव दृष्टि दीजिए ।
जीव पराधीन छिनभंगुर अनेकरूप,
नाहीं जहा तहा परजै प्रमान कीजिए ॥ ६ ॥

अर्थ—अब नयके जालतैं शिष्यकौ संदेह उपज्यौ—तब प्रश्न करै है, शिष्यको गुरु कहै है—शिष्य पूछै है हे स्वामी ! जीव है सो स्वाधीन कहतं आप वश है कि पराधीन कहतै परवश है । अरु जीव एक है कि गिनती से अनेक है, ये कैसे मनमें मानिये । अरु जीव कहावै सो जगतमें सदीव कहत सदाही है कि है ही नहि । ये अस्तिपनाको संदेह है, । अरु जो जीव अस्तिपनै है तौ अविनश्वर कहतैं अविनाशी है कि नश्वर कहतं विनाशी कहिये है अब ऐसे प्रश्न पर सद्गुरु कहै है—हे शिष्य ! जन्म —
तभ है इतनै नास्ति न कहियै । अरु जीव

है। अरु एक कहतें गिनती यद्यपि अनेक है तोऊ लच्छण तें एक है—अविनाशी है। द्रव्य दृष्टि दीजै तब तौ ऐसे है। अरु जा पर्याय नय प्रमाण करिये तो यो जीव पराधीन है कर्माधीन है। अरु आवीचीमरण देखेंतें क्षणभंगुर है। गत्यादिक देखेंतें अनेक रूप है। अरु जीव पदार्थ स्थापना अपेक्षा पैं नाहीं है—जहां पर्याय प्रमाण है तहा यो है ॥ ९ ॥

अथ—द्रव्यक्षेत्रकालभाव अस्ति नास्ति कथन ।

द्रव्यक्षेत्र काल भाव च्यारों भेद वस्तु ही में,
अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये ।
परके चतुष्क वस्तु नास्ति नियत अग,
ताको भेद दर्व-परजाय मध्य जनिये ॥
दरवतौ वस्तु खेत सत्ताभूमि काल चाल,
सुभाव सहज मूल सकति वखानिये
याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपन,
विवहार दृष्टि अंश भेद परवानिये ॥१०॥

अथ – अब द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिके सब वस्तुको अस्ति नास्तिपनो कहै है—द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भाव ४ ए चारों भेद सब वस्तुमें विचारियै तब तौ सब वस्तु अस्तिरूप है। अरु पराये च्यार तें वस्तुकौ नास्ति स्वरूप निपजै है। इनमें परद्रव्य १ परक्षेत्र २ परकाल ३ परभाव ४ ते सब नास्तिरूप है। नियत अग स्हतें ए निश्चय नयतें अस्ति नास्ति है, याकौ भेद द्रव्य पर्यायमें जानिये। इन्हि चारों भेदमें द्रव्यते वस्तु कहिये, वस्तुको सत्ताकी भूमि-क्षेत्र कहिये, वस्तुके परिणाम चालसो काल कहिये, सहजकी मूल शक्ति सो स्वभाव कहियै। याही भांति बुद्धि कल्पना करिके परद्रव्य क्षेत्रादिकके विकल्प गहिये, जैसे घट वस्तु ग्रह तें पटादिकके द्रव्य, क्षेत्र काल, भावकी कल्पना तें नास्तिपनौ होइ। ए व्यवहार दृष्टितें वस्तुके अश भेद प्रमाण होहि ॥१०॥

अथ स्याद्वादको सात भग। दोहरा।

है नाहीं नाहा सुनै, है है नाहीं नाहि।
यहु सरवगी नय धनी, सब मानै सब मांहि ११

अर्थ—है नाही या कहिवे में स्वद्रव्यादिककी

पनौ ग्रहिकें, परद्रव्यादिककौ केवल नास्तिपनौ ही ग्रहि
नाहीं सु है या कहिवे में प्रथम पर द्रव्यादिककौ नास्ति
पनौ ग्रहिकें पीछें स्व द्रव्यादिककौ अस्ति-पनौ ग्रहियें ।
है कहिये में केवल स्व द्रव्यादिककौ अस्तिपनौ ही ग्रहि
नाही नाही कहिये में पर द्रव्यादिक कौ केवल नास्तिपनौ
ही ग्रहिये । याही तैं सु भग उपजै है । यहा सर्व
नयके धनी स्याद्वादी सर्ववस्तुमें सर्व भग मानैं है । १

अथ चतुर्दश नय एकांतपक्ष कथन नाम सवैया

ज्ञानकौ कारण ज्ञेय आत्मा त्रिलोकमय,
ज्ञेयसौ अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छाही है
जौलौ ज्ञेय तौ लौ ज्ञान सर्व द्रव्यमें विना
ज्ञेयक्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नाही, है
देह नसै जीव नसै देह उपजत लसै,
आतमा अचेतन है सत्ता अश माही है
जीव छिन-भ गुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान,
ऐसी ऐसी एकान्त अवस्था मूढ मांही है

अथ—अब १४ नयकै भेदतें एकांतपक्षकी जै

कथनी है तैसी कहै है—चौदह नयकी नाम स्थापना करै है, ज्ञेय वस्तुतें ज्ञानउपजै है तातें ज्ञानको कारण ज्ञेय है, ए नाम है १ तीनलोकप्रमाण आतमा है, तातें त्रिलोकमय ये नाम २, जैसे अनेक ज्ञेय है तैसे ज्ञान हू अनेक है, अनेक ज्ञान ए नाम ३, ज्ञानमें ज्ञेयकी छाया है सो मेल है—मेल ज्ञेय ए नाम ४, जौलों ज्ञेय है तौलों ज्ञान है ज्ञेयउपरान्त ज्ञान नाहीं जौलों ज्ञान ए नाम ५, सर्वद्रव्यमई विज्ञान है यो ही नाम है ६, नेय क्षेत्रके प्रमाण ज्ञान है, ज्ञेय क्षेत्र मान ए नाम ७, जीववस्तु जगतमें है नाहीं नास्ति जीव ए नाम ८, देहके नाश होत जीवकोऊ नाश है अरु देह उपजतै जीव हू लसै कहतें विराजै। देह नासै जीव नाश ए नाम ९, देहोत्पाद जीवोत्पाद ए नाम १०, आतमा है सो अचेतन पदार्थ है, अचेतन नाम ए नाम ११ सत्ताको अंशको जीव कहिये है, पै आतमा अंश मात्र ए नाम १२, जीव है सो क्षण भंगुर है—क्षणभंगुर ए नाम १३, ज्ञान है सो ज्ञायक स्वरूपी नाही अज्ञायक ज्ञान ए नाम १४, ऐसी ऐसी एकान्त अवस्था मूढ़ लोगनि के पासें है। १२।

अथ—ज्ञानको कारन ज्ञेय प्रथमनय कथन —

कोऊ मूढ कहै जैसे प्रथम सवारी भींति,
पाछै ताकै ऊपरि सुचित्र आछौ लेखियै ।
तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ,
तैसौ तहा ज्ञानरूप कारज विसेखियै ॥
ज्ञानी कहै जैसी वस्तु तैसोही सुभाव ताकौ,
तातैं ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखियै ।
कारन कारिज दोऊ एक ही मैं निहचै पै,
तेरो मत सांचो विवहार दृष्टि देखियै ॥१३॥

अर्थ—अब ज्ञान कौ कारन ज्ञेय प्रथम नय कथन—कोऊ मीमांसक सौ मूढ ऐसैं शिष्य लोगकूं समझावै है कहै है, जैसें पहलें भींति संभारी होइ तौ आछी परि आछै चित्र,औचुरी परितुरी होइ, तैसें ज्ञानकी उत्पत्तिकौ मूलकारन जैसौ घट पट प्रमुख पदार्थ होइ तैसौई तहा ज्ञानरूप कार्य विशेष होइ । जो घट पदार्थ जानिवा योग्य होइ तौ घट ज्ञान होय, तातैं ज्ञान कौ कारन ज्ञेय है । अब स्याद्वादी ज्ञानी

ऐसैं कहै ? अहो भैया। जो जैसी वस्तु है तासौं तैसो ही स्वभाव है। जो ज्ञान पदार्थ है तासौं तौ स्वभाव जानिवाही कौ है। ज्ञेय है सो जानिवा योग्य है, या अर्थ भेद तें ज्ञान अरु ज्ञेय ए दोऊ न्यारे पद देखियें है। यहा जा ज्ञेय करनपनें कह्यौ सोई ज्ञानविकल्प कह्यौ घटपटादिक जड पदार्थ दूर रह्यो। अरु ज्ञान है सोई सामान्यपनें ज्ञान है, तातें निश्चय तो ज्ञानही में ज्ञान ज्ञेय पाइयै। पै जो व्यवहार दृष्टि दीजै तौ तेरो ही मत साचो है ॥ १३ ॥

अथ—द्वितीय नय आत्मा त्रिलोक प्रमाण यह कथन

सवैया ३१ सा

कोऊ मिथ्यामती लोकालोकव्यापी ज्ञान मान,
समुझै त्रिलोक-पिंड आतम दरव है।
याहीतें सुछन्द भयो डोले मुखसौं न बोलै,
कहे या जगतमे हमारोही परव है ॥
तासौं ज्ञाता कहै जीव जगतसौं भिन्न पै,
जगतविकासी तोहि याहीतें गरव है।
जा वस्तु सो वस्तु [illegible] निरालौ सदा,

परिनयौ ज्ञानिकै मत भूल। ज्ञान है सो अगम्य वस्तु है अबाध्य है, निराबाध रस सौ भर्यौ है, ज्ञानकौ ज्ञायक स्वभाव है, ताते यद्यपि पर्याय शक्तितै ज्ञान अनकरूप भयो है तौह ज्ञायक स्वभाव तै ज्ञानकी एकता है, ति ह एकत्व सौं ज्ञान टरौ नाहीं ॥ १५ ॥

अथ—चतुर्थ, मेल ज्ञेय छाया यहु कथन। सवैया।

कोऊ कुधी कहै ज्ञान-माहि ज्ञेय को अकार,
प्रतिभासि रह्यो है कलंक ताहि धोइयै।
जब ध्यान जलसो पखारिकैं धवल कीजे,
तब निराकार सुद्ध ज्ञानमई होइयै ॥
तासो स्यादवादी कहै ज्ञान को सुभाव यहै,
ज्ञेयको अकार वस्तु माहि कहा खोइयै।
जैसे नानारूप प्रति बिंबको झलक दीखे,
जद्यपि तथापि आरसी विमल जोइयै १६

अर्थ—अब चौथी नय मेल ज्ञेय छाया याको प्रपंच कहि दिखाव है—कोऊ कुबुद्धि कहतें मिथ्यामती वैशेपिकमत वालौ ऐसौं कहै जा जगत वासी जीवके ज्ञान माही ज्ञेय

यो आकार प्रतिभासौ है तो आकार निराकार, ज्ञान कें कलक उपजे है। ताको धोयौ जोइये। तातें यहा निराकार को ध्यान लगावनौ सोई जल भयो, तासौं पखारिये ज्ञान को उज्ज्वल कीजे तब निराकार शुद्ध ज्ञान होइये। अब इहा स्याद्वादी तासौ कहे है- अहो भैया! ज्ञानकौ यहै स्वभाव है जो ज्ञेयको आकार वस्तु माही प्रतिभासै, इह आकार खोनखोको कहा मतलब है। जैसे आरसीमें यद्यपि नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीसै, तथापि कहते तौहू आरसी निर्मल कहते निर्मल ही जोइये। प्रतिबिंबकी कलक कोऊ न कही ॥ १६ ॥

अथ—पंचमनय जौलौ ज्ञेय तालौ ज्ञान यह कथन—

सवैया ३१ सा

कोऊ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम,
जौलौ विद्यमान तौ लौं ज्ञान परगट है।
ज्ञेय कें विनाश होत ज्ञान कौ विनाश होइ,
ऐसी वाके हिरदै मिथ्यातकी अलट है॥
तासौं समकितवत कहै अनुभौ

परजै प्रवान ज्ञान नानाकार नट है।
निरविकलप अविनश्वर दरवरूप,
ज्ञान ज्ञेय वस्तु सौं अव्यापक अघट है १७

अर्थ— अब पचमी एकांत - नय कहै, जौलौं ज्ञेय तौलौं ज्ञान, याकौ प्रपंच कहै है—कोऊ अज्ञ कहतें अज्ञान पुरुष ऐसौ कहै है, जैसौ ज्ञेयकौ आकार तैसोई ज्ञान परिनाम होइ, तातें ज्ञेय विद्यमान जौलौं होइ तौलौं ज्ञान हू प्रगट रहै। अरु ज्ञेय के विनाश भये ज्ञानकौ हू विनाश होइ। ऐसी या मिथ्यातीके हिये में मिथ्यातकी चलट लगी रहै है। अब तासौं सम्यकवत स्याद्वादी अनुभवकी कथा कहै है। अहा भया! जैसे कोऊ नट है सो नाना प्रकारके भेष धारिकै नाना प्रकार नाम धरावे, तैसें ज्ञानरूप नट हैसो नानाआकार धारिकै परजाय प्रमाणै बहुरूपी है। जैसै नट द्रव्य एक तैसे नान वस्तु निरविकल्प है, द्रव्यपनै अविनश्वर है। अरु ज्ञान वस्तु ज्ञेय वस्तु सौं अव्यापक है। इतनें ज्ञेय वस्तु ज्ञानमें एकमेक न होइ। ज्ञान ज्ञेयकी एकता अघटती है॥१७॥

अथ-९८ सर्व द्रव्यमय आतमा यह कथन, सवैया

कोऊ मन्द कहै धर्म अधर्म आकाश काल,
पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें ।
जानै न मरम निज मानै आपा परवस्तु,
बाधै दृढ करम धरम खोवै जग में ॥
समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासै तातैं,
परको ममत्व त्याग करै पग पग मे ।
अपने सुभावमे मगन रहै आठो जाम,
धारावाही पथिक कहावै मोख मगमें ॥१८॥

अर्थ—अब छहीं एकान्त नय सबद्रव्यमयी आतमा याको प्रपच कहि दिखावै है—कोऊ मंद कहते मूर्ख ब्रह्मा-द्वैतवादी ऐसौ कहै, जो काहूके मतमें धर्म, अधर्म, आकाश काल पुद्गल जीव ए छहौं द्रव्य कहावै है सो सब ही ब्रह्म है, यातें मेरो ही रूप और सर्व जगतमें विस्तर रह्यो है, और पदार्थ कोऊ नाहीं। यहा गुरु शिष्य ... अहो शिष्य ! ये जो ब्रह्माद्वैतवादी ...

अपना मरम न जानै है अरु परवस्तु है ताका आतमा ज्ञान है या मिथ्यात तैं ये दृढ कर्म बाँधै है । अरु अपनी अज्ञानमें धर्म मानै है । अपना सुभाव गमावै है । सम्यक्ती जीव होइ सोतौ सोह बीजके ध्यानतैं शुद्ध अनु भवका अभ्यास करै, तातै आत्मतत्त्व न्यारा ही पावै। तातैं परवस्तुकौ पग पगमें त्याग करै । अरु अपने शुद्ध स्वभाव में आठों जाम मगन रहै । याते ज्ञान धारामें वहनहारा मोक्षमार्गमें पथिक कहते बटाऊ कहावै ॥ १८ ॥

अथ सप्तम ज्ञेय क्षेत्र प्रमाणज्ञान वहुकथन । सवैया ।

कोऊ सठ कहै जेतो ज्ञेय रूप परवान,
तेतौ ज्ञान तातैं कहो अधिक न और है ।
तिहो काल परक्षेत्र व्यापी परनयौ मानै,
आपा न पिछानै ऐसी मिथ्यादृग दौर है ॥
जैनमती कहै जीव सत्ता परवान ज्ञान
ज्ञेयसौं अव्यापक जगत सिरमोर है ।
ज्ञानकी प्रभामें प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय,
जदपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठौर है १९

अर्थ—अब मतिमां एकान्त नय ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान याकौ प्रपंच कहि दिखावै है—कोऊ सठ कहत मूर्ख ऐसौ कहै है जितनौं एक वस्तुकौ आकाररूप कौ प्रमाण है, इतने ज्ञेयकौ जितना एक छोटो बडो प्रमाण है ते तौही ज्ञानको प्रमाण है। तातै अधिकौ और प्रमाण नाहीं ऐसैं ज्ञानको तीनौं काल विषै पर क्षेत्र व्यापी, अरु परसौ परिनयौ इतनैं ज्ञेय सो एकमेक भयौ ज्ञान मानैं पै ज्ञान कौ आत्मरूप पिछानै नाहीं। ऐसी मिथ्यादृष्टि की दौर है। अब यामौ जैनमती स्याद्वादी कहै है अहो भैया! जितने आकाश क्षेत्र में जीवसत्ता है, तितने ही प्रमाण ज्ञान है। अरु ज्ञान है सा घट पटादिक ज्ञेय पदार्थ सौ अव्यापक है। अरु इह जगतके मस्तक मुकुट समान है यद्यपि कहतें जा ज्ञानकी प्रभामें विविध कहतें नानाप्रकार ज्ञेय पदार्थ प्रतिबिंबित है रहे हैं। तथापि कहतें तोहू ज्ञानकी थिति न्यारी, अरु ज्ञेयकी थिति न्यारी। अरु ज्ञान की आतमा ठौर है। अरु ज्ञेयकी पृथवी प्रमुख ठौर न्यारी है॥

अथ—अष्टम नास्तिकवादो वस्तु नाहीं यहु कथन

सवैया ३१ सा

केई सुन्नवादी कहैं ज्ञेयको विनाश होत,
ज्ञानकौ विनाश होइ कहो कैसें जीजिये
ताते जीवतव्यताकी थिरता निमित्त अब,
ज्ञेयाकार परिनामनिकौ नाश कीजिये।
सत्यवादी कहे भैया हूजै नाहीं खेदखिन्न,
ज्ञेयसौं विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये।
ज्ञायक सकति साधि अनुभो दशा अराधि
करमको त्यागिकै परम रस पीजिये ।२०।

अर्थ—अब आठमी नास्तिक-वादी की वस्तु नाहीं यह एकांत नय है ताकौ प्रपंच कहि दिखावै है—केई बौद्धके भेद शून्यवादी ऐसे कहै है- ज्ञेय छतें ज्ञान उपजै है। अरु ज्ञेयके विनाश भये ज्ञानकौ हू विनाश होइ। अहो प्रतिवादी। तुम कहते हो ज्ञान जीवकौ रूप है तो ज्ञान के विनाश भये यातैं जीवको कैसें होइ, तातैं

जीवतव्यताकी, थिरताके कारन इतने शास्वत जीव राखिना, निमित्त ज्ञानमें जो ज्ञेयाकार परिनाम उपजै ताही की नाश कीजे तो जीवकी थिरता होइ। यन यासों मत्यवादी जैन कहै है। अहो भैया! ऐसे खेद खिन्न कहते आकुल व्याकुल होइये नाहीं। ज्ञेय सौं विरचिकैं उदासीन ह्वै कै, ज्ञान वस्तु भिन्न ही मान लीज। या ज्ञान की ज्ञायक शक्ति है, तिस शक्ति को साधन करिकै अनुभव दशा में, या ज्ञायक को आराधिकैं, या आराधिव तैं कर्मको त्यागिकै परम रस पीजिये।

अथ नवम नय, देहके नाश होत जीवको नाश, यों कथन

सवैया ३१ सा।

कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड,
जब देह नसैंगी तबहि जीव मरैगो।
छायाकोसौ छल किधौं मायाकोसो परपच,
कायामे समाइ फिर कायाकों न धरैगो॥
सुधी कहै देहसों अव्यापक सदीव जीव,
समो पाय परको ममत्त्व परिहरैगो।

अर्थ—दशमो एकात नय देह उपजै जीव उपजै याको प्रपच कहै है—कोऊ दुष्ट बुद्धिको धरन हारो, इसीमत वारो ऐसे कहैहै—पहले जीव हतो नहीं, यामे पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारभूतके मिलाप सो देह उपज्यो, यामें ज्ञान शक्ति अरु जीव हू आय उपज्यो, अब ज्योंलो देह धरतै है तौलो देहधारी नाम धरावै है। अब फेरि देह नसैगी तब अलख पुरुष जातिरूपी है तो जोति में समाइ जाइगी अब सद्बुद्धी कहै है अहा भैया! जीव अनादिकालको देहधारी है, इतनें नयो उपज्यो नाहीं। अरु ए जीव जबे काल पाइके ज्ञानी होइगो, तबतो देहादिक परवस्तु त्यागि के अपनो स्वरूप भजैगो। ऐसैं कर्म नसाइकैं परम पद पावैगो ॥ २३ ॥

अथ एकादश नय आत्मा अचेतन नय पक्षु कथन। सवया

कोऊ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेयके अकार,
परिनयो ज्ञान तातैं चेतना असत है।
ज्ञेयके नसत चेतना को नास ता कारन,
आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है॥

पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है,
ज्ञेयको अकार धरे ज्ञेय सो विरत है।
चेतनाके नास होत सत्ताको विनास होइ,
यातैं ज्ञान चेतना प्रवान जीवतत है ॥२४॥

अर्थ—अब ग्यारमीं एकांतनय आत्मा अचेतन याकी प्रपंच कहै है—कोऊ पक्षपाती कहतैं हठवादी जीव कहै है, ज्ञान है सो ज्ञेयकै आकार परिनयो होइ। अरु आकार परिनाम असत है। तातें चेतना हू असत है। अब असत पना कौ हेतु कहै है—जो ज्ञेय को नाश होत छतैं चेतना कौ नाश होइ। जो सत वस्तु होइ ताको तौ विनाश कबहुँ न होइ, तिस कारनतैं चेतना असत भई। अरु चेतन असत भए तीनोंकाल विषैं आत्मा अचेतन भयो, मेरे मत विषैं। अब पंडित स्याद्वादी कहै है। अहो भैया! ज्ञान वस्तु सहज स्वभावै अखंडित है। अरु ज्ञेयकौ आकार धरे तोहू ज्ञेय सों विरत कहते न्यारो है, जैसें आरसीमें भासे तोहू आकार रूप आरसी न होइ।

...ाश मानियै तो जीवकी ...

तौ जीव वस्तु असत होइ । याहीतैं जीव तत्व है, सो ज्ञान चेतना प्रमाण ते ही मानियें ॥ २४ ॥

अथ—द्वादशम नय अंश प्रमाण सत्ता यद्दु कथन
सवैया ३१ सा

कोऊ महामूरख कहत एक पिंड माहि,
जहांलौ अचित चित अंग लहलहे है।
जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप,
जेते भेद करम के तेतैं जीव कहे है ॥
मतिमान कहे एक पिंड मांहि एक जीव,
ताहीके अनंत भाव अंश फैलि रहे है।
पुग्गलसौ भिन्न कर्म जोगसौं अखिन्न सदा
उपजे विनसे थिरता स्वभाव गहे है ।२५

अर्थ—अब बारहमी एकांत नय अंश प्रमाण जीव सत्ता याकौ प्रपंच कहै है—कोऊ बौद्धमती महामूर्ख ऐसें कहै है, एक शरीर मांहि जहांलौं केई अचित्त अंग कहतै घट पटादिककै अचित्त विकल्प अथवा नर अमर तिर्यंचादि चित्त अंग सों सचित्त विकल्प लहलहे है । योग्य परि

नामसों योगरूप, भोग परिनाम सों भेतग्र रूंद्र ये दके नाना आकार रूप जिते कर्मके, कियाके नद होइ है तेतेही जीव के हैं, इतने जीव सत्ता अश प्रमाण न्द। अब नानि-मान कहतें बुद्धिवत स्यादवादी ऐसे कहै है—अहो भैया! एक पिंड मांहि एक ही जीव है। एक निपु जीव के ग्यान परिनाम करिकै अनत भाव नामनका अश होत रहै है, पै जीव है सो पुद्गल सों भिन्न है। अरु कर्म जोग सों अखिन्न कहते निराकुल है। या में भाव अश अनत उपजै है अरु अनत विनसै है, पै आतमा थिरता स्वरूप ही गहि रह्यौ है ॥ २५ ॥

अथ—त्रयोदशम नय प्रश्नयुत वाक यह कथन—

सवैया ३१ सा

कोऊ एक क्षिनवादी कहै एक पिंड माहि,
एक जीव उपजत एक विनसत है।
जाही समय अतर नवीन उतपत होइ
ताही समै प्रथम पुरातन वसत है।
सरवागवादी कहै जैसे जल वस्तु

सोई जल विविध तर गनि लसतु है।
तैसे एक आतम दरव गुण परजैसों,
अनेक भयो पै एकरूप दरसतु है ॥२६॥

अर्थ—अब तरहमी एकांत नय छिनभंगुर याकी, प्रपंच कहि दिखावें है—काऊ छनभंवादी ऐसें कहै है— एक पिंड माहि एक जीव उपजै है, एक जीव नसै है, जिम समय पिंड माहि एक जीव की उत्पत्ति होइ, तिस समय प्रथम पुरातन कहत पहिलो जीव है सोई वसै है पीछे नहि विनसै है, ऐसे शृंखलाबद्ध उपजै विनसै है। अब सर्वांगवादी जैनमती ऐसें कहै है—अहो भैया! जैसें ताल प्रमुख जलाशय विषै जल वस्तु एक है, सोई जल विविध तरंगनि करिकै लसतु है, विराजतु है। तैसे एक आतम द्रव्य है सो गुन पर्याय सों अनेकरूप भयो है तोहू एक रूप ही देखिये है॥ २६ ॥

अथ—चतुर्दश नय अज्ञायक ज्ञान यह कथन।

सवैया ३१ सा

कोऊ बाल बुद्धि कहै ज्ञायक सकति जौलौं

तौलौं ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये।
ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब,
तब अविरोध बोध विमल बखानिये॥
परम प्रवीन कहै ऐसी तो न बनै बात,
जैसें विन परगास सूरज न मानिये।
तैसें विन ज्ञायक सकति न कहावै ज्ञान,
यहु तो न पक्ष परतक्ष परवानियै॥२७॥

अर्थ—अब चोदमीं एकांत नय ज्ञान अज्ञायक याकौ प्रपंच कहि दिखावै है—जाकै बालककी सी तुच्छ बुद्धि है, ऐसैं कोऊ शून्यवादी तथागत कहै है—जौलो ज्ञायक शक्ति है तौलौ जगतमें ज्ञान अशुद्ध कहावै। याको यहु परमार्थ है जो ज्ञायकपनौ सो विकल्परूप है। अरु विकल्प तैं ज्ञान अशुद्ध होइ। यातैं निर्विकल्प ज्ञान शुद्ध है। जब ही भवितव्यताके वशतैं अपनी समय प्रस्तार पाइकै ज्ञायक शक्ति है सो मिटि जाइ, तबही अविरोध कहतैं विकल्प के विरोध सों रहित ऐसौ बोध कहतै ज्ञान सो

साध्यसाधक द्वार

अथ—प्रतिज्ञा दोहरा

स्यादवाद अधिकार यह, कह्यो अलप विसतार
अमृतचद मुनि अब कहै, साधक साध्य दुवार

अर्थ—श्री आचार्य ऐसे कहे हैं यह ग्रन्थ स्याद्वाद का अधिकार अलप विस्तारसों ही कह्यौ। अब या पीछें श्री अमृतचन्द्र आचार्य ग्रन्थमें साधक द्वार कहै हैं ॥१

अथ—साध्य साधक स्वरूप कथन। सवया ३१।

जाई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरलघु,
अभोगी अमूरतीक परदेशवत है।
उतपतिरूप नाशरूप अविचलरूप,
रतनत्रयादि गुन भेदसों अनत है।
सोई जीव दरब प्रमान सदा एक रूप,
ऐसो शुद्ध निहचै सुभाव विरतत है।

स्याद्वाद माहि साध पद अधिकार कह्यौ,
अब आगें कहिवेको साधक सिद्ध त है २

अर्थ—अब साध्य वस्तु अरु साधक वस्तकौ स्वरूप कहै है जो कोई जीव वस्तु है सो द्रव्यतैं अस्तिपनै, प्रमेय पनैं, अगरलघु पनैं, अभोगी पनैं, अमूतिक पनैं, प्रदेश त पनैं वर्तें है। सो नास्ति पनैं, नहीं यातै अस्ति पनै ज्ञान ग्रहिके योग्य यात प्रमेय पनैं, अपुद्गलीक पनाैं अगुरुलघुपनौ इत्यादिक धमदत है। उत्पत्तिरूप पर्याय तें विनाशरूप पर्याय नय ते, अविचलरूप तें, ज्ञान दर्शन चारित्र ए रत्न त्रेय कहियें इत्यादिक गुणके भेद सा थन त पनौ लिया वर्तें है। सोई जीव द्रव्य एक रूप ही सदा प्रमाण है। सा एकरूप-पना अस्तित्व प्रमेयत्वादिक धर्म करि आगे कह्या ही है। शुद्ध निश्चय नयतें याकौ ऐसौ स्वभाव दृष्टांत है सोई साध्य पद कह्यौ। इतने सा-धवा लायक वस्तु सो स्याद्वाद अधिकार में कह्यौ। अब आगे याके साधिवेकौ सिद्धांत साधक है। २॥

। दोहरा।

साध्य सुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महन्त।

साधिक अविरत आदि बुध, छीनमोह परजंत॥३॥

अर्थ—शुद्ध केवली-दशा, सो साध्य वस्तु कहिये। अथवा महत सिद्धपनौ, सो साध्य वस्तु है। चौथा अविरत गुणस्थान प्रमुख बारमौ छीन मोह गुणस्थान पर्यन्त ए नौ गुणस्थान के धनी, बुध कहतें पंडित ए सब साधक कहिये॥ ३॥

अथ—साधक अवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

जाकौ अधो अपूरव अनिवृत करनकौ,
भयो लाभ भई गुरुवचनकी बोहनी।
जाके अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ,
अनादिमिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी॥
सातौं परकिति खपी किंवा उपशमी जाकै,
जगी उरमाहि समकित कला सोहनी।
सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग,
प्रगटी सकति गुनथानक अरोहनी॥४॥

अर्थ—अनंत अवृतादि साधक की अवस्था कहै है—

जिन्हि जीवनकौ अधो कहता अध प्रवृत्त करनको, अरु अपूर्व करनकौ, अनिवृत्तकरनकौ लाभ भयौ। इतनें सम्यक्त प्राप्तिके ए तीन करण कारण हैं। अरु जिन्हिके गुरु वचन की मोहनी भई—इतनं गुरुउपदेश कौ लाभ भयौ। एन्हि भयतें जाके अनंतानुबंधी क्रोध १ अनन्तानुबंधी मान २ अनंतानुबंधी माया ३ अनंतानुबंधी लोभ ४ अनादिकी मिथ्यात मोहनी, मिश्र मोहनी, सम्यक्त मोहनी ए सातों ही प्रकृति जाके क्षय भई अथवा सातों में कछु खपीं, कछु उपशमीं ऐसें जाके हिये में सुहावनी समकित कला जागी सोई जीव मोक्ष कौ साधक कहते साधनहारौ कहावो। ताके सरव अ ग—इतनें बाह्य अभ्यंतर अ गमें गुन थानक अरोहनी कहतें गुणस्थान चढवाकी शक्ति प्रगटी ॥ ४ ॥

सोरठा।

जाको मुकति समीप, भई भवस्थिति घटगई।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन५

अर्थ—जाकौ भवत्व परिपाक तैं मुक्ति समीप भई, भवस्थिति घट गई है तिन्हि पुरषकी मनसा सीप समान

भई। तहां सद्गुरु मेघ समान भयो। ताके वचनका मनसा सीपमें मोतीछ अमोलिक भये॥ ५॥

अथ–गुरुप्रशंसा। दोहरा।

ज्यों वरषे वरषा समै, मेघ अखंडित धार।
त्यों सद्गुरु वाणी खिरे, जगत जीवहितकार॥६॥

अर्थ—अब सद्गुरुको मेघ उपमाकरिकै कहै है जैसें वरषा कालविषैं मेघ होइ सो अखंडित धारायें वरषे। तैसें सद्गुरु होइ सो जगत-वासी जीवको, हितकारक अमृत-वानी खिरे॥ ६॥

अथ–उपदेश कथन। सवैया २३ सा।

चेतनजी तुम जागि विलोकहु
लागिरहे कहा मायाके ताईं।
आए कहींसौं कहीं तुम जाउगे,
माया रहेगी जहांई तहांई॥
माया तुम्हारी न जाति न पातिन,
वसकी वेलि न असकी झाई।

दासी किये विन लातनि मारत,
ऐसी अनीति न कीजे गुसाईं ॥ ७॥

अर्थ—अब सद्गुरुको उपदेश आक्षेपनी धर्मकथा कहै है—अहोजीव! चेतन तुम मोह निद्रा छाड़िके जागौ। अरु सत्य स्वरूप देखो। मायारूप सम्पदासो कहा लागि रहे हो। पृथवी प्रमुख अठारह भार दिशि तामैं तुम कहीं सौं आये हो अरु कहीं दिशि को जावोगे। अरु जिन्हि सों तुम राचि रह्यो हौ, सो तौ माया जाल सम्पदा जहाकी तहा ही रहेगी। ये माया तुम्हारी जाति नाहीं, पाति नाहीं। अरु ए माया तुम्हारी वंश की वेल नाहीं। अर तुम्हारे अंश एक देश की भाई नाहीं। तातें तुम्हारे अरमाया के सम्बन्ध तौ काऊ नाहीं। अर तुम अपनी कर जानो हो। तातें ये कहावत मांची करी हो। दासी किया बिना ही लातनि मारो हो तो यातें उतपात होइगो। तातें हे वडे पुरष! ऐसी अनीति न कीजे॥ ७॥

। दादरा।

माया छाया एक है, घटै वढै छिन

इन्हकी संगति जे लगे,तिन्हहि कहू सुख नां

अर्थ—माया अरु छाया एक सी है, चणमें वढ़ै चणमें घटै है तातैं इस माया की संगति सों जो ल रहे है तिन्ह को कहा ही सुख हाव नाहीं ॥ ८ ॥

। सवैया २३ सा ।

लोगनिसौं कछु नातो न तेरौ न,
तो सौं कछुइ लोगनि को नातौ ।
एतौ रहे रमि स्वारथ के रस,
तू परमारथ के रस मातौ ॥
ये तनसौं तनमे तनसें जड,
चेतन तू तिनसौं नित हातौ ।
होहु सुखी अपनो वल फोरिकै,
तोरकै राग विरोध कौ तांतौ ॥ ६

अर्थ—पुत्र पुत्र कलत्रादिक अपने करि मोतौ विडानै लोग ज्यों है, इन्हि लोगनितैं तेरो कछु नाहीं । अरु इन्हि लोगनिसौं तौ सौं कछु नातौ

येजु पुत्र कलत्रादिक लोग हैं सो ता अपने स्वारथके सरतैं तो,सौ रमि रहे हैं। अहो चेतन! तू तौ अपने चेतना रूप परमारथ रस में माच रह्यौ है। एजु लोग हैं सोतौ तन सौं तन्मय हो रहे हैं। इतनै तेरे शरीर सों मोहित हैं। अरु शरीर ज्यों जड है अरु तू तौ चेतन है। तातैं तिन्ह जटतें तेरे सदा हांतौ रहतै भिन्न है। याही तैं अपनौ नल फोरिकै सखी होउ। राग अर द्वेष मोह कर्म कौ तातौ तोरिकै॥ ६॥

सोरठा।

जे दुरबुद्धी जीव, ते उतग पदवी चहैं।
जे समरसी सदीव, तिन्हकौ कछू न चाहिये॥१०॥

अर्थ—जे जीव रागतैं दुष्ट-बुद्धि है रहे हैं तेतौ इन्द्रादिक की ऊंची पदवी चाहैं हैं अर जेसदाही समरस भावमें रहै हैं तिन्हकौ कछु ऊंच पदवीकी चाह होव नाहीं।१०।

सवैया ३१ सा।

हांसीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे
गामें मरन गुरुवर्तन में हीनता।

शुचिमें गिलानि वसे प्रापति में हानि वसे,
जयमें हारि सुन्दरदशामें छविछीनता ॥
रोग वसे भोगमें स योग में वियोग वसे,
प्रीतिमें अप्रीति वसे सेवा माहि दीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ११

अर्थ—दासी को भली सी जानिये है पै यामें विषाद वसे है। विद्याको भली सी जानिये है पै यामें विवाद झगड़ा है। काया भली सी जानिये है, पै यामें मरन दोष है। गुरवाई बड़ाई भली सी जानिये है पै यामें कछू हीनता है। पवित्रताई भली सी जानिये है पै यामें आदिके अंत दुगुञ्छा (ग्लानि) उपजै है। प्राप्ति भली सी जानिये है पै याके संग हानि लगी रहै है। जीतवो भलौ है पै संग हारिवौ हू लाग्यौ है। ज्ञानी की सुन्दर दशा भली है पै अन्तमें छवि कांति छवि छीन हो जाइ है, भोगको सुख भलौ है प यामें रोगकी उत्पत्ति है। इष्टको संयोग भलो सौ है पै याकै संग वियोग तैयार है, प्रेम प्रीति भली सी है पै

याके संग अहित हू उपजै है, राज सेवा भली सी जानिये है पै यामें दीनपनौं वसै है। और हू जगत रीति भली सी जानिये है सो तो सब अन्तर भूत असाता सहित है, तातैं अकेली उदासीनता माता की सहेली है। यातैं समरस भाव श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥

दोहरा।

जिहि उतंग चढि फिर पतन, सो उतंग नहिं कूप।
जिहि सुखमें फिर दुखवसे,सो सुख ही दुखरूप१२

अर्थ—जिहि उतंग ठौर चढिकै फेरि नीचौ परिगौ होइ तौ सो उतंग ठौर न कहावै, वह ठौर कुआ ज्यौं कहावै। जिहि सुखमें फेरि दुख आनि वसे सो तौ सुख ही दुख रूप कहावै ॥ १२ ॥

दोहरा।

जो विलसै सुख सम्पदा गए ताहि दुख होइ
जो धरती वहु तृनवती,जरे अगनिसों सोइ १३

अर्थ—जो सुख सपदा विलसै है तौ वाकै गये तोहि दुख होइ है दृष्टांत जो तृणवत धरती है सो तौ अग्नि सों

जरै अर तृण विना काको जालै ॥ १३ ॥

। दोहरा ।

सबद माहि सदगुरु कहें प्रगटरूप जिन धर्म ।
सुनत विचच्छन, सरदहै मूढ न जाने मर्म १४

अर्थ—सद् गुरु कहै सो जिन धर्म) वद कहै । इतनें वचन सों वखानै, या जिन धर्मको सुनत विचच्छन होइ सो तौ सरदहै अर मूर्ख होइ, सो तौ याकौ मरम न जानें ॥ १४ ॥

अथ—उपदेश रुचि कथन । सवैया ३१ सा ।

जैसे काहू नगरकेवासी द्वै पुरुष भूले,
तामें एक नर सुष्ट एक दुष्टउरको ।
दोउ फिरैं पुरके समीप परे दोनु वट,
काहू ओर पथिक सों पूछैं पथ पुरको ॥
सो तौ कहै तुम्हारो नगरहै तुम्हारे ढिग,
मारग दिखावै समुझावै खोज पुरको । ।
एते पर सुष्ट पहिचानें पै न मानें दुष्ट,

हिरदै प्रवान तैसे उपदेश गुरुको ॥१५॥

अर्थ—अब किन्हीं कों उपदेश की रुचि है अरु किन्हींकों रुचि नाहीं याको स्वरूप कहे है। जैसे काहू नगर के वासी दोय पुरुष नगरसों निकलके दिशा भूलगए तिनिह दोनों पुरुषन में एक तो सुद्द कहतें हियको सरलसुभाव अरु एक हिए को दुष्ट होवो, वे दोनु पुरके समीप फिरने लगे। दोनों मारगके परे रहें थके, काहू और बटाऊ सों नगरको मारग पूछने लागे। तब सो तो कहने लागो अहो लोगो! तुम्हारो नगर तो तुम्हारे ढिग ही है वा दोनु कों मारग दिखावे। अरु पशून के खोजसे समुझावे। एतेपरि सरल हीयेको है सो तो साचि पहिचानें, पै दुष्ट हियेको है सो न मानें। तैसे गुरु उपदेश है सो तो पुरुष के हृदय प्रमाणतें होइ॥ १५॥

सवैया ३१ सा।

जैसे काहू जगलमें पावसकी समै पाय,
अपने सुभाव महामेघ वरषतु है।
आमल कषाय कटुतीखन मधुर खार

डू घा अगम अगाध है, वचन अगोचर सोइ१६

अर्थ—जाकी उत्कृष्ट दशा बन रही है, तामें कोऊ कलकरूप कर्म न पाइये। ऐसैं कोऊ अगम अगाध पद, इतनै सिद्धि पद। अरु जाकौ सरूप वचन योगते कह्यौ न जाय, ताते वचनअगोचर है सोई डू घा कहिये ॥१६॥

अथ—चू घा कथन। दोहरा।

जो उदास ह्वै जगत सों, गहै परम-रस प्रेम।
सो चू घा गुरुके वचन, चू घे वालक जेम २०

अर्थ—अब चू घाकौ लछण कहै हैं- जाइजीव जगत सौं उदास ह्वै रह्यौ है अर जो परम दशा को जो रस है ताकौ प्रेम सवाद कौं ग्रहै है, इतने उत्कृष्ट दशा भावे है, सो तौ गुरुके वचनकौं ज्यों चू घे है अरु पुष्ट होय है सोई चू घा कहिये ॥ २० ॥

अथ सू घा यथा। दोहरा।

जो सुवचन रुचिसौं सुने, हिये दुष्टता नाहि।
परमारथ समुझै नहीं, सो सू घा जगमाहि २१

अथ—अब सू घाकौ लछण, कहै हैं— जो रुचि

करिके आगम के अंगके सुवचन का सुनै है, अर हिये में दृढ़ता नाहीं, पै वह सूक्ष्मतत्त्व को न समुझै सोई जगतमें ऊ घा कहिये ॥ २१ ॥

अथ ऊघा । दोहरा ।

जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट
सो ऊ घा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२२॥

अर्थ—अब ऊघाको लक्षण कहैं हैं—जाको विकथा वचन हितकारी लगें, आगम अनिष्ट लागै है। सो तौ विकल विषयी जीव ऊ घा कहिये, वह दोषवत, रोषवत पापकर्मी ही रहै ॥ २२ ॥

अथ घू घा दोहरा

जाकै वचन श्रवण नहि,
नहिं मन सुरति विराम ।
जडतासों जडवत भयौ
घू घा ताको नाम ॥ २३ ॥

अर्थ—अब घू घाको लक्षण कहैं हैं—जाके वचन नाहीं इतनै एकेन्द्रिय है अरु जाकै श्रवण नाहीं,

दायक है, पापके मूल है दुर्गति के भाई है इतनें नरक तिर्यंच गतिके सहाई है ॥ २७ ॥

अथ । दोहरा ।

दरवित ये सातौ विसन, दुराचार दुखधाम ।
भावित अतर कल्पना, मृषा मोह परिणाम२८

अर्थ—एजु क्रियारूप सातौ व्यसन कहे सोतौ दरवित कहतें द्रव्यरूप हैं । ए दुष्ट आचाररूप दुखकौ धाम कहतें घर हैं । अरु हृयेके अ तर मृषा कहते झूठी मोह परिणाम की जो कल्पना कहतें विचार, व्यावना होतु है सो भावै, भाव व्यसन कहिये ॥ २८ ॥

अथ भावित व्यवस्था कथन । सवैया ।

अशुभ हारि शुभ जीति यह दूत कर्म ,
देहमें मगनताई यहै मास भखवौ ।
मोहकी गहलसौं अजान यहै सुरापान,
कुमतिकी रीति गनिकाकौ रस चखिवौ ॥
निरदइ हो प्रानघात करिवो यहहै सिकार,
परनारी सग परबुद्धिको परखिवौ ।

प्यारसों पराई सौंज गहवेकी चाह चोरी,
एई सातों विसन विडारैं ब्रह्म लखिवोर२६

अर्थ—अब भावित सात व्यसनकी व्यवस्था कहै है—अशुभ कर्मके उदयमें हार मानिये है अर शुभ कर्मके उदय में जीत मानिये है सो तौ घूत कर्म कहते जूवा खेलिवो है१। देह परिमानता हीरहै सो तौ मासभक्षण जानिवो २ । मोह कर्ममें मूर्छित है रहो नांव अग्यान है रहो सोई सुरापान व्यसन है ३ । कुबुद्धिकी रीति चालिवो सो वो गनिकाकहिये वेश्या ताके रसको चखवो है ४ । निर्दय परिणाम राखिकै प्राण-घात करिवो सो ही सिकार खेलवो है ५ । पररूपजो पुद्गलादिक ताके युद्धकोपरिखवो सोतो परनारीसेवा व्यसन है ६ । पराई सौंज कहतें सामग्री ता पर प्यार प्रीति राखिकै गहिवेकी चाह राखे सोई चोरी ७ भई । एई भावित सात व्यसन विडारे ने ब्रह्म लख्यौ जाय ॥ २६ ॥

अथ—साधक व्यवस्था । दोहरा ।

त्रिसन भाव जागे नहीं, पौरस अगम अपार ।
किए प्रगट घट सिंधु मथि, चौदह रत्तन

अर्थ—अब मोक्ष साधक की व्यवस्था कहै है-जाके चित्त में व्यसन भाव पाइये नहीं अरु अगम अपार पुरुषारथ पाइये, घट पिंड रूप सिंध कहते समुद्र मथिकै उदार कहते अमोलिक ए चौदह रतन प्रगट कीने ॥ ३० ॥

अथ—चौदह रतन को वर्नन । सवैया ३१ ।

लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभुति कौस्तुभ मणि,
वैराग्य कलपवृक्ष श ख सुवचन है ।
ऐरावत उद्यम प्रतीति रभा उदै विष,
कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥
ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य,
शुद्ध भाव चन्द्रमा तुरगरूप मन है ।
चौदह रतन ये प्रगट होइ जहा तहा,
ज्ञानके उद्योत घट सिंधु को मथन है ३

अर्थ—अब भावित चौदह रतन को वर्नन करै है-सुबुद्धि उपजी सो लक्ष्मी उपजी १ । आत्माकौ अनुभव उपज्यौ सो तौ कौस्तुभ मणि उपजी २।वैराग्य उपज्यौ सो

कल्पवृक्ष उपज्यो ३। भाषा समिति उपजी सो शख रत्न उपज्यो ४। उद्यम उपज्यो सो ऐरावत हाथी उपज्यो ५। प्रतीति उपजी सो रंभा उपजी ६। कर्मको उदयसो तो विष उपज्यो ७। कर्म निर्जरा होइसो कामधेनु उपजी ८। आनद उपज्यो सो सुधा कहते अमृत घन उपज्यो ९। ध्यानउपज्यो सो चाप कहते सार ग धनुष उपज्यो १०। प्रेम रीति कहते लय उपजी सो मदिरा उपजी ११। विवेक उपज्यो सो धन्वन्तरि वैद्य उपज्यो १२। शुद्धभाव उपज्यो सो चन्द्रमा उपज्यो १३। मनशुद्ध भयो सो सप्तमुखी घोड़ा उपज्यो १४। ए चौदह रतन तहां प्रगट होतु हैं जहां ज्ञान के उद्योत भए वे अपने घट रूप समुद्र को मथन होतु है ॥ ३१ ॥

अथ—दोहरा।

किए अवस्था मे प्रगट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागे कछु सग्रहे, विधि निषेधकी चाल ॥

अर्थ—साधक की अवस्था में ए चौदह रतन रसाल प्रगट कीने, ए चौदह रतनन में विधि निषेधकी चालि लगे, इनमें हेय उपादेयकी चालिमें कछु त्यागे है, कछु सग्रहे ३२

कल्पवृक्ष ऊग्यौ ३ । भाषा समिति उपजी सो शंख रत्न उपज्यौ ४ । उद्यम उपज्यौ सौ ऐरावत हाथी उपज्यौ ५ । प्रतीति उपजी सो रंभा उपजी ६ । कर्मकौ उदयसौ तौ विष उपज्यौ ७ । कर्म निर्जरा होइमो कामधेनु उपजी ८ । आनद उपज्यौ सो सुधा कहत अमृत धन उपज्यौ ९ । ध्यानउपज्यौ सो चाप कहते सार ग धनुष उपज्यौ १० । प्रेम रीति कहते लय उपजी सौ मदिरा उपजी ११ । विवेक उपज्यौमो धन्वन्तरि वैद्य उपज्यौ १२ । शुद्धभाव उपज्यौ सोचन्द्रमा उपज्यौ १३ । मनशुद्ध भयौ सो सप्तमुखी घोड़ा उपज्यौ १४ । ए चौदह रतन तहा प्रगट होतु हैं जहा ज्ञान के उद्योत भए त अपने घट रूप समुद्र को मथन होतु है ॥ ३१ ॥

अथ—दोहरा।

किए अवस्था में प्रगट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागे कछु सग्रहे, विधि-निपेधकी चाल ॥

अर्थ—साधक की अवस्था में ए चौदह रतन रसाल प्रगट कीने, ए चौदह रतनन में विधि निपेधकी चालि लगे, इतने हेय उपादेयकी चालिमें कछु त्यागै है, कछु

अथ—आठ रत्न हेय, षट उपादेय यह कथन—

रमा शंख विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय।
मणि शंख गज कलपतरु, सुधा सोम आदेय॥

अर्थ—रमा कहतें लछमी सो तौ सुबुद्धि १, सुवचन शंख २, उदय विष ३, ध्यान धनुष ४, प्रेमप्रीति मदिरा ५ विवेक वैद्य ६, निर्जरा कामधेनु ७, मन घोड़ा ८ ए तौ आठ हेय हैं अस्थिर हैं तातैं छोड़िवा योग्य हैं, अनुभव मणि १, प्रतीतिर मा २, उधम हाथी ३, वैराग्य कल्पवृच्छ आनन्द सुधा ५, शुद्ध भाव चन्द्रमा ६ ए छह रतन उपादेय कहते ग्रहिवा योग्य है॥ ३३॥

दोहा

इह विधि जो परभावविष,वमै रमै निजरूप।
सो साधक शिव पथको, चिरवेदक चिद्रूप३४

अर्थ—इहि भांति सों पररूप जो कर्मादिक भाव हैं सोई विष भयौ ताकौ जो वमै है इतने त्यागे है अरु अपने स्वरूप में रमै है, सोई पुरुष शिव पथ को साधक जानिये ज्ञान भाव को जाननहार और ज्ञान स्वरूपी साधक॥३४

अथ—साधक व्यवस्था कथन कवित्त छन्द ।

ज्ञान दृष्टि जिन्ह के घट अन्तर,
निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ।
जिन्ह के सहज रूप दिन दिन प्रति,
स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥
जे केवलि-प्रणीत मारग मुख,
चित्त चरण राखे ठहराय ।
ते प्रवीण करि क्षीण मोहमल,
अविचल होइ परम पद पाय॥३५॥

अर्थ—मोक्ष पद साधक की अवस्था कहै है—जिन्हि के घट भीतरि ज्ञान की दृष्टि जागी तातैं द्रव्य को देखे जानैं, ता परि गुण जाने, अरु गुणपर्याय जानै, अरु जिन्हि के सहज रूप ही इतनें भव्यत्व परिपाक तैं सहजें ही दिन दिनके विषैं स्याद्वाद की साधन अधिक होइ रह्यो है । अरु जो केवली के कहे मारग के सन्मुख हुइ रहे, याही चित्त राखै अरु याही मारग विषैं चरन ठहराय राखै । तेई [illegible]न कौं क्षीण करिकै तन परमपद

पद सो पाइकै अविचल होहि ॥ ३५ ॥

अथ -सम्यग्दृष्टि व्यवस्था। सवैया ३१ सा।

चाकसौ फिरत जाको ससार निकट आयो,
पायो जिन्हे सम्यक मिथ्यात्व नाश करिकैं।
निरद्व द मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन्हे,
कीनी मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिकैं॥
सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,
गयो ताकौ करम भरम रोग गरिकैं।
मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने तातैं
डोले जग जालमें अ'नत काल मरिकै ॥३६॥

अर्थ—अब सम्यक् दृष्टी की व्यवस्था अरु मिथ्यादृष्टीकी व्यवस्था कहे है—जैसे रात्रिसमय चकरी फिरतहा रहै तसे फिरते जाको ससारको अ त निकटही आयौ। अरु जिन्हि सम्यक्त्व पायो मिथ्यात्वकौनाशकरिकै निरदु द कहतैं रागद्वेषादिक रहित ऐसी मनसा रूप भली भूमिका जिन्ह साधि लीन्ही अर ध्यान धरिकै अपनी अवस्था मोक्ष

पद के कारण रूप कीन्ही सोई सम्यग्दृष्टी शुद्ध अनुभव कौ अभ्यासी भयौ। जैसे कर्मरोग गलिकें अविनाशी कहतें विनाश रहित भयौ जन्म मरण ते टर्‌यौ सिद्ध भयो। ऐसे सम्यग्दृष्टि पाये विना मिथ्यामती अपनौस्वरूप पिछानेंनाहीं तातें अनतकाल लों जगत जालमें डोले॥ ३६॥

अथ—अनुभवी विलास। सवैया ३१ सा।

जे जीव दरव रूप तथा परयाय रूप,
दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है।
जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा,
विषैसों विमुख व्हे विरागता वहत है॥
जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भावदोउ भावनिकों,
अनुभौ अभ्यासविषे एकता करत है।
तेई ज्ञान क्रिया के आराधक सहज मोक्ष
मारग के साधक अवाधक महत है ३७

अर्थ—अब जिन्हि आत्माकौ अनुभव पायौ है विलास कहे है, जे केई जीव दरवरूप कहतें

परजाय रूप कहतै पर्यायार्थिक नय ए दोनौ नय प्रमान करिकै वस्तुकी शुद्धताको ग्रहै हैं जे रागद्वेष मोह सों आत्मा म अशुद्ध भाव हुते ताके सर्वथा त्यागी भये याही तै पच इन्द्रीनिके विषय ते विमुख ह्वै के विरागता वहने लागै। अरु जे जे चौदह रतन में ६ भाव ग्राह्य कहतै ग्राहिवायोग्य हैं। अरु ८ भाव त्याग योग्य हैं—इतनै ८ हेय हैं, ६ उपादेय हैं सो अनुभव के अभ्यासविषै दुहों चारित्र की एकता जो द्रव्य ही में दृष्टि रही, पै पर्यायदृष्टि न रही ऐसे एकता कहति है। तई जीव ज्ञान क्रिया मोक्षकौकारन कह्यो है। ताके आराधक भये अरु गहन रूप में मोक्ष मार्ग के साधक भये। फेरि याके कर्म बाधा न होइ तातै अबाध्य भये, महित भए पूजित भए॥ ३७॥

अथ—ज्ञान क्रिया एकता कथन। दोहरा।

विनसि अनादि अशुद्धता, होय शुद्धता पोख।
ता परिणतिकों बुध कहैं,ज्ञानक्रिया सो मोख।

अर्थ—अब कोऊ ज्ञान क्रिया कों भिन्न भाव मानै है सो याकी एकता कहि दिखावै है—अनादि कालकी जो अशुद्धत है सो विनाश पाइकै तहा शुद्धता कौ पोख होइ है। य

कछु आत्मा की परनति है सोई ज्ञानक्रिया कहानी ताको
सुध कहते पंडित ऐसे कहै 'ज्ञान क्रिया सौं मोक्ष होइ'।
इहा शब्द नयते ज्ञानक्रिया की दुविधा लखावै है।

दोहरा।

जगी शुद्ध सम्यक कला, वगी मोक्षमग जोय।
वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय॥३९॥

अर्थ—जाके शुद्ध समकित की कला जागी अरु जाई कला मोक्ष के मुख कौ जाइ वागी, वह पूरब कर्म्म कों चूर्ण करिकै क्रमि क्रमि पूर्ण होय॥ ३९॥

अथ-ज्ञान द्रव्य व्यवस्थापना। दोहरा।

जाके घट ऐसी दशा,साधक ताको नाम।
जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारोधाम।४०।

अर्थ—अब गुण गुणीकौ अभेदकरिकै ज्ञान गुण कों द्रव्य थापै है—जाके घट में ऐसी दशा हुइ रही है तिहिं पुरुष को साधक नाम होइ। जैसे दीपक कौ उजियारो भए धाम कहते घर हू उजियारो होइ, तैसे ज्ञान क्रिया तो मोक्ष साधक है पै ज्ञानक्रिया धरत, पुरुष हू साधक होइ ४०

अथ ज्ञान फल वर्णन । सवैया ३१ सा ।

जाके घट अतर मिथ्यात अन्धकार गयौ,
भयो परगास शुद्ध समकित भान कौ ।
जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी,
जान्यो जिनि मरम अवाची भगवानकौ॥
जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्या,
लग्यो सुख पोख समरस सुधा पान कौ ।
ताही सुविचच्छन को ससार निकट आयौ,
पायो तिनि मारग सुगम निरवानकौ ४१

अर्थ— अब ज्ञानकौ फल कहै है—जाके घट भीतरि अनादि कालकौ मिथ्यात अधकार हुतौ सो गयो । अरु शुद्ध समकित रूप सूर्य,कौ प्रकाश भयो । रागद्वेष रूप मोह निद्रा जाकी घट गई । ममता रूप पलक लगी थी सोऊ फटि गई, तातें जिनि अवाची भगवान कौ इतनै सिद्ध स्वरूप कौ मर्म पायौ । जाकौ ज्ञान कौ तेज वग्यौ सो प्रकाश भयौ, प्रधान उद्यम जाग्यो । अरु उपशम रूप अमृत पान कौ सुख पोख लग्यो तिन्हि सुविचच्छन

पुरुष कौ संसार निकट आयौ तिन्हि तो सुगम रात में निर्वाध रहते मुक्ति कौ मारग पायौ ॥ ४१ ॥

सवैया ३१ मा

जाके हिरदे में स्यादवाद साधना करत,
शुद्ध आतमा को अनुभौ प्रगट भयो है।
जाकौ सकलप विकलप को विकार मिटि,
सदा काल एकीभाव रस परिनयो है ॥
जातैं बंध विधि परिहार मोख अंगीकार,
ऐसो सुविचार पच्छ सोऊ छांडि दयो है।
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
सोई भवसागर उलंघि पार गयो है ॥४२॥

अर्थ—जाके हियें में स्याद्वाद स्वरूप साधना होते शुद्ध आत्मा कौ अनुभव प्रगट भयौ है। अरु जाके सकल्प विकल्प कौ विकार बहुभातिको हुतो सो मिटिके सदा काल विषें एक चेतना रसरूप जो एकीभाव रस तिनपनै परिनयो तिन्हि परिनमनितें बंध विधि कौ परिहार औ

अथ ज्ञान फल वर्णन । सवैया ३१ सा ।

जाके घट अतर मिथ्यात अन्धकार गयौ,
भयो परगास शुद्ध समकित भान कौ ।
जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी,
जान्यो जिनि मरम अवाची भगवानकौ॥
जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्या,
लग्यो सुस पोख समरस सुधा पान कौ ।
ताही सुविचच्छन को ससार निकट आयो,
पायो तिनि मारग सुगम निरवानकौ ४१

अर्थ— अब ज्ञानको फल कहै है—जाके घट भीतरि अनादि कालको मिथ्यात अधकार हुतो सो गयो । अरु शुद्ध समकित रूप सूर्य की प्रकाश भयो । रागद्वेष रूप मोह निद्रा जाकी घट गई । ममता रूप पलक लगी थी सोऊ फटि गई, तातें जिनि अवाची भगवान की इतनें सिद्ध स्वरूप को मर्म पायौ । जाको ज्ञान कौ तेज वग्यौ सो प्रकाश भयौ, प्रधान उद्यम जाग्यो । अरु उपशम रूप अमृत पान सौ सुस पोख लग्यो तिन्हि सुविचच्छन

पुरुष क्री समार निकट आयौ तिन्हि नौं सुगम बात में निर्वाण रूहतें मुक्ति कौ मारग पायौ ॥ ४१ ॥

सवैया ३१ सा

जाके हिरदे में स्यादवाद साधना करत,
शुद्ध आतमा को अनुभौ प्रगट भयो है।
जाको सकलप विकलप को विकार मिटि,
सदा काल एकीभाव रस परिनयो है॥
जातें बध विधि परिहार मोख अंगीकार,
ऐसो सुविचार पच्छ सोऊ छांडि दयो है।
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
सोई भवसागर उलघि पार गयो है॥४२॥

अर्थ—जाके हिये में स्याद्वाद स्वरूप साधना होते शुद्ध आतमा कौ अनुभव प्रगट भयौ है। अरु जाके सकल्प विकल्प कौ विकार बहुमातिको हुतो सो मिटिक सदा काल विषै एक चेतना रसरूप जो एकीभाव रस तिनपनै परिनयौ जिन्हि परिनमनितें बध विधि कौ परिहार औ

संवर धरतो अरु निस्पृह दशातें मोक्ष का ज्यों अंगीकार ताके विचार को पक्ष धारो है सोऊ पक्ष छांड़ि दीन्हों। जाके ज्ञानकी महिमा दिन दिन प्रति उद्योत भई। सोई जीव भव समुद्र उतरिके पार पहुचो ॥ ४२ ॥

अथ—अनुभव व्यवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप,
अथिर इत्यादि नाना रूप जीव कहिये।
दीसे एक नय की प्रतिपक्षिनी अपर दूजी,
नैको न दिखाय वाद विवाद में रहिये॥
थिरता न होय विकलप की तर गनि में,
चचलता वढे अनुभो दशा न लहिये।
ताते जीव अचल अबाधित अखड एक,
ऐसो पद साधिके समाधिसुख गहिये ४३

अर्थ—अब अनुभव की व्यवस्था सोई साध्य व्यवस्था सोई उपादेय यह कहै है-किन ही नयतैं अस्ति-रूप है किन ही नयतें नास्तिरूप है, किन ही नयते अनेक, किन

ही तें एक, किनही नयतें थिर रूप, किनहीनयत अथिर रूप इत्यादिक नाना प्रकारके स्वरूप सौ जीव कहिये। इहा जो कोई एक नय स्वरूप साधै है, तहां वा नय की प्रतिपक्षियों पक्षिणी कहर्त उलटी और दूसरी नय दीसै है सो ही वा नय ते विपरीतपनों साधै-तातें जो एकान्त नयरूप ग्रहिये तौ तापरि दूसरी नय कौ न दिखावै, वाद विवाद हुइ जाइ, तातें नय के झकोरनितें विकल्प के तरंगनितें थिरता न होइ अरु च चलताई पडै, तातें अनुभव दशा रही न जाइ तातें नय-पक्ष छांडिके अनुभव अभ्यास के कारण जीवद्रव्य अचल है, अबाधित है, अखंड है, एक है ऐसे स्वरूपकौ ध्यानक साधिकै समाधि सुख गहनौ ।४३।

अथ—द्रव्य क्षेत्र कालभाव कथन । सवैया ३१ सा ।

जैसे एक पाको आम्रफल ताके चार अ श,
रस जाली गुठिली छीलक जब मानिये ।
सोतो न बने पै ऐसो बने जैसे वहै फल,
रूप रस गंध फास अखंड प्रवानिये ॥
तैसे एक जीव का दरव क्षेत्र काल भाव,

अंश भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये।
द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप,
चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ४४

अर्थ—अब द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै आत्मा कौ अखंडपनौ कहै है—शिष्य कहै है स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप, पै वस्तु के चार अंश तुम्ह कहौ हौ तहाँ ऐसौ दृष्टांत दीजियै। जैसे एक आम फल है ताके ४ अंश जैसे रस जाली गुठली अरु छीलक ए ४ अंश है। तैसे वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अंश होंइकै नाहीं? अब गुरु कहै है अहो शिष्य! इहां तू अंश कहते खंड सप्तभंगी तात ॥ दृष्टांत दीनो सो यो तौ न बनै। जो इहां अखंडपनै ४ अंश न्यावर्ण ताको दृष्टांत ए है आउ फल है तामें रूप अखंडपनै, रस अखंडपनै, गंध अखंडपनै, स्पर्श अखंडपनै प्रमान कीनिए। ४ अंश होंइ। तैसे एक जीव कौं द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप अंश भेद करिकै रस जाली गुठली छीलक ज्यौं भिन्न २ खंड २ वखानिये नहीं। यहां जो साध्यरूप आतम सत्ता है सो द्रव्य अखंडपनै आतम-द्रव्यरूप है, क्षेत्र अखंडपनै असंख्यात प्रदेशावगाहपनै,

कालैं अखंडपनै–त्रिकालवर्तीपनैं, भावैं अखंड पनैं, ज्ञायक-भावपनैं, ऐसे जीवकूं ४ अ शा अखंड मानिये ॥ ४४ ॥

अथ—ज्ञान ज्ञेय विशेष कथन । सवैया ३१ सा ।

कोऊ ज्ञानगत कहै ज्ञान तो हमारो रूप,
ज्ञेय पट द्रव्य सो हमारो रूप नाही है ।
एक नै प्रमान ऐसे दूजी अब कहों जैसे,
सरस्वती अच्छर अरथ एक ठाही है ॥
तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम,
ज्ञेय रूप सकति अनंत मुझ माही है ।
ता कारन वचन के भेद भेद कहो कोऊ,
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता माही है ॥

अर्थ—अब साध्य पद में ज्ञान ज्ञेय को विशेषपनो अरु अविशेषपनो सो कहे है कोऊ ज्ञान व प्राणी अपने अनुभव प्रमान तैं ऐसो कहे जो ज्ञान है सो तो हमारो रूप है अरु जो पट-द्रव्य ज्ञेय है सो तो हमारो रूप नाहीं यातैं ज्ञान अरु ज्ञेय विशेषपना यें है । गुरु कहै है—एक याही नय प्रमान है अब दूजी नय तैं जैसे अविशेषपनो-

अंश भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये।
द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप,
चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये४४

अर्थ—अब द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै आत्मा कौ अखंडपनौ कहै है—शिष्य कहै है स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप, पै वस्तु के चार अंश तुम्ह कहौ हौ तहां ऐसौ दृष्टांत दीजिये। जैसे एक आम फल है ताकै ४ अंश जैसे रस जाली गुठली अरु छीलक ए ४ अंश है। तैसे वस्तुकै द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अंश होंइ कै नांही? अब गुरु कहै है अहो शिष्य! इहा तू अंश कहते खंड समुझयौ तातै ए दृष्टांत दीनो सो यो तौ न बनै। जो इहां अखंडपनै ४ अंश ग्यारयैं ताको दृष्टांत ए है जोउ फल है तामैं रूप अखंडपनै, रस अखंडपनै, गंध अखंडपनै, स्पर्श अखंडपनै प्रमान कीनिए। ४ अंश होंइ। तैसे एक जीव कों द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप अंश भेद करिकै रस जाली गुठली छीलक ज्यौं भिन्न २ खंड २ वखानिये नहीं। यहा जो साध्यरूप आत्म सत्ता है सो द्रव्य अखंडपनै आत्म-द्रव्यरूप है, क्षेत्रै अखंडपनै असंख्यात प्रदेशावगाहपनै,

कालें अखंडपने-त्रिकालवर्तीपनें, भावें अखंड पनें, ज्ञायक-भावपनें, ऐसे जीवकूं ४ प्र श अखंड मानिये ॥ ४४ ॥

अथ—ज्ञान ज्ञेय विशेष कथन । सवैया ३१ सा ।

कोऊ ज्ञानवंत कहै ज्ञान तौ हमारो रूप,
ज्ञेय षट द्रव्य सो हमारो रूप नाही है ।
एक ने प्रमान ऐसे दूजी अब कहौं जैसे,
सरस्वती अखर अरथ एक ठाही है ॥
तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम,
ज्ञेय रूप सकति अनंत मुझ माही है ।
ता कारन वचन के भेद भेद कहौ कोऊ,
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता माही है॥

अर्थ—अब साध्य पद में ज्ञान ज्ञेय कौ विशेषपनौं अरु अविशेषपनो सो कहै है कोऊ ज्ञान त प्राणी अपने अनुभव प्रमान तें ऐसो कहै जो ज्ञान है सो तौ हमारो रूप है अरु जो षट-द्रव्य ज्ञेय है सो तौ हमारो रूप नाहीं यातें ज्ञान अरु ज्ञेय विशेषपना मे है । गुरु कहै है—एक याही नय प्रमान है अब दूजी नय तें जैसे

ठहरै है सो कहौ हौ । जैसे सरस्वती कहतें विद्यारूप अर्थ है तैसे अक्षर कहते ही विद्या रूप अर्थ एक ठार है । तैसे ज्ञाता सौं तो मेरो नाम भया अर जो ज्ञान है सो चेतना को विराम कहते प्रकार है। अर जो ज्ञान ज्ञेय नैं परिनमैं है सो ताज्ञेय रूप शक्ति है ऐसी अनत शक्ति मेरे ही पासि है, ता कारन त वचनभेद करिकैं ज्ञान अर ज्ञेय को भेद कोऊ कहौ १ पै दूसरो नय देखतें ज्ञान कौ विलास अर ज्ञय कौ विलास आत्मसत्ता माहि है । यातै अविशेषपनौ है ॥ ४५ ॥

अथ चौपाई ।

स्व पर प्रकाश सकति हमारी,
तातैं वचन-भेद भ्रम भारी ।
ज्ञेय दशा दुविधा परिगासी,
निज रूपा पररूपा भासी ॥४६॥

अर्थ—जातें हमारी शक्ति ऐसी है जो अपनी हू प्रकाश करै अरु परकौ हू प्रकाश करै । याही तैं स्वपर-प्रकाशक है, तातैं ज्ञान अरु ज्ञेय ए वचन भेद है सो भारी॰

भ्रम उपजावे है पै वस्तु एक है, सो ज्ञेय कहते तौ जानिवैयोग्य सो तो दशा होई, दोई भांति करिकै कही एक तौ निज रूपा, दूसरी पररूपा भाखी कहते कही ।४६।

अथ दोहरा ।

निजरूपा आतम सकति,
परूपा पर-वस्तु ।
जिन लखि लीन्हों पेचु यहु,
तिन्हि लखि लियो समस्त ॥४७॥

अर्थ–यहा जो निज रूपा ज्ञेय दशा कहिये सो तौ स्वपर प्रकाशक आत्मशक्ति है अरु जो दूसरी पर-रूप ज्ञेय दशा सो तौ परवस्तु ही है, जिन्हि यह पेचु लखि लीन्हो है तिन्हि तौ समस्त ही लखि लीयौ ॥४७॥

अथ स्याद्वाद रूप वर्नन । सवैया ३१ सा ।

करम अवस्था में अशुद्ध सो विलोकियतु,
करम कलंक सौं रहित शुद्ध अंग है ।
उभैनै प्रमाण समकाल शुद्धाशुद्ध रूप,
सो पर्यायधारी जीव नाना

एक ही समै में त्रिधा रूप पै तथापि याकि,
अखडित चेतना शकति सरवग है ॥
यहै स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने,
मूरख न माने जाको हियो दग भग है॥

अर्थ—अब यहु पेखु स्याद्वाद ही में पाइये तातैं स्याद्वाद रूप वस्तु की वर्नन करै है—ज्ञानावर्ण शरीर आत्मा कै कर्म अवस्था में दृष्टि दीजै तौ आत्मा अशुद्ध सौ देखियें है अर कलकरहित, केवल आत्मा ही में दृष्टि दीजै तो शुद्ध अग है, अरु जो पूर्व कही ये दोनु नय समकाल ही प्रमान कीजै तौ शुद्धाशुद्ध रूप कह्यौ जाइ ऐसो पर्याय धारा करिकै जीव नाना रगमें है शुद्ध, अशुद्ध, शुद्धाशुद्ध तीन रूप आत्माकै एक ही समै में पाइयै जा पै ऐसे है तथापि कहते तोहू आत्मा की तीनों रूप में अखडित चेतना शक्ति सर्व अग में भर रही है। यो ही स्याद्वाद कहियै, याकौ भेद स्याद्वादी होइ सोई जानै पै जाकौ हियो दग भग है कहतै सम्यग्दृष्टि रहित है सो मूर्ख याकौ भेद न जानै ॥४८॥

अथ सवैया ३१ सा

निहचे द्रव दृष्टि दीजे तव एक रूप,
  गुण परजाय भेदभाव सों वहुत हे।
असरय प्रदेश सयुगत सत्ता परमाण,
  ज्ञान की प्रभासो लोकाऽलोक मानजुत है॥
परजे तरगनी के अग छिनभगुर हे,
  चेतना शकति सों अखडित अचुत हे।
सा हे जीव जगत विनायक जगत सार,
  जाकि मोज महिमा अपार अदभुत है ४६

अर्थ—औरो हू स्याद्वाद डिढावे है—

निश्चयनयतें द्रव्य पर दृष्टि दीजे तौ आत्मा द्रव्य एक रूप है अरु या आत्मद्रव्यके गुण परिणतिरूप भेदभावतें देखिये तौ आत्मा नहरूप है अरु आत्माकी संचा असरयात आकाश प्रदेश सयुक्त है। अरु तिन्हि सचाके प्रमान आत्मा कह्यो जाय है अरु ज्ञान की प्रभा विचारिये तौ लोकालोक

रूप तरंगनिके अंग विचारियै तौ जीव क्षणभ
अरु याकों चेतनाशक्ति सौं विचारियै तौ अखंडि
अरु अच्युत कहावै, सोई जीव जगत कौ वि
धनी अरु जगत में सारभूत पदार्थ है, अरु
अरु महिमा अपार है, अद्भुत है ॥ ४६ ॥

अथ सवैया ३१ सा

विभाव शकति परणति सौं विकल
शुद्ध चेतना विचारते सहज स
करम स योग सौं कहावै गति जो
निहचै स्वरूप सदा मुक्त मह
ज्ञायक स्वभाव धरै लोकाऽलोक-प
सत्ता परमाण सत्ता परगारावंत
सो है जीव जानत जहांन कौतुक
जाकी कीरति-कहान अनादि

अर्थ— और ह स्याद्वाद दिखावै है—

दीसे है। अरु याकी शुद्ध चेतना ही विचारिये तौ इमि विचारें तैं सहज सतरूपी दीसें है। कर्म संयोग सहित आत्मा विचारिये तौ चारों ही गति को गामी अरु चौरासी लाख योनि को गामी कहावै। अरु निश्चय नय तैं याकौ स्वरूप ही विचारियें तौ सबदा मुक्त रूप है, सहज है अरु याको नायक स्वभाव धारी विचारियै तौ लोकालोक कौ प्रकाशक अमेय कहावै। अरु आत्मा की प्रकाशवत सत्ता ही विचारियें तौ अपनी सत्ता प्रमान आत्मा होइ सोई जीन वस्तु साध्य है जा यों बडो सौ कौतुकी पौरव है, जाकी कीरति ए कथा अनादि अनंत काल लौं जैसी ही चली आवै है॥ ५॥

अथ केवल दशा वर्नन

पंच परकार ज्ञानावरण कौ नाश करि
प्रगटि प्रसिद्धि जग माहि जगमगी है।
ज्ञायक प्रभा में नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,
अनेक भई पै एकता के रस पगी है॥
याहि भांति रहेगी अनंत काल परयत,

अनत शकति फेरि अनंतसों लगी है।
नरदेह देवल में केवल स्वरूप शुद्ध,
ऐसी ज्ञानज्योति की सिखा समाधि जगी है॥

अर्थ—अब साध्य केवल-दशाकौं वर्नन करै है—मतिज्ञानावरण प्रमुख पाच प्रकार जो ज्ञानावरणीय कर्म ताकौ नाश करिकै प्रसिद्धि कहता प्रत्यक्षपनें प्रगटी ऐसी ज्ञानज्योति की शिखा जगत माहि जगमगा रही है अरु जो ऐसी ज्ञान ज्योति की शिखा है ताके ज्ञायकपना रूप प्रभा में नाना ज्ञेय की अवस्था धरि कै अनेकरूप भई है तौहू ज्ञायकपना की तो एकता है, रस सो मिलि रही है। याही भाति अनत काललौं अन्त पर्यन्त रहेगी अरु अनन्त बल फोरिकैं अनत पदसों लगि रही मनुष्यके देहरूप देवल में शुद्ध केवल ज्ञान स्वरूपै ऐसी ज्ञान ज्योति की शिखा सी समाधि है सो जागी इतने सब विषमता भाव मिटि गयो ॥ ५१ ॥

अथ—अमृतचन्द्र कलाके तीन अर्थ कथन—

अच्छर अरथमें मगन रहे सदा काल,

महासुरा देवा जैसी सेवा काम गविकी ।
अमल अबाधित अलख गुण गावना है,
पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥
मिथ्यात तिमिर अपहार वर्धमान धारा,
जैसे उभै जामलों किरण दिपे रविकी ।
ऐसी है अमृतचद कला त्रिधा रूप धरे,
अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥५२॥

अर्थ—अब अमृतचन्द्र आचार्य है सो चद्रमा है, ताहा ते कलाधारी है अरु याकी कला हू तीन रूप धारे है ताके न्यारे २ अर्थ मों वर्नन करे है, अमृतचंद्र की अनुभव दशारूप कला है सो तौ अचर अर्थ में कहते मोक्ष पदार्थ में सदाकाल मगन रहे है अरु जैसी कामधेनु की सेवा सुखदायक होइ तसी सुखदायक है अरु अमृतचद्रकी ग्रन्थ टीका रूप कला है सोई पीछले वर्नन करि युक्त है अरु अमृतचंद्र कवि की बुद्धि है सा तो अचर अर्थ कहवे शब्द अर्थ तामें मगन रहे आगे और वर्नन ... ... तचद्र की अनुभव दशा कला अरु ग्रथ ...

अरु रवि कला ये तीनों ही कला अमल हैं,अबाधित है,अलख पुरुषके गुण को गावनहार हैं,पावन है,अव्यक्त रना री परम शुद्ध भावना है अरु तीनों ही कला मिथ्यात्व रूप अंधकार की अपहरणहार है अरु बढ़ते परिणाम सी हैं। जैसे बढ़ते दो पुरलों सूर्यकी किरण बढ़ती २ दीपै तैसे ए बढ़ती २ दीपे है ऐसी अमृतचद्र आचार्य की कला है सो तीन प्रकार को रूप धारे है सो तीनों रूपी है, एकतो अनुभव दशा, दूसरी जो प्रथटीका कीन्ही, तीसरे काव्य बध करते कवि कला कीन्ही ॥ ५२ ॥

दोहरा

नाम साधि साधिक कह्यौ द्वार द्वादशम ठीक।
समयसार नाटक कलश पूरण भयो सटीक ॥

अर्थ—नाटक विषै साध्य साधक द्वार कौ नाम बोध रूप अर्थ सम्पूर्ण भयो इतने मूल ग्रंथ सम्पूर्ण भयो ॥५३॥

इति श्री नाटकसमयसार को साध्य साध्यक द्वार सम्पूर्ण

अथ कवि आलोचना कथन । दोहरा ।

अब कविनिज पूरवदशा कहे आप सो आप।
सहज हरख मनमें धरे करे न पच्छाताप ॥५४॥

अर्थ—अब ग्रंथके अन्तमें अमृतचन्द्र आलोचना करे हैं अब कलशा को करनहार कवि है सो आपसों आप आपनी पूर्व दशा कहे है, अपना मर्म पाये को सहज हर्ष उपज्यो है सोई आलोचनामें धारे है पे पछतावो न करे है।

सवैया ३१ सा ।

जो मैं आपा छाडि दीनो पररूप गहि लीनो,
कीनों न बसेरो तहां जहां मेरो थल है।
भोगनिको भोगि ह्वै करमको करता भयो,
हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥
ऐसे विपरीत चाल भई सो अतीत काल,
सोतो मेरे क्रिया की ममता को फल है।
ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सों उदासी वह,
मिथ्या मोह निद्रा में सपन को सो छल है

अर्थ—जा आतमा स्वभाव हौं सो तो मैं छाडि दीनौं है। अरु जा कर्मादिक पररूप हुतौ सो तौ मैं गहि लीनौ है अरु जहां समाधि विषे मैरो थल कहते निवास हो तहा मैं वसेरौ न कीयौ। पंच इन्द्रियनि के विपय भोगनिकी भोगी ह्वै कै कर्म को करतार भयौ। हमारे हिये में राग द्वेष रूप महामल हौ, ऐसी उल्टी चाल चाल्यौ सो अतीत कालमें जात बीती। इहां जो ऐसा काय भयो सो तो भ मेरी क्रिया म ममता राखी ही यहु ताकौ फल हौ। अब तौ ज्ञान दृष्टि भासी तातें क्रिया सौ उदासी भये अरु जो अतीत काल में अवस्था भई ही वह तो मोह मिथ्यात्व निद्रा में सुपन कौ सौ छल भयौ ॥ ५४ ॥

अथ—दोहरा

अमृतचंद मुनिराज कृत, पूरण भया गरथ।
समय सार नाटक प्रगट, पंचम गतिकौ पंथ ५५

अर्थ—अमृतचन्द्र आचार्य कौ कीन्हौ समयसार ग्रंथ सम्पूर्ण भयौ ए समय सार नाटक ग्रथ है सौ प्रगट पंचम गति कौ पंथ है ॥ ५५ ॥

इति श्रीअमृतचंद्र आचार्यकौ कीन्हौ
समयसार ग्रंथ संपूर्ण भयौ

कविवर पं० बनारसीदास विरचित

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार

—※—

अथ–दोहरा

जाके भगति प्रभाव सों, कीन्हो ग्रंथ निवाहि।
जिनप्रतिमा जिनसारिखी नमै बनारसि ताहि १

अर्थ—जिनिकी भक्तिके प्रभाव करिकै प्रद्दनार्थे ग्रथ हुवौ तांहू ग्रथ को निर्वाह कीन्हों इहि काल विषे तातें जिन प्रतिमा श्री जिनेश्वर सरीखी ही है तिन्हि जिन प्रतिमा को बनारसीदास नमै है ॥ १ ॥

अथ–प्रतिमा माहात्म्य कथन । सवैया ३१ सा।

जाके मुख दरश सों भगत के नैननिकों,
थिरता की बानि बढी चंचलता बिनसी।
मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां,
जाके आगें इन्द्रकी विभूति दीसेतिनसी॥

जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदे में,
सोइ शुद्ध मति होइ हुती जो मलिन सी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहे जिनकी छबिसु विद्यमान जिनसी २

अर्थ—जैसे श्री जिनेश्वर देव माहात्म्यवत है। तैसे श्री जिन की प्रतिमा हू माहात्म्यवत हैं। जिन श्रीजिनप्रतिमा के मुख दर्शन भए तें जो याके भक्त जन हैं ताकै नननि में कछु आगें सम्यक दशा पाई ही ताके थिरता की वानि घटी अरु जो इहि भाव में चचलता ही सो विनशि गई। अरु या पद्मासनस्थित मुद्रा आकार जहा देखे है तहा केवली की मुद्रा याद आवै है। अरु केवली मुद्रा ऐसी सभारन में आवै है जाकै आगे इन्द्र की सपदा है सो तृण समान दीसै है इतने ६४ इन्द्र-महित है अरु उह दशा सभारन में आयै जो केवली को जस कहै है तब तिनके गुन को प्रकाश हीये में जागे है अरु तहां जो पहिली मति सम्यक दशा में मेली हुती सोई शुद्ध भई बनारसीदास कहै है कि जा जिनप्रतिमा की ऐसी २ प्रगट महिमा है सो या जिनकी छवि है सो विद्यमान जिनेश्वर समान ही जानिये ॥ २ ॥

अथ--प्रतिमा मानि तासु वर्नन । सवैया ३१ सा ।

जाके उर अन्तर सुदृष्टिकी लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोह निद्रा की ममारखी
सैलि जिन शासन की फैलि जाके घट भयौ,
गरब को त्यागि षटदरब को पारखी ॥
आगम के अच्छर परे है श्रवन जाके,
हिरदे भंडारमें समानी वानी आरखी ।
कहत बनारसी अलप भव थिति जाकी,
सोइ जिनप्रतिमा प्रवाने जिनसारखी ३

अर्थ—अब जो प्रतिमा पर्तिवंत है ताको वर्नन करे है जाके-हिये में सम्यग्दर्शन की लहरि विराजमान हुइ रही है अरु मिथ्यात महामोह रूप निद्रा की ममारखी कहते मूर्छा सो जाकी मिटि गई । अरु जाके घट में जिन शासन की भली रीत तत्त्व समुझी थी । सो तत्त्व समुझन में अहंकार रूप अभिमान को त्यागी ... को परखनहार, अरु जाके ...

ग्यान में आगम के अक्षर परे हैं इतनें सिद्धांत सुनैहैं अर जाके हिरदै रूपी भंडार में आरखो ग्यानी रहते आपिवाणी इतनें जिनवाणी सो समानी है-भरी है। बनारसीदास कहे हैं जाकी भव स्थिति'अल्प आइ रही है,सोई पुरुष जिन प्रतिमा का जिन सरीखी प्रमान करें ॥ ३ ॥

अथ-बनारसी कथन । चौपाई ।

जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे,
सीस नमाइ बनारसी बंदे ।
फिर मन माहि विचारै ऐसा,
नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥४॥

अर्थ—अब पं० बनारसीदास अपनी कहै है-जिन प्रतिमा है सोई जन मनुष्य के दोष-रागदोष मिथ्यात्व कौं निरदैं है तातें बनारसीदास सीस नवाइ कैं याकौं वंदै है। फिरि बनारसीदास ऐसौं मन में विचारै है यहु नाटक ग्रंथ जैसो परम पद है तैसौ यहु कहै है ॥ ४ ॥

अथ चौपाई

परम तत्व परिचे इस माही,

गुणस्थानक की रचना नाही ।
यामे गुणस्थानक रस आवे,
तो गरन्थ अति शोभा पावे ॥

अर्थ—इस ग्रंथ माहि उपादेय रूप परम तत्व है ताको परिचय है, पै गुणस्थान की रचना या ग्रंथमें नाही है। अर जो या ग्रंथ में गुणस्थानक को रस आवे तो ग्रंथ भली सी शोभा पावै ॥ ५ ॥

अथ-दोहरा

यहु विचारसत्तेपसौं, गुणस्थानक रस चाज ।
वर्णन करै बनारसी, कारण शिवपथ खोज ६

अर्थ—यहु विचार विचारकै संक्षेप मात्र गुणस्थानाकै रसकू चोन का बनारसीदास वर्णन करै है यहु वर्णन शिव पथ को कारण है अर शिवपथ को खोज है ॥ ६ ॥

अथ गुणस्थानक स्वरूप कथन । दोहरा ।

नियत एक व्यवहार सौं,जीव चतुर्दश भेद ।
—ोग बहुविधि भयो, ज्यौं पट सहज

—अब गुणस्थानां को जसा १

है-निपत्त कहतें निरच जीव एकरूप है अर व्यवहार नय ते जीव के चौदह भेद ह इहां दृष्टान्त दिखावै है जैसे पट कहतें वस्त्र, सहज रगमें सफेद पै रगके जाग तें नाना भाति में होइ। तैसें गुणस्थानका सा भेद है ॥ ७ ॥

अथ-चतुर्दश गुणस्थानके नाम कथन। सवैया ३१ सा

प्रथम मिथ्यात दूजा सासादन तीजो मिश्र,
चतुरथ अव्रत पचमो व्रत रच है।
छट्ठा परमत्त सातमो अपरमत्त नाम,
आठमो अपूरवकरण सुख सच है॥
नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सूक्षमलोभ,
एकादशमो सु उपशात मोह वच है।
द्वादशमो क्षीणमोह तेरहो सयोगी जिन,
चौदमो अयोगी जाकी थिति अक पच है ८

अर्थ—अब चौदह गुणस्थाना के नाम कहै है— पहिला मिथ्यात्व १, दूसरो सस्वादन २, मिश्र ३, अव्रत ४ पाचमो र चव्रत इतन देशव्रत ५, छट्ठा प्रमत्त ६, सातमा अप्रमत्त ७. ऐसे नामैं अपूर्व करण ८. अथवा अनिवृत्ति

वादर ए दोऊ नाम हैं इहा सुख को संजय कहतें मिलाप है, नवमो अनिवृत्ति वादर ९, दशमो सूक्ष्म—लोभ १०, इग्यारमो उपशांत मोह ११. इहां मोह की वचना है, बारमो खीण मोह १२, तेरमा सजोगी जिन १३ सो केवली भयो, चौदमो अजोगी १४ जाकी थिति अ, इ, उ, ऋ, लृ, हृस्व पंच अक्षर प्रमाण है ॥ ८ ॥

अथ दोहरा

वरने सब गुनथानके, नाम चतुर्दश सार।
अब बरनों मिथ्यात के, भेद पंच प्रकार॥

अर्थ—सब गुणस्थानां के १४ नाम सार कहते सत्यार्थ बरने यो कहे। अब या शास्त्रमें पहिलेमिथ्यात्व गुण स्थान के पंच प्रकार ते पंच भेद भये हैं सो कहै है ॥ ९ ॥

अथ— पंच मिथ्यात्व के नाम। सवैया ३१ सा।

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहिक,
दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है।
तीजो विनै मिथ्यात्व अनाविग्रह नाम जाको,
चौथो संशय जहा चित्त भौरको सो पोत है॥

पाचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप,
जाके उदै चेतन अचेतसी होत है।
येई पाचों मिथ्यात्व भ्रमावै जीव जगत में,
इसको विनाश समकित को उदोत है १०

अर्थ—अब पहले मिथ्यात्व नाम कहे है, पांच मिथ्यात्वनिमें पहिलो मिथ्यात्व एकांत पक्ष को ग्राही आभिग्राहिक नामैं मिथ्यात है१, दूजो मिथ्यात पहिला मिथ्यात ते विपरीत है। याको अभिनिवेशिक ऐसे गोत कहतें नाम है २ तीसरो विनय मिथ्यात सबनि को पूजनहार, जाको नाम अनाभिग्रह है ३, चौथा संशय मिथ्यात, जहा चित्त है सो भमतो रहै जैसे भमर को पोत कहते यच्चौ ४ पाचमो अज्ञान मिथ्यात ५, ए अनाभोगिकपनै सौ अज्ञान एकेंद्रियादिक विषै गहलरूपी है, निद्रासी छाक कै सो स्वरूपी है। जाके उदय चेतन है सो अचेतन सौ हु रह्यो है। जाके नाम लो हैं सो एई पाचों मिथ्यात जी वौं जगत में भ्रमावे ह। इन्हि पाचौ मिथ्यात के विनाः भये सम्यक्त को उद्योत होतु है॥ १०॥

अथ—एकांत यथा दोहरा

जो एकांत नय पक्ष गहि छके कहावे दक्ष ।
सो एकतवादी पुरुष मृषावत परतक्ष ॥ ११ ॥

अर्थ—अब एकांत वादी अभिग्रहिक मिथ्याती की लक्षण कहे है–सातों नयमें हर कोऊ एक ही नय को पक्ष ग्रहिके अपने जानपना में छकि जाय अरु दक्ष कहते तत्ववेत्ता कहावे। सो ही एकांत मत को थापनहार मीमासक नैयायिक प्रमुख पुरुष है या प्रत्यक्षपनें मृषावक्त कहते मिथ्याती है ॥ ११ ॥

अथ—विपरीत यथा। दोहरा।

गथउकति पथ उथपि जो थापे कुमत स्वकीय ।
सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विहरीती जीय ॥

अर्थ—वस्तु ज्ञान में तो अनेकांत पनें है पै हठवे विपरीत वर्हे ताको लक्षण कहै है–ग्रन्थ में जो उक्त कहते कह्यो जैसो मार्ग तासों उथापिकैं ७ चिन्ह वजर्यो स्वकीय कहते आपनों कुमत थापै अपनी प्रसिद्धिकें कारन गुरुता आचार्यपनों सो गहे है। ऐसात ते

विपरीत मयो अभिनिवेसिक मिथ्याती कहिये ॥ १२ ॥

अथ—विनय मिथ्यात यथा। दोहरा।

देव सुदेव सुगुरु, कुगुर गनें समान जु कोय।
नमै भगतिसौं सबनको, विनै मिथ्यात्वी सोय॥

अर्थ—जाकै विनय मिथ्यात है ऐसो अनाभिग्रहिक मिथ्याती कौं लक्षण कहे है—सुदेव को अरु कुदेव कौं सुगुरु कौं अरु कुगुरु कौं जो कोऊ समान ही गने है। अर ता मिलाप सा ज्यौं प्रणाम प्रवज्या लैकै भगतितैं सा सबनिकौं नमे पै गुण दोष की खबरि नाहीं सो विनय मिथ्याती कहिये। १३ ॥

अथसंशय यथा। दोहरा।

जो नाना विकलप गहे, रहे हिये हैरान।
थिर व्है तत्त्व न सद्दहे, सो जियस 'शयवान१४

अर्थ—जाकै ज्ञानपनामें सदेह है सो संशय मिथ्याती है ताकौं लक्षण कहे है अपार नय जाल देखिकै संशय राखिकैं नाना प्रकार के विकल्प ग्रहै है अरु हैरान हुइ रहै है, थिरता राखिकै तत्त्व कौं सद्दहे नहीं सोई जीव

सशयर्वत मिथ्यासी कहिये ॥

अथ—अज्ञान यथा। दोहरा।

जाको तन दुख दहलसों, सुरति होतु नहि रंच
गहल रूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरजच १५

अर्थ—अब पाचवा अज्ञान मिथ्याती की लक्षण कहै
: शरीर में दुख के दहल सों जाकों हेय उपोदय की रंच
ात्र सुरति नांही होतु है, मूर्छित रूपी ही सदा वर्ते सो
के द्रियादिक तिरयच अज्ञान मिथ्याती कहिये ॥ १५ ॥

दोहरा।

ंचभेद मिथ्यात के, कहे जिनागम जोय।
सादि अनादि स्वरूप अब,कहौं अवस्था दोय॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर के आगम सिद्धात देखि कें
मेथ्यात के पांचभेद कहे। जाकी आदि पाइये सा तो
ादि कहिये, जाकी आदि न पाइये सो अनादि कहिये
ऐसी मिथ्यातकी दो अवस्था है ताको अब कहौं हों। १६

अथ—सादि,यथा। दोहरा।

जे मिथ्या दल उपशम, ग्रथि भेद बुध

फिर आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥

अर्थ—अब सादि मिथ्याती का लक्षण कहै है—जो मिथ्यात मोह के दल को उपशमाय कै, मिथ्यात की ग्रंथिकों भेदकै बुध कहते ज्ञाता समकिती हुई कै फेरि मिथ्यात में आवै सो सादि मिथ्याती कहियें याक मिथ्यात्व में अब आदि भई तातें सादि कहिये ॥ १७ ॥

अथ—अनादि यथा । दोहरा ।

जिन ग्रंथि भेदी नहीं, ममतामगन सदीव ।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल वहिर्मुख जीव॥

अर्थ—अब अनादि मिथ्यात का लक्षण कहै है—जिन्हि जीव मिथ्यात ग्रंथि भेदी नाही अरु सदा काल को ममता ही में मगन रहै है सो जीव अनादि मिथ्याती कहिये अरु या विकल यौं बहिर्मुख ही रहै है । जाकै परमात्मद्रव्य की दृष्टि नहीं, सा बहिर्मुख कहिये ॥ १८ ॥

इति श्री पं० बनारसीदास कृत नाटकसमयसार विषै
प्रथम गुणस्थानक अधिकार सम्पूर्ण

दोहरा।

कह्यौ प्रथम गुणथान यह, मिथ्यामत अभिधान
अलप रूप अब वरनऊ, सासादन गुनथान१६

अर्थ—मिथ्यामत ऐसो जाको अभिधान कहतें नाम है सो पहिला गुन थाना सूचना मात्र कह्यौ। अब अन्परूप कहतें संक्षेपमात्र सासादन गुणस्थानको स्वरूप कहौं हौं।

सवैया ३१ सा

जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीरखांड,
वोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे है।
तैसे चढि चौथे पांचे छट्ठे एक गुणथान,
काहू उपशमी कू कषाय उदै आवे है॥
ताही समय तहा सों गिरे प्रधानदशा त्यागि,
मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्हे धावे है।
वीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे,
सोइ सासादन गुणथानक कहावे है॥२०॥

जैसे कोउ क्षुधावंत पुरुष है सो

को खायें पीछे ताकौ वमन करें, ता वमन को पीछें तिन खीर खांड भोजन कौ लगार एक स्वाद पावै है तैसे कोऊ जीव उपशम सम्यक्त पाइकें चौथे अविरत गुनथाने रह्यौ है, अथवा पांचमे, छठे गुनथानें ही चढौ तहा समकित की उद्वेलना भई अर अनन्तानुबंधी कषाय उदय आयें, ताही समै के विषै तिनि गुनथाना सौं ता उपशम सम्यक्की प्रधान दशा जो श्रेष्ठ दशा ताकौं त्यागिकें फेरि मिथ्यात दशा कौ अधोमुख कहतें उधें मुह उल्टौ दौरे है, इतने में मिथ्यात पावता में सम्यक्त छूटतामें वीचि एक समय काल प्रमानें अथवा उत्कृष्ट ६ आवली काल प्रमाणे सम्यक्त अंश रहें है, सोई सासादन गुनथानौ कहिये ॥२०॥

इति श्री समयसार नाटक विषै दूसरा सासादन गुनथाना को अधिकार समाप्त।

अथ दोहरा

सासादन गुणस्थान यह, भयो समापति वीय।
मिश्रनाम गुणस्थान अब,वर्नन करू तृतीय२१

अर्थ—वीय कहत दूसरौ यह सासादन नामे गनथानौ

समाप्त भयो अब तीसरा मिश्र नाम गुनथाना कौं वरनन करा हौ ॥ २१ ॥

सवैया ३१ सा

उपशमी समकिति कै ता सादि मिथ्यामति ,
दुहोंनिकौ मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है।
अनतानुबधी चौकरी को उदै नाहि जामें,
मिथ्यातममें प्रकृति मिथ्यात न रहै है॥
जहा सद्दहन सत्यासत्य रूप सम काल,
ज्ञानभाव मिथ्याभाव मिश्रधारा वहे है।
याकी थिति अतरमुहूरत उभयरूप,
ऐसो मिश्र गुणथान आचारज कहे है॥२२॥

अर्थ—कैतो उपशम समकिती मिथ्यात मिश्र सम्यक्त रूप तीन पु ज करिकैं जब मिश्र पु ज में जोर वर्त्तें अथवा सम्यक्तसौं गिरिके फेरि मिथ्यात आईके ऐसा सादि दृइकै मिश्रपु ज उदै आइत एसे दुहों को मिश्र गुणस्थानी मिथ्यात मिश्र कौं वेत है । जाते ससार अनतो वढ़ै ताते अनंतानुबधी कहियें ऐसे क्रोध, मान, माया

अनतानुवधी की चौकरी कहिये, ताकौ नामें उदै नाहीं है अरु मिथ्यात सभै कहते उपशम है, तहां मिथ्यात की प्रकृति उदै नाही रहै है। जहां समकाल ही सत्या सत्य रूप श्रद्धा है इतने श्रद्धा में साचि झूठ होतु है तहां ज्ञान भाव है सो अज्ञान भाव तैं मिश्रधारा में वहै है।। जाकी उत्कृष्ट थिती अतर मुहूर्त काल की है अर जा कहते अथवा जघन्य एक समय की थिति ऐसो तीसरो मिश्र गुणस्थानो आचार्य जी कहै है ॥ २२ ॥

इति श्री समयसार नाटक विषै तीसरा मिश्र गुनथाना को सक्षेप मात्र अधिकार सम्पूर्ण भयो।

दोहरा

मिश्र दशा पूरण भई, कही जथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहू जिनागम साखि

अर्थ—मिश्र गुणथाना की जैसीदशा है तैसी जथामति कहतें जैसी अपनी बुद्धि है तैसी रूप भाषा कही सो सम्पूर्ण भई। अब श्री जिनागम की साखि लै कै चौथा सम्यक्त गुनथाना की विधि कहौं हौं ॥ २३ ॥

अथ सम्यक्त वर्णन । कवित्त छंद ।—

केई जीव समकित पाइ अर्ध पुद्गल,
परावर्त काल ताई चोखे होइ चित्त के।
केई एक अंतरमहूरत में गंठि भेदि,
मारग उलंघि सुख वेदें मोख वित्त के॥
ताते अंतरमुहूरतसौं अर्धपुद्गललौं,
जेते समै होहि तेते भेद समकित के।
जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ,
तबहि सौं गुण गहै दोष दहै इतके॥ २४॥

अर्थ—अब पहिले सम्यक्त का वर्णन करे हैं॥

केई जीव समकित पावै, तिन के चोखे हुइ के अर्ध पुद्गल परावर्तन काल की दशा में रहे हैं, अनन्ती अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल करें एक पुद्गल परावर्तन काल होइ तामें आधा रहै, अरु कोई जीव एक ही अंतर्मुहूर्त काल में मिथ्यात ग्रंथि भेद के सम्यक्त पावै [illegible] रहे कौ मारग उलंघि के [illegible] चित्त के सुख [illegible] एक नाहीं। ताते सम्यक्त [illegible]

अ तरमुहूर्तकी उत्कृष्ट ससारास्थिति अर्द्ध पुद्गल परावतन की है अब इतने बीचि ससार स्थिति में एक एक समय को बढाउ करिये, एसे जेते स्थिति के भेद भये ते समकित के भेद पाइये जाही समय जाकै जब समकित को उदय हाय ताही समय सोई जीव तब ही सो अपने गुन ग्रहे अरु इतके सो ससार अवस्था के दाप दहे ॥ २४ ॥

दोहरा ।

अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय
मिथ्या गठि विदारि गुण,प्रगटे समकित सोय ॥

अर्थ—अध. कहते है यथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण ए तीनों करण जो कोई भव्य जीव करै है तहा जब कब हो आयु कर्म विना सात कर्म की स्थिति अ त कोटाकोटी सागरोपमान रहै । तब यथावृत्ति करण होइ, पीछे मिथ्यात्व ग्रथि भेद तें अपूर्वकरण होइ अरु सम्यक्त्व प्रगटते अनिवृत्तिकरण होइ जो कोऊ ए तीनौकरण करि मिथ्यात्व ग्रथि विदारकेसम्यक स्वरूप प्रगट करै सो समकिती कहियै ॥२५॥

अथ—अष्टरूप कथन । दोहरा ।

समकित उतपति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश ।
अतीचार जुत अष्टविधि,वरणो विवरण तास २६

अर्थ—अब आठ प्रकार तें सम्यक्त विवरन करे है—सम्यक्त को स्वरूप १, सम्यक्त की उत्पत्ति २, सम्यक्त के चिन्ह ३ स क्त गुन ४, सम्यक्तके भूषण ५, सम्यक्त के दोष ६, विनाश ७, सम्यक्त के अतीचार ८ एसब इकट्ठे कीने ८ प्रकारके भये ताके विवरणको वर्णन करो हो ।२६।

अथ—सम्यक्त यथा । चौपाई ।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी,
दिन दिन रीति गहे समता को ।
छिन छिन करे सत्यको साको,
समकित नाम कहावे ताको ॥

अर्थ—अब सम्यक्त को स्वरूप कहे है—सत्य में जाकी प्रतीति है, इतने साचु ही को सरदहे है जैसी जाकी अवस्था है । अरु दिन दिन बढ़ती क्षमा, निर्लोभिता प्रमुख ममता की रीति गहै है, ऐसो सत्य कार्य पहिले

क्रियाँ तैसा अर क्षण क्षणमें सत्य की माको माँ कार्य कर्‍है तिहिभाव का नाम सम्यक कहितो ॥ २७ ॥

अथ—उत्पत्ति यथा । दोहरा ।

कै तो सहज स्वभाव कै, उपदेशे गुरु कोय ।
चिहु गति सैनी जीव को, सम्यकदर्शन होय २८

अर्थ—अब सम्यक्तकी उत्पत्ति कहै है । के ता सरित दुपल धोलना न्याय ते सहज सुभाव ही तैं समकित उपन, कै कोउ गुरु के उपदेश सों सम्यक उपजै, चिहोंगति सैनी कहते जा जीव चिहोंगति म समयन निद्रा करि रह्या है ताको समकित उपजै सो ऐसे प्रकार तें उपजे ॥ २८ ॥

अथ—लक्षण यथा । दोहरा ।

आपापर परचैं विखें, उपजे नहि सदेह ।
सहज प्रपत्ररहित दशा, समकितलक्षण एह २९

अर्थ—अब जांत सम्यक्त उपज्यो जानिये सो सम्यक्त लक्षण कहै है । आत्मा अरु आत्मा तें भिन्न कर्म, नोकर्म पुद्गल आदि पांचोंहीद्रव्य ताके परिचय प्रतीतिविषै सन्देह उपजै नहीं अरु सहज सुभाव ही में आत्म दशा, माया

प्रपच तें रहित होइ ए, सम्यक्त लक्षण कहिये ॥ २६ ॥

अथ—गुण यथा । दोहरा ।

करुणा वत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ ।
समता भगति विरागता, धर्म राग गुण आठ ।

अर्थ—अब सम्यक्त के गुन कहे हैं । करुणा कहत दया १, सबका हित वाछक २, सबसों मैत्री भावना ३, आत्म निन्दा को पाठ कहतें पढिवो ४, इष्ट अनिष्टपरि समभाव रहिवो ५, देव गुरू की भक्ति ६, वैराग्य रसमें रहनो ७, धर्म में राग राखनो ८ ए सम्यक्त के आठ गुण कहिये ॥३०॥

अथ—पंच भूषण यथा । दोहरा ।

चित्त प्रभावना भावयुत, हेय उपादे वाणि ।
धीरज हरष प्रवीणता, भूषण पंच वखाणि ३१

अर्थ—अब सम्यक्त के भूषण कहे हैं । चित्त कहिये ज्ञान-इतने जिनशासन की प्रभावना बढे तैसे भाव रहनो १, हेय उपादेय ज्ञानयुत होइ २, धैर्य में रहनो ३, सम्यक्त पाये हर्ष राखनो ४, तत्वविचार में प्रवीनताई ५, ए सम्यक्त

अथ—पचीस दोष । दोहरा

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष ।
तीन मूढता संयुक्त, दोष पचीसी एव ॥३२॥

अर्थ—अब समकित के २५ दोष कहे हैं । महामद हैं ८, अर ८ मल, ६आयतन विशेष हैं, मूढ़ता ए सब एकठी करिये तब दोष पचीसी निपजै ॥ ३२ ॥

अर्थ—अष्ट मद । दोहरा

जाति लाभ कुल रूपतप, बल विद्या अधिकार
इनको गर्व जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार३३

अर्थ—अब आठ मद कहे हैं । जातिमद १, लाभ मद २, कुलमद ३, रूप मद ४, बल मद ५, तप मद ६, विद्या मद ७ अधिकार मद ८ इन्हि आठ वस्तु को गर्व कीजिये सो या मद ८ प्रकार कौ है ॥ ३३ ॥

अथ—अष्ट मल यथा । चौपाई

आशंका अस्थिरता वंछा,
ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ।
वत्सलरहित दोष पर भाखे,

चित प्रभावना माहि न राखे ॥३४॥

अर्थ--अब मल कहै हैं--धर्मपरि-जिनवचनपर शंका का राखे १, धर्ममें स्थिरता नाहीं २, स्वर्गादिक की इच्छा धरनी ३,तन कुटम्बादिक मों ममता दृष्टि राखनी४, यह धर्म मलीन है सो दुगछा ५, उरमल न करै ६, पर के दोष प्रकाशै ७,धर्म प्रभावना में चित्त न राखे८ ॥३४॥

अथ—छह अनायतन

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।
इनकी करै सराहना,छह पट आयतन कर्म ३५

अर्थ—अब छह अनायतन दोष कहै है

कुगुरु के माननहार अर १, कुदेव के माननहार २, व कुधर्म के माननहार ३,कुगुरु ४,कुधर्म ५, कुदेव ६ इन्ही छहों की सराहना प्रशंसा करै ए छह अनायतन कर्म दोष कहिये है ॥ ३५ ॥

अथ—अब मढत्रय यथा, दोहरा—

देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोप ।
आठ आठ पट तीन मिलि, ये पचीस सब दोप ३६

अर्थ-अब त्रिमूढ़ता दोष कहै हैं सुदेव

अथ—पचीस दोष । दोहरा

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष ।
तीन मूढता सयुक्त, दोष पचीसी एव ॥३२॥

अर्थ—अब समकित के २५ दोष कहे हैं । महामद ८, अर ८ मल, ६आयतन विशेष है, मूढता ए सब एकत्र करियें तब दोष पचीसो निपजे ॥ ३२ ॥

अर्थ—अष्ट मद । दोहरा

जाति लाभ कुल रूपतप, बल विद्या अधिकार ।
इनको गर्व जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार३३

अर्थ—अब आठ मद कहे हैं । जातिमद १, लाभ मद २, कुलमद ३, रूप मद ४, बल मद ५, तप मद ६, विद्या मद ७ अधिकार मद ८ इन्हि आठ वस्तु को गर्व कीजियें सो या मद ८ प्रकार के है ॥ ३३ ॥

अथ—अष्ट मल यथा । चौपाई

आशंका अस्थिरता वंछा,
ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ।
वत्सलरहित दोष पर भाखे,

चित प्रभावना माहि न राखे ॥३४॥

अर्थ—अब मल कहे हैं—धर्मपरि-जिनवचनपर शंका का राखे १, धर्ममें स्थिरता नाहीं २, स्वर्गादिक की इच्छा धरनी ३, तन कुटम्बादिक मों ममता दृष्टि राखनी ४, यहु धर्म मलीन है सो दुगछा ५, वत्सल न करै ६, पर के दोष प्रकाशें ७, धर्म प्रभावना में चित्त न राखे ८ ॥३४॥

अथ—छह अनायतन

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।
इनकी करै सराहना, इह षट आयतन कर्म ३५

अर्थ—अब छह अनायतन दोष कहे हैं

कुगुरु के माननहार अर १, कुदेव के माननहार २, य कुधर्म के माननहार ३, कुगुरु ४, कुधर्म ५, कुदेव ६ इन्ही छहों की सराहना प्रशंसा करै ए छह अनायतन कर्म दोष कहिये है ॥ ३५ ॥

अथ—अब मूढत्रय यथा, दोहरा—

देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष ।
आठ आठ षट तीन मिलि, ये पचीस सब दोष ३६

अर्थ-अब त्रिमूढता दोष कहे हैं सदेव कों

ए देव मूढता १, सुगुरु समुझै नाही ए गुरु मूढता २, सुधर्म समुझै नाही ए धर्म की मूढता ३, अविद्या जो पोषि आठ मद, आठ मल, छै अनायतन, ३ मूढता ए मिलकै सब २५ दोष भये ॥३६॥

अथ—सम्यक्त नाश पचक यथा, । दोहरा ।

ज्ञान गर्व मतिम दता, निष्ठुर वचन उदगार ।
रुद्रभाव आलसदशा, नाश पच प्रकार ॥३७॥

अर्थ अब पाच प्रकार सम्यक्तको नाश कहै है—

ज्ञानके गर्वतें सम्यक्त को नाश होइ१, मति बुद्धिकी मदता तें नाश होइ २, कठोर वचन उदगार कहतै कहवै तै नाश होइ ३, रौद्रभाव धारिवे त नाश होइ ४, आलसीपनातें नाश होइ ५, ऐसे पाच प्रकारतै सम्यक्तको नाश होइ ३७

अथ अतीचार पच यथा । दोहरा ।

लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्रसोच थिति मेव ।
मिथ्या आगमकी भगति, मृखा दर्शनी सेव३८

अर्थ—अब दिगम्बरसप्रदाय तें सम्यक्त के ५ अतीचार कहै है, सम्यक्त क्रिया त मोहि लोग हसैंगे, ऐसो मन में

भय ल्यावै१, पच इन्द्रिय के विषयभोग की रुचि राखै २, आगे मेरा कहा होवेगो , ऐसे अपनी थिति को सोच माँ रेचैन३, मिथ्यादर्शनमें जा आगम सिद्धान्त है ताकी भक्ति करे ४, मिथ्यादर्शन की सेवा करे ५ ॥३८॥

चौपाई

अतीचार ए पच प्रकारा,
समल करहि समकित की धारा ।
दूषण भूषण गति अनुसरनी,
दशा आठ समकित की वरनी ॥३६॥

अर्थ ए पच अतीचार कहिये सम्यक्त की उज्वल धारा कों मल कहते मल सहित करे है, ऐसे दूषण गति के अनुसरनी कहतै पीछे लगी अरु भूषण गतिके अनुसरनी कहतै पीछे लगी सम्यक्त की ए = दशा वरनी ॥ ३६ ॥

अथ-सप्त प्रकृति यथा, दोहरा ।

प्रकृति सात अब मोह की, कहूँ जिनागम जोय ।
जिन्ह को उदै निवारकै, सम्यकदर्शन होय ४०

र्थ-अब तिन्हि ७ प्रकृति के क्षय अथवा

सम्यक्त उपजै है सो कहै हैं। अब मोहनीय की ७ प्रकृति श्री जिनेश्वर आगम जोइके कहौं हौं जिन्हि ७ प्रकृति कौ निवारेतै सम्यग्दर्शन प्रगट होतु है। ॥४०॥

सवैया, ३१ मा

चारित्र मोहकी चार मिथ्यात की तीन तामें,
प्रथम प्रकृति अनु तानुबधी मोहनी।
बीजी महा मान रस भीजी महामाया तजि,
चौथे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी॥
पांचवीं मिथ्यामति छठी मिश्र परिणति,
सातवी समय प्रेकृति समकित मोहनी।
येइ पट विग वनितासी एक कुतियासी
सातों मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ४१

अर्थ मोहनीय कर्म के दो भेद हैं एक चारित्र मोहनीय अरु दूसरी मिथ्यादर्शनमोहनीय, तामें चारित्र मोहनीय की च्यारि प्रकृति, दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति तामें प्रथम मोहनीय प्रकृति अनुतानुबंधी क्रोध १, दूसरी प्रकृति महा-

अभिमान के रस मे अनतानुबधी मान २, तीसरी प्रकृति महा माया मई अनुतानबधी माया ३, चौथी प्रकृति महा-लोभ दशा म परिग्रह को पोषनहार अनतानुबधी लोभ ४, पचमी प्रकृति मिथ्यात मति लिए मिथ्यात्वमोहनीय ५, छठी प्रकृति मिथ परिणाम लिये मिथ माहनीय ६, सातमी सम्यक्प्रकृति ए जु है सो पूर्वली छहों प्रकृतिको शम भयौ, दबि गई सो सम्यक्त मोहनी यामें करली, ६ प्रकृति तौ विग वनिता सी कहतें नाहरी सी गैल लगी कहूँ छूटत नाहीं अरु सातमी प्रकृति कुतिया है याकौ भरोसा हु नाही । एई सातौ मोह की प्रकृति सत्ता रोहनी कहवे जीव के सद्भाव की रोधनहार ॥ ४१ ॥

अथ—सम्यक्त के भेद कथन । छप्पय छद ।

सात प्रकृति उपशमहि जासु सो उपशमभ्पटित,
सात प्रकृति क्षय करनहार,क्षायिकी अखडित ।
सात माहि कछु खपै, कछु उपशम करि रक्खै,
सो क्षयउपशमवत, मिश्र समकित रस चक्खै ॥
षट्प्रकृति उपशमे वाक्षपे,अथवा क्षयउपशम करै

सातई प्रकृति जाके उदै,सो वेदक समकित धरै ॥

अर्थ—अब सातौं प्रकृति तें सम्यक्त के भेद उपजैं है सो कहै है—जाके सात प्रकृति उपशमि जाइ सो उपशमी पंडित कहते ज्ञाता होइ याको उपशम सम्यक्त कहिए। अरु एई सात प्रकृति को क्षय करनहार के क्षायिक कहिये ताको अखंडित क्षायिक सम्यक्त होइ ए सातों प्रकृतिमें ६ प्रकृति उपशमे अरु सातमी सम्यक्त मोहनी प्रकृति उदै आई वदे है अथवा प्रकृति क्षय गई है अरु सातमी वेदे है सो वो वेदक समकितधारी कहिये।

अथ— नवविधि सम्यक्त वर्नन। दोहरा।

क्षयोपशम वर्तै त्रिविध, वेदक चार प्रकार।
क्षायक उपशम जुगल युत,नोधा समकितधार ॥

अर्थ—अब समकित के भेद कहै हैं–क्षयोपशमसम्यक्त तीन प्रकार को वर्तै है ३, वेदक समकित के चारि प्रकार है ४, क्षायिक समकित एक प्रकार १ अरु उपशम सम्यक्त १ प्रकार ए दोउ मिले तो तीनि च्यारि दोइ मिले नौधा कहतें ९ प्रकारें सम्यकधारी होइ॥ ४३॥

चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय।
क्षै षट उपशम एक यो, क्षयोपशम त्रिकहोय ४४

अर्थ—अब तीन प्रकार क्षयोपशम समकित को ब्यौरो कहे हैं—सातों प्रकृति में अनन्तानुबंधी ४ खपि गये हैं अरु दर्शन मोहनी उपशमी है तौहू क्षयोपशम कहिये। अथवा ४ अनन्तानुबन्धी अरु मिथ्यातमहनी १ एवं ५ क्षय गई अरु २ उपशमी ताहू क्षयोपशम है। अथवा मिश्र लों ६ क्षय गई अरु १ सातवीं उपशमी है तौहू क्षयोपशम, ऐसी तीन भांति क्षयोपशम सम्यक्त होइ ॥ ४४ ॥

अब क्षयोपशमसहित सम्यक्त मोहनीवेद तें जो क्षयोपशम वेदक निपजे है, ताके दो प्रकार कहे है—

दोहरा

जहा चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम इक वेद।
क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ४५

अर्थ—जहा अनन्तानुबन्धी ४ प्रकृति क्षय होत है, अरु मिथ्यात, मिश्र ए दोउ प्रकृति उपशमे है, अरु एक [illegible] मोहनी उदै है। या [illegible] दशा में जो

सातई प्रकृति जाके उदै,सो वेदक समकित धरै॥

अर्थ—अव सातौ प्रकति तें सम्यक्त के भेद उपजै है सो कहै है—जाके सात प्रकति उपशमि जाइ सो उपशमी पंडित कहतें ज्ञाता होइ याको उपशम सम्यक्त कहिए। अरु एई सात प्रकृति कौ चय करनहार के चायिक कहिये तासौ अखंडित चायिक सम्यक्त होइ ए सातों प्रकृतिमें ६ प्रकृति उपशमे अरु सातमी सम्यक्त मोहनी प्रकृति उदै आई वेदे है अथवा प्रकृति चय गई है अरु सातमी वेदै है सो तौ वेदक समकितधारी कहिय।

अथ—नवविधि सम्यक्त वर्नन। दोहरा।

चयापशम वर्तै त्रिविध, वेदक चार प्रकार।
चायक उपशम जुगल युत,नोधा समकितधार॥

अर्थ—अव समकित के भेद कहै है—चयोपशमसम्यक्त तीन प्रकार सौ वर्तै है ३, वेदक समकित क चारि प्रकार है ४, चायिक समकित एक प्रकार १ अरु उपशम सम्यक्त १ प्रकार ए दोउ मिले तो तीनि च्यारि दोइ मिले नौधा कहतें ९ प्रकारें सम्यक्तधारी होइ॥ ४३॥

चार खपे त्रय उपशमे, पण खय उपशम दोय ।
छै षट उपशम एक यो, खयोपशम त्रिक होय ४४

अर्थ—अब तीन प्रकार खयोपशम समकित की ब्यौरी कहै हैं—सातों प्रकृति में अनन्तानुबंधी ४ खपि गये हैं अरु दर्शन मोहनी उपशमी है तौहू खयोपशम कहिये । अथवा ४ अनन्तानुबन्धी अरु मिथ्यातमहनी १ ए ५ खय गई अरु २ उपशमी ताहू खयोपशम है । अथवा मिश्र लों ६ खय गई अरु १ मातवीं उपशमी है तौहू खयोपशम, ऐसी तीन भांति खयोपशम सम्यक्त होइ ॥ ४४ ॥

अब खयोपशमसहित सम्यक्त मोहनीवेद तें जो खयोपशम वेदक निपजै है, ताके दो प्रकार कहै हैं—

दोहरा

जहां चार प्रकृति खपे, द्वै उपशम इक वेद ।
खयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ४५

अर्थ—जहां अनन्तानुबन्धी ४ प्रकृति खय होत हैं, अरु मिथ्यात, मिश्र ए दोउ प्रकृति उपशमैं हैं, अरु एक समकित मोहनी वेद है । तब इहि दशा में जो खयोपशम

सहित वेदक सम्यक्त भयो है ताको यह प्रथमभेद है ४५

दोहरा

पंच खपे इक उपशमे, इक वेदे जिहि ठौर ।
सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥

अर्थ—जहां ४ अनंतानु०, १ मिथ्यात मोहिनी एव ५ प्रकृति खपी हैं अरु एक मिश्रमोहनी उपशमी है अरु १ सम्यक्त मोहनी वेदे है, तब क्षयोपशम सहित वेदक सम्यक्त की यह दूसरी दशा भई ॥ ४६ ॥

अथ—क्षायिक वेदक यथा । दोहरा ।

क्षय षट वेदे एक जो, क्षायक वेदक सोय ।
षट उपशम इक प्रकृति विद, उपशम वेदक होय॥

अर्थ—अब जो क्षायिक सहित वेदक है अरु उपशम सहित वेदक है ताको प्रकार है । ४ अनंतानुबन्धी अरु मिथ्यात मोहिनी ५, मिश्रमोहनी एव ६ प्रकृति खपी हैं अरु एक सम्यक्त मोहनी वेदे है तो क्षायिक वेद कहिये, अरु एजु पूर्वे ६ प्रकृति कही सो जाके उपशमी है अरु सम्यक्त मोहनीय वेदे है तो उपशम वेदक सम्यक्त कहिये ।

दोहरा

उपशम क्षायिककी दशा, पूरव पट् पद माहि ।
कही प्रकट अब पुनरुकति,कारण वरणी नाहि॥

अर्थ—क्षयोपशम नामें जो सम्यक्त कही है ताकी दशा तो पूरव पट पद माहि कहतें पिछलें छप्पय छन्द म ही कही है सो ऐसे सातमा माह कछु खपै कछुक उपशम करि राखे ऐसे प्रगट कही है तातें इहा फेरि कहता में पुनरुक्त दोष लागै ता कारनतें औरों वरनी नहीं ॥ ४८ ॥

अथ—भेद वर्णन—

क्षयोपशम वेदक खिपक, उपशम समकित चार ।
तीन चार इक इक मिलत,सब नवभेद विचार४६

अर्थ—अब सम्यक्त के मूल भेद ४ अरु उत्तर ६ सो कहे है। क्षयोपशम सम्यक्त १, वेदक सम्यक्त २, क्षायिक सम्यक्त ३, उपशम सम्यक्त ४, ऐसे मूलमें च्यारि समकित भए तामें क्षयोपशमके ३ भेद वेदकके ४ भेद,क्षायिक को १ भेद,उपशमको १ भेद,सब मिलि सम्यक्त्वके ६ भेद भये।

अथ—निश्चय व्यवहार कथन । सोरठा ।

निश्चे व्यवहार, अरु सामान्यविशेष वि[illegible]

कहूँ च्यार परकार, रचना समकितभूमि की ५०

अर्थ—अब निश्चयादिक तें सम्यक्त्वकी अवस्था कहे हैं—अब १ निश्चय करिकैं, व्यवहार करिकैं अरु सामान्य धर्म तें, विशेष धर्म तें सम्यक्त्व के भूमि की च्यारि प्रकार रचना है सो कहा है ॥ ५० ॥

सवैया ३१ सा

मिथ्यामति गंठि भेदि, जगी निरमल ज्योति,
जोग सों अतीत सो तो निहचै प्रमानियैं ।
वहै दुंद दशासों कहावै जोग मुद्रा धरै,
मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानियै ॥
चेतना चिह्न पहिचानि आपापर वेदै,
पौरुष अलप तातें सामान्य वखानियैं ।
करे भेदाभेद को विचार विसताररूप,
हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानियें ॥ ५१ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व ग्रंथ भेदि कैं जो आत्मा की निर्मल ज्योति जागी है अरु जो ज्योति मन वचन काय योग सों

अतीत रहते रहित है, सो तो सम्यक्त निश्चय नय तैं प्रमान करिये, अरु सम्यक्त्व दशासों वर्तमान है है इतने वहु विकल्प तें धूम धाम दशासों वर्ते है तब तो ऐसे कहावे जा ए आगमुद्राधारी है,इहु मतिज्ञानी है,इहु श्रुतज्ञानी है ऐसे भद व्यवहार नय है । आत्मा को चेतना रूप चिन्ह रहते लक्षण पहिचान के आत्मद्रव्य का अरु परद्रव्य को भेदे है पर अन्तराय के उदय ते पारप पराक्रम अल्प है, इतने अविरती है तातें एक सामान्यपने सम्यक्त कहिये । गुण अरु गुणी का भेद जो विचार विस्ताररूप कर जैसे आत्मा गुणी है ज्ञानादिक गुण हैं, ताके भेद अभेद को विचार करनो एसे हेय ज्ञेय उपादेय का विचारि राखिनो । ऐसे विशेषपन सम्यक्त जानिये ॥ ५१ ॥

सारठा

तिथि सागर तेतीस, अ तमुहूरत एक वा ।
अविरतिसमकित रीति, यह चतुर्थगुणस्थान इति

अर्थ—अविरत सम्यक्त की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर होइ । वा कहतें अथवा जघन्य १ अन्तमुहूर्त ...
... अविरतिसम्यक्त की रीति कहते ...

भाति होय । यह चोथा गुणथानौ इति कहता समाप्त भयौ ॥ ५२ ॥

अथ—पचम गुणस्थान आरभ । दोहरा ।

अब वरनू इकवीस गुण, अर वावीस अभक्ष ।
जिन्हके सग्रह त्यागसो, शाभे श्रावक पक्ष ५३

अर्थ—अब पाचवा गुणस्थानके विवरनको आरम्भ करै है—अब पचम गुणस्थान लायक के २१ गुण कहो हो । अरु इन्हि के २२ अभक्ष्य है सो कहौ हों जिन गुण के सग्रह सों, जिन्हि अभक्ष्यके त्यागसो श्रावककों पक्ष शाभे भासमान होइ ॥ ५३ ॥

अथ—अब श्रावक इकईस गुण कथन । सवैया ३१ सा ।

लज्जावत दयावत प्रसंत प्रतीतवत,
परदोपका ढकैया पर-उपकारी है ।
सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबको इष्ट,
सिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरघ-विचारी है ॥
विशेपज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ,
न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ।

सहज विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसा,
श्रावक पुनीत इकवीस गुण धारी है ५४

अर्थ—अब श्रावक के २१ गुण के नाम कहै है–लज्जावन्त होइ १,दयावन्त होइ२,शांतमूर्ति होइ ३,प्रतीतिवन्त होइ ४,पराय दोषका ढाकनहार होइ५,परउपकारी होइ ६,सौम्यदृष्टि होइ ७,गुणग्राही होइ ८,गुरुता होइ६, सवको वल्लभ होइ १०,शिष्टाचारजोपक्षी होइ ११,मिष्टवचन बोले १२, ऊंडो विचारै १३, विशेषज्ञान को जाननहार १४, शास्त्ररमको जाननहार १५,कीनों उपगार जानै १६,तिन्हि उपगारी को जानैं १७ धर्म को जाननहार होइ १८ न तो दीनपना ग्रहैं न अभिमानी रहै ऐसे व्यवहार में मध्यस्थ रहै १६ सहज स्वभावै विनयवन्त होइ २०, अरु पाप की क्रिया सो अतीत कहतैं रहित होइ २१ ऐसो श्रावक पुनीत कहतैं पवित्र २१ गुण को धरनहार होइ ॥ ५४ ॥

अथ—बावीस अभक्ष्य वर्नन । कवित्त छंद ।

ओरा घोर वरा निशि भोजन,
वहु बीजा वेंगण सधान ।

पीपर वर उ वर कठु वर,

पाकर जो फल होय अजान ॥

कदमूल माटो विष आमिष,

मधु माखन अरु मदिरा पान ।

फल अतितुच्छ तुषार च लितरस,

जिनमत ये बावीस अखान ॥५५

अर्थ—अन जथ प श्रावक को हो २२ वस्तु अभक्ष
सो कहै है, गडा १, काचे घोलि बड़ा २, रात्रिभोजन
बहु बीजा फल दाडिम प्रमुख ४, बैंगन ५, अथाणो ६
की पीपी ७ बड़ वृक्ष के फल ८ गून्दर के फल ९ क
के फल १० पाकर के फल ११ अरु जासा ज्ञान पि
नहीं सो अजान फल १२ कदमूल जाति सर्व १३
१४ अफीम प्रमुख १५ माम १६ शहद १७ माखन
मद को पीवो १९ अति छोटो काचो फल २० हिम
जाको वर्ण गंध रस स्पर्श फिर गयो २२ श्री जिनेश
मत धारी को ए २२ वस्तु अभक्ष्य है खाद्य नहीं

दोहरा ।

अब पचम गुणस्थानकी, रचना वरणू अल्प ।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ५६

अर्थ—अब देशविरत नामैं पाचमा गुणस्थान की रचना अल्प मात्र वरनौं हों जिन्हि गुनथानामें ११ प्रतिमा धारियै है प्रतिमा ऐसा नाम चारित्रविकल्प कौ है ॥५६॥

अथ-एकादश प्रतिमा नाम कथन । सवैया ३१ सा ।

दर्शन विशुद्धकारी बारह विरतधारी,
सामाइकचारी पर्व प्रोषध विधि वहे ।
सचित्त का परिहारो दिवा अपरस-नारी,
आठों जाम ब्रह्मचारी निरारभी व्है रहे ॥
पाप परिग्रह छडे पाप की न शिक्षा मडे,
कोउ याके निमित करे सो वस्तु न गहे ।
एते देश व्रत के धरैया समकिती जीव,
ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवतजी कहे ५७

—इति ग्यारह प्रतिमा के यथार्थ नाम कहे है—

जहां स्थूल प्राणातिपात विरमण १,स्थूल मृषावाद विरमण २,स्थूल अदत्तादान विरमण ३,स्थूल मृषावाद विरमण ४, स्थूल परिग्रह विरमण ५ ए पाचौ अणुव्रत। दिसि परिमाण १,भागोपभोग परिमाण २,अनर्थ दंड त्याग ३,ए तीन गुणव्रत। सामायिक धारे १,पोसह धारे २,देशावगासिक धारे ,३ अतिथिसंविभाग ४, ए चारि शिक्षाव्रत यातै व्रत प्रतिमा भई। ॥ ६० ॥

अथ—तृतीय प्रतिमा कथा। दोहरा।

दर्व भाव विधि संजुगत, हियै प्रतिज्ञा टेक।
तज ममता समता गहै,अंत मुहूरत एक।.६१॥

अर्थ—अब तीसरी सामायिक प्रतिमा कौ व्यौरो कहै है। १० दोष वचन के,१२ दोष काया के टालवौं ए द्रव्य विधि १० दोष मनके टालवैं ता करि सयुक्त। अरु हिये मैं १०८ पच परमेष्ठी मत्र के स्मरण लौं ऐसें ओर काऊ प्रतिज्ञा टेक राखिकै ममता तजिकै समता ग्रहनी, ए भाव विधि एक अंतरमुहूर्त काल पर्यन्त सामायिक चारित होइ ॥ ६१ ॥

चौपाई ।

जो अरि मित्र समान विचारै,
आरत रौद्र कुध्यान निवारै ।
संयम सहित भावना भावै,
सो सामाइकव्रत कहावै ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो कोउ शत्रु मित्र का समान विचारै, आर्त-रौद्र ध्यान जो बुरे ध्यान है ताको निवारै ५ संवर सहित होइ, १२ भावनाभावै, सोई सामायिकधारी श्रावक कहियै है ॥ ६२॥

अथ—चतुर्थी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

सामायिक की दशा, चार पहरलौं होइ ॥
अथवा आठ पहरलौं, पोसह प्रतिमा सोइ ६३

अर्थ—अब चौथी पोसह प्रतिमा को ब्यौरो कहै है—पूर्वे जो सामायिककी दशा कही है, तैसी दशा चार पहरलौं होइ अथवा तैसी दशा आठ पहर रहै, सोई पोसह प्रतिमा धारी श्रावक कहियै ए प्रतिमा धारी चौदसि, आठमि अमावसि, पूनमि पोसह करै ॥ ६३ ॥

अथ—पचमी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर ।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पच प्रतिज्ञा गीर ॥

अर्थ—अब पचमी सचित्त परिहार प्रतिमा की व्यौरी कहै है। जो सचित्त भोजन का त्याग करै अरु फासू जल पीवे, इहि भांति जो पुरुष सचित्त वस्तु को करै पूर्वली प्रतिमा तैं इहा व्रती बढतो सो तो पच प्रतिज्ञाधारी कहवें पचमी प्रतिमा को धरनहार । ॥ ६४ ॥

अथ—षष्ठो प्रतिमा यथा । चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले,
तिथि आये निशि दिवस सभाले ।
गहि नव वाडि करे व्रतरख्या,
सो षट् प्रतिमा श्रावक अख्या ।

अथ– अब छटी दिनब्रह्मचय प्रतिमा को व्यौरो कहै है सचित परिहारिक पूर्वली भाति है,अरु दिन म ब्रह्मचर्य बढतो पालै अरु पचपरी आयें दिन रात में इतनै आठा पहर ब्रह्मचर्य राखै तहा ६ वाडि करिकै व्रत की रक्षा करे

सो अच्छा पुरुष छठी प्रतिमाका साधनहार होय ॥६४॥

अथ—सप्तमप्रतिमा यथा। चौपाई।

जो नव वाडि सहित विधि साधे,
निशि दिनि ब्रह्मचर्य आराधे।
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता,
सील शिरोमणि जगत विख्याता॥

अर्थ—अब सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमा को ब्यौरो कहै है। जो कोऊ श्रावक ६ वाड़ि सहित जो ब्रह्मचर्य की विधि है, तिहि विधि सौ धारत रात दिन ब्रह्मचर्य ही आराधतौ रहै अरु जो पीछे प्रतिमा की क्रिया कही है, सो तौ लिये ही रहै है, ऐसा जो श्रावक है सो तौ सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमा को धारनहार ज्ञाता पुरुष शीलशिरामणि ऐसे जगत में विख्यात कहतें प्रसिद्ध होइ॥ ६५॥

अथ—नौ वाडि यथा। कवित्त।

तिय थल वास प्रेम रुचि निरखन,
दे परीछ भाखे मधुवैन।
पूरव भोग केलि रस चिंतन,



गरुव आहार लेत चित चैन ॥
करि सुचि तन सिंगार वनावत,
तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥
मनमथ कथा उदर भरि भोजन,
ये नव वाडि कहे जिन वैन ॥६६॥

अर्थ—अब प्रसग तैं नौ वाडि कहै है—जहा स्त्री कौ वास तहां वास न करनो १, प्रमरु चि राखिकैं अङ्गोपांग देखने नहीं २, दृष्टि दोष निवारन कौ आडी परीछि दे कै मधुर वचन बोलिवो सुने नहीं ३, पूर्वकाल में जो भोग केलि करी होइ ताकौ रस चितवै नहीं ४, चित्तके चैन कौ घृतादिक सहित गरिष्ठ अरइष्ट आहार लवे नहीं ५ स्नान मजन तै शरीर कौ पवित्र करिकै शृंगार शोभा बनावै नहीं ६, स्त्री के सोइवे को जा पर्यंक कहतें पलग ताकै मध्य सुख शयन करै नहीं ७, मनमथ कहतें कदर्प कथा सो न कहै ८, उदर भरि भोजन न करै ९, ए नव वाडि जैन

अथ—अष्टमी प्रतिमा यथा। दोहरा।

जो विवेकविधि आदरे, करे न पापारंभ।
सो अष्टमप्रतिमा धनी, कुगतिविजै रणथंभ।६७।

अर्थ—अब आठमी निरारंभ प्रतिमा को व्यौरो कहैं है—जो कोऊ श्रावक पाछली सर्व्वक्रिया को तौ निरुक की विधि विशेष आदरे अरु पापारंभ हाव हावतें न करै सोतो आठमी निरारंभ प्रतिमा को धरणहार कुगति के विजय को रणखंभ रूप हुइ रह्यो है ॥ ६७ ॥

अथ—नवमी प्रतिमा यथा। चौपाई।

जो दशधा परिग्रह को त्यागी,
सुख संतोष सहित वैरागी।
सम रस संचित किंचित ग्राही,
सो श्रावक नौ प्रतिमावाही ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा को व्यौरो कहै हैं—धन १, धान्य २, क्षेत्र ३, वास्तु ४, रूपा ५, सोना ६, दासा ७, भाण्ड गृहोपकरण ८ द्विपद ९,
भांति परिग्रह को त्यागी होइ, सुख

वरागी होइ, उपशम रस सों सिंचित कहतें भीग्यौ रहै अरु किंचित ग्राही कहतें कछु इक असन वसन ग्रह, अरु और क्रिया सब आठमी प्रतिमा ज्यों होइ सो तौ श्रावक नौमी प्रतिमा कौ धरनहार है ॥ ६८ ॥

अथ—दशमी प्रतिमा यथा। दोहरा।

पर कौं पापारभ कौं, जो न देइ उपदेश।
सो दशमी प्रतिमासहित, श्रावक विगतक्लेश॥

अर्थ—अब दशमी पापोपदेश त्याग प्रतिमा कौ ब्यौरौ कहै है—नौमी प्रतिमा लौं गृह कुटुम्ब परिवार कौं पाप उपदेश दे पै इहां पापार भकौ उपदेश त्यागै सो तौ श्रावक दशमी प्रतिमा सहित जानियै सोई श्रावक विगत क्लेश कहतें क्लेशरहित भयौ ॥ ६९ ॥

अथ—ग्यारमी प्रतिमा यथा। चौपाई।

जो स्वच्छ द वरते तजि डेरा,
मठ मडप में करे वसेरा।
उचित आहार उदड विहारी,
सो एकादश प्रतिमा-धारी ॥ ७० ॥

अर्थ—अब ग्यारमी उद्दिष्ट त्यागी प्रतिमा कौ ब्यौरो कहैं हैं-जो श्रावक अपना घर बार में डेरा छांडि कै स्वछंद वरतै अरु मठ मंडप में वास करै, आधा कर्मी आहार कों त्यागै, योग्य आहार लेय अरु उदंड-विहारी होइ, साधु ज्यौं होइ, सो तौ ग्यारमी प्रतिमा कौ धरन-हार होइ ॥ ७० ॥

दोहा।

एकादश प्रतिमा दशा, कही देशव्रत माहि।
वही अनुक्रम मूलसौं, गही सु छूटै नाहि ॥७१॥

अर्थ-ए ग्यारमी प्रतिमा की दशा पाँचवा गुनथाना देशविरत माहि कही। वही अनुक्रम मूल सों गही ही रहै, ए छूटी नाहीं अरु बढ़ती बढ़ती क्रिया होइ ॥ ७१ ॥

अथ जघन्य मध्यम उत्कृष्ट कथन। दोहरा।

षट प्रतिमाताई जघन, मध्यम नव पर्यन्त।
उत्कृष्ट दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतत७२

अर्थ—अब ग्यारह प्रतिमा धारिनके विषै जघन्य, उत्कृष्ट दशा कहैं—छठी दिन ब्रह्मचर्य

लों जघन्य श्रावक होइ, इहा तैं आगे नौमी परिग्रहत्या प्रतिमा लों मध्यम श्रावक हाइ,अरु दशमी ग्यारमी प्रतिम को धनी उत्तम श्रावक होइ। इतने प्रतिमा को भुता कह्यो ॥ ७२ ॥इतनै प्रतिमा का अधिकार पूर्ण भयो।

अथ-पंचम गुणस्थान स्थिति कथन। चौपाई।

एक कोटि पूरव गणि लीजे,
तामें आठ वरष घटिदीजे।
यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी,
अतमुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ।

अर्थ—अब पचम गुणस्थानक जेतो काल लों रहै सो या गुणस्थाना की स्थिति कहै है—एक कोटि पूर्व वर्ष स ख्या कीजै तिन्हि वर्षनकी सख्यामें आठ वर्ष कम करियें पीछें जो वर्ष रहै सो देशव्रत गुणस्थान की उत्कृष्ट काल स्थिति है। अरु या देशव्रत की जघन्य दशा की स्थिति एक अ तमु हूर्त काल हाइ ॥ ७३ ॥

अथ पूर्वसख्या कथन। दोहरा।

सत्तर लाख किरोर मित, छप्पन सहस किरोड।

येते वर्ष मिलाय के पूरव स स्या जोड ॥७४॥

अर्थ–पूर्वकाल में जेती वर्ष सख्या होइ सो कहै है। ७० लाख कोडि वर्ष एती मिति कहवे परिणाम तापरि ५६ हजार कोडि ओरो मेलिये। एते वर्ष मिलाइ कै पूर्व कालके वर्षकी जोडि होइ ७०५६०००००००००० एते अंक होंइ। लौकिक व्यवहारमें ७ नील, ५ खर्व, ६० अर्ब एते वर्ष होंइ॥ ७४ ॥

अथ—अन्तरमुहूर्त प्रमाण कथन। दोहरा।

अत मुहूरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकृष्ट।
एक समय एकावली, अतर मुहूर्त कनिष्ट ७५

अर्थ—अब अन्तरमुहूर्त काल की जघन्य व उत्कृष्ट प्रमाण कहै है—दो घटी में एक समय जब कम होय तब तो उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त काल होइ अरु जो एक आवली पति १ समय सो कनिष्ट कहतै जघन्य मुहूर्त होइ॥ ७५ ॥

। दोहरा।

यह पचम गुणथान की, रचना कही विचित्र।
षट्ठम गुणथानकी,दशा कहूं सुन मि

अर्थ—ऐसे देशव्रत -पचम गुनथाना की विचित्र रचना कही अब हे मित्र तू सुनि, छट्ठम गुणस्थान की दशा कों कहौं हौं ॥ ७६ ॥

अथ—प्रमत्त गुणस्थानक यथा । दोहरा ।

पच प्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुणवान ।
थविरकल्प जिनकल्पजुत, है प्रमत्तगुणथान ७७

अर्थ—अब प्रमत्त नाम छठा गुणस्थान की अवस्था कहे है-धर्म-रागादिक पाच प्रमाद की दशा धारै है, अरु साधु के २८ मूल गुण कहे सो दिगबर सम्प्रदाय तै हैं स्थविर कल्प सो स्थविरकी आचार जिन्ह की आचार तिन्हतै युक्त है ऐसे प्रमत्त गुनथान होइ ॥ ७७ ॥

अथ—पच प्रमाद यथा । दोहरा ।

धम राग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय ।
पच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ७८

अथ—अब पाच प्रमाद की नाम गिनती कहे है-धर्म राग राखें १,विकथा वचन बोले २,निद्रा सोत्र ३,रस-नन्द्रिय प्रमुख के विषय सेवें ४, कषाय सेवें ५, इन्हि दशा

सहित जो मुनिराज होइ सो प्रमादी प्रमत्त कहियै ॥ ७८ ॥

अथ—अठाईस मूल गुणकथन । सवैया ।

पंच महाव्रत पाले पंच समिति सभाले,
पंच इंद्रि जीति भयो, त्यागी चित चैन को ।
षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधे ,
प्रासुक धरा में एक आसन है सैन को ॥
मंजन न करे केश लुंचे तन-वस्त्र मुंचे,
त्यागे दंतधावन सुगंधश्वास वैन को ।
ठाडो कर से आहार लघु भुंजि एक वार,
अठाइस मूलगुण धारी जती जैन को ॥७९॥

अर्थ—अब श्री मुनिराज के २८ मूलगुण कहै है, सर्वथाऊ पाणाइ-वायाऊ-वेरमण इत्यादिक ५ महाव्रत पालै, ईर्या समिति प्रमुख ५ समिति सभालिवो करै, ५ इन्द्रिय कौ जीतनहार होइ अरु जो विषय सेवन तै चित्त चैन होइ ताको त्यागी होइ१५ । गुण सामायिक प्रमुख ६ आवश्यक क्रियाहै द्रव्य तै ही साधै अरु भाव साधै ‿१ गुण भए ।

अरु प्रासुक पृथ्वी प्रमुख सज्या निर्धं प्रमाणापेत एव शयन आसन नै राखै एव २२, स्नान न करे एव २३, केश लोंच करै २४, शरीर विर्षै वस्त्र कों त्याग करै एव २५, दातन न करै, एव स्वास वदन को सुगन्ध मुह छन प्रमुख न चन्ये २६, ऊभौ ही आहार कों करतैं कहूतैं हाथ तैं ग्रसै एव २७, लघु भु जे अ त प्रात आहार भु जैं सोई एकटक एव २८ ऐसे २८ मूल गुण को धरनहार जैन दर्शनी जती होइ ॥ ७९ ॥

अथ—महाव्रत यथा । दोहरा ।

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
किंचितत्यागी अणुव्रती सर्वत्यागी मुनिराज८०

अर्थ—अब महाव्रत कहे है—जीवघात १, असत्य २, चोरी करनी ३, मैथुन ४, परिग्रह सामग्री ए ५ आस्रव हैं या कौ किंचित त्यागी—सो कछु इक त्यागी सो तौ अणुव्रती अरु इन्हि कौं जो सर्वथा त्यागी सो तौ मुनिराज कहियै ॥ ८० ॥

अथ—पंच समिति यथा । दोहरा ।

चलै निरखि भाखै उचित, भखै अदोप अहार ।

लेइ निरखि डारे निरखि, समिति पंचपरकार

अर्थ—समिति कहियै सावधानाई, सो पांच कहै है। निरख करि चालै सो ईर्यासमिति १, योग्य वचन बोले सा भाषा समिति २, दूषणरहित आहार ले सो एषणा समिति ३, वस्त्र पात्र निरख कै ले सो आदान निक्षेपण समिति ४, और मल मूत्रादिक निरखकै डारै सो पारिष्ठापणी समिति होइ है ॥ ८१ ॥

अथ—षट आवश्यक यथा । दोहरा ।

समता वंदन स्तुति करन, पडकोना सज्झाय ।
काउसग्ग मुद्राधरन, ए षडावश्यक भाय ॥८२॥

अर्थ—अवश्य करियें तातै ए ६ आवश्यक कहिय तार्के नाम कहै-सामायिक धरनी १, गुरुवन्दना २, २४ जिनेश्वर को स्तुति करनी ३, अतीचार तें निवर्तना सो पडिकोना प्रतिक्रमण ४, स्वाध्याय करनी ५, काउसग्ग मुद्रा धरनी ६, ए आवश्यक भाव कहिय ॥ ८२ ॥

अथ—स्थविरकल्प जिनकल्प कथन । सवैया ३१ सा

थविरकलपि जिनकलपि दुविध मुनि,
दोउ वनवासी दोउ नगन रहत है ।

दोउ अठावीस मूलगुण के धरैया दोउ,
सरवस्र त्यागि व्है विरागता गहत है ॥
थविरकलपि ते जिन्ह के शिष्य शाखा होय,
बेठि के सभामें धर्मदेशना कहत है।
एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर,
उदैकी मरोर सों परिसह सहतु हैं ॥ ८३ ॥

अर्थ—अब स्थविरकल्पी अरु जिनकल्पी कौ भेद कहै हैं—स्थविरकल्पी अरु जिनकल्पी ऐसे दो भांति के मुनीश्वर होहि ए दोऊ वनवास में रहैं, दोऊ नगे रह, ए दोऊ अठावीस मूल गुण के धरनहार होंहि, ए दोऊ सर्व्व-त्यागी हुइ कै वैरागभाव ग्रहैं हैं, ए दोऊ ऐसे कहे पै या दोऊ में स्थविरकल्पी सो कहियै जिन्हि क शिष्य साखा होइ अरु सभा म बैठ के धर्मदेशना कहै है, अरु जो जिन-कल्पी होइ सो एकाकी हाइ घोर तपस्वी होइ, अरु कर्म उदय की मरारि सों जे परीसह उपजै है सो सहै है ॥ ८३ ॥

अथ—वाीस परीसह यथा, सवैया ३१ सा।

ग्रीष्म में धूप थित, सीत मे अकप चित्त

भूखे धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ।
डंसमसकादिसों न डरे भूमिसैन करे,
वध वध विथामें अडाल व्है रहत है ॥
चर्या दुख भरे तिण फास सो न थरहरे,
मल दुरगंध की गिलानि न गहतु है ।
रोगनि को करे नँ इलाज ऐसो मुनिराज,
वेदनी के उदै ए परिसह सहतु है ॥ ८४ ॥

अर्थ—अब प्रसंगतैं २२ परीसह कहै है—साधु की सहिवा योग्य सो परीसह कहीयें । उष्ण काल विषैं धूप में आतपता ग्रहै १, शीतकाल विषैं शीत सहैं, चित्त में कंपै नहीं २, भूखे थकै धैर्य धारैं अनखणी ग्रहै नहीं ३, प्यासवत थकै सदोष जल चाह नहीं ४, नंगे शरीर कौं डस ममका दिक चूंटें तौहू डरें नहीं ५, भूमि शैय्या करे ६, वध कहते मरणांत कष्ट, वध विथा कहतें भांति भांति बंधनादि कष्ट तातैं अडोल रहे ७, चर्या कहिये विहार ताकौ दुख भरैं उदीरिलै ८, विहार में अथवा शयनासन विषैं कठोर तृण स्पर्श सों थरके नहीं ९, मल की जा दुर्गंध है तासों गिलानि-

कहत सुग दुगछा सौ ग्रहै नहीं १०, रागनि को
करै नहीं, रोग वेदना सहैं ११, असो मुनिराज
वेदनीय कर्मके उदयतें ए ११ परीसह उपजे हैं सो स

अथ—कुंडलिया छंद।

येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत
लज्जा संकुच दुख धरे नगत दिगम्बर हो
नगन दिगम्बर होत श्रोत्र रति स्वाद न से
त्रिय मनमुख हग रोक, मान अपमान न
थिर व्है निर्भय रहे, सहे न कुवचन जग
भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट येते।

अर्थ—चारित्र मोहनीय कर्म के उदोत कहतै
हातें मुनि पें एते संकट आनि परे हैं, सो सहैं
संकट की गिनती करै है, नग्न दिगम्बर हो
लज्जा व संकोच दुख उपजै है ताकों धारैं—इ
संकट तै न भाजै १, औरो ही नग्न दिगम्बर
श्रोत कहते इन्द्रिय ताकै रतिस्वाद को न सेवैं इतनै

हैं इतनैं स्त्री के हाव भाव सों भूके नहीं ३, काहू सत्कार न्हो, अरु काहू असत्कार कीन्हों या परि विषमता न ा ४, काहू भय सौं भागै नहीं थिर रहै निर्भय रहे ५, गत में जेतेक कु वचन है, आक्रोश वचन है सो सब ही हैं ६, भिक्षा ग्रहण तें भिक्षुक पद समझे यें याचा संकट न भाजै ७। चारित्रमोह को उदय तें मुनि लोक परीं ७ स्ट लहै है सो सहै ॥ ८५ ॥

दोहरा।

अल्पज्ञान लघुता लखै, मति उत्कर्ष विलोय।
ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ८६

अर्थ—बिना पढ़िवे अल्प ज्ञान तें सबनि में अपनी लघुता होय है सोऊ लखि कैं सहैं, अपनी मति की उत्कृष्ट कहतें उत्कृष्टपनौ विलोइ कहतें देखिक गुरुता सहैं, ऐसैं ज्ञानावरनी कर्म के हावे अज्ञान परीसह अरु प्रज्ञा परीसह ए दोइ परीसह उपजै है सो सहै हैं ॥ ८६ ॥

दोहरा।

रोके उमंग जु लाभ की, अतराय के होत ८७

अर्थ—दर्शन मोहनीय के उदोत कहतें उदय होतें जो अदर्शन कहतें सम्यग्दर्शन की मलिनता उपजै है, ताकी दुस्तता दशा है पै सम्यगदर्शन ते न भाजै १, अतराय कर्म के उदय होवे जो लाभ की उमग रोकी रहै है, तातै अनाभ को सहै १। एतै २२ परीसह कहे ॥८७॥

अथ—बाबीस परीसह वर्नन। सवैया ३१ सा।

एकादश वेदनी की चारित माहकी सात,
ज्ञानावरणी की दोय, एक अतराय की।
दशन मोहनी एक द्वाविंशति बाधा सब,
केई मनसाकि केई वाकी केई कायकी॥
काहु को अलप काहु सौ बहु उनीसताइ,
एकहि समयमे उदै आवै असहायकी।
चर्या थिति सज्या मांहि एक शीत उष्ण मांहि
एक दोय हाहि तीन नाहि सम दाय की॥८८॥

अर्थ—अब जिन २ कर्म के जेते परीसह उपजै है

कान्हा उपजै है, चारित्र मोहनी कर्म को कीन्ही ७ बाधा उपजै है, ज्ञानावरनीरी कीन्ही दो बाधा उपजै है, अन्तराय री १ बाधा उपजै है, दर्शन मोहनीयरी कीन्ही १ बाधा उपजै है। ए सब ही बाधा मिलकर २२ होइ। एई २२ परीसह कहिये। या २२ बाधा में केई मनमा री है। केई वचन की है और केई कायरी हैं या २२ बाधा माहिली काहूकों अल्प एक दोइ उपजै काहूरों बहुत उपजै तौ एक ही समै में १६ बाधा उदै आवै। तामें जो असहाय की कहत जो बाधा साथ २ ही बोलें है पै साथ ही बनै नाहीं तर तामें एक ही बाधा एक समै होइ सो असहायरी कहिये जैसे चर्या परीषह चालिवेतें उपजै है। थिाव कहत निषद्या ताकी परीसह रहिवे ते उपजै है शैयाकी बाधा रहिवा तै उपजै है अरु शीत बाधा उष्ण बाधा में एक सम एक ही बाधा उपजै तातें या ५ परीषह में १ अथवा २ अथवा ३ एक समय होहि पै समुदाय रूप न होइ ॥ ८ ८॥

इतनै परीसह अधिकार सपूर्ण भयो।

दोहरा।

नाना विधि सकट दशा, सहि साधे ...

थविरकल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ ८९

अर्थ—ऐसे नानाप्रकार संकट है। ताकी दशा सहिकै मुक्ति मार्ग साधै तातैं थविरकल्प के धरनहार अरु जिन कल्पके धरनहार ए दोनु निग्रंथ सम बराबरि है ॥ ८९ ॥

अथ—स्थविर कल्पा तार-तम्य कथन। दोहरा।

जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्प सो जान।
एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प वखान ९०

अर्थ—अब स्थविर कल्प में अरु जिन कल्प में कछु तफावत है सो कहै है। जो मुनीश्वरगणकी संगति में रहै सो तौ थविरकल्प जानियें। जाकै गणकी निष्टा नाहीं तातैं एकाकी जाकी दशा है, सो जिनकल्पी वखानियें ॥९०॥

चौपाई।

थविरकल्प-धर कछुक सरागी,
जिनकल्पी महान वैरागी।
इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी,
पूरण भई जथारथ वरनी ॥ ९१

अर्थ—ए दोना निग्रंथ में थविरकल्प को धरनहार

कछुक सराग दशामें है। अरु जो जिनकल्पी है सो महा-वैरागी है, इतने प्रमत्त थानक की जो भूमिका बांधी अरु यथार्थ कहतें साचिपन वरनी सो पूर्ण भई ॥ ९१ ॥

अथ—सप्तम गुणथानक वर्नन। चौपाई।

अब वरणो सप्तम विसरामा,
अपरमत्त गुणस्थानक नामा।
जहा प्रमाद दशा विधि नासे,
धरम ध्यान थिरता परकासे ॥ ९२ ॥

अर्थ—अब सातमा गुनथानक को वरनन करें है। मुक्ति मंदिर को चढ़त जो सातमो विश्राम है अरु अप्रमत्त गुनस्थानक जाको नाम है सो अब कहै जिहि गुनथाना विषै धर्म रागादिक प्रमाद की विधि नाशै है जो पूर्व गुनस्थान विषै धर्म-ध्यान चचल हो सो इहां थिरपनै व प्रकाश करै है ॥ ९२ ॥

दोहरा।

प्रथम करण चारित्र को, जासु अन्त पद होय।
जहां आहार विहार नहि,अप्रमत्त है सोय ॥ ९३ ॥

अर्थ—जिन गुनथाना के अंत पद विषै इतनै छैलै समय चारित्र मोहनीय कर्म भेदिवै कौ यथा प्रवृत्त नामैं प्रथमकरण भयौ, इहा धर्म-ध्यानकी थिरता ऐसी है जहां आहार विहार क्रिया है नाहीं सा अप्रमत्त गुनस्थानक होइ, ए कथन दिगंबर संप्रदाय कौ है ॥ ९३ ॥

अथ—अष्टम गुनस्थानक वर्नन । चौपाई ।

अब वरणू अष्टम गुणस्थाना,
नाम अपूरवकरण वखाना ।
कछुक मोह उपशम कर राखे,
अथवा किंचित क्षय करि राखे॥९४॥

अर्थ—अब आठमा गुनस्थान कौ वर्नन करै है । अब आठमौ गुनथानौ वरनौ हौं जाकौ नाम अपूर्व—करन बखानियै है । अब यहा तै श्रेणि चढ़िवै में जो उपशम श्रेणी चढ़ै है तौ इहा कछु मोह कौं उपशमाइ राखे अथवा जो क्षपक श्रेणी चढ़ै है तौ इहां चारित्र मोह कौ कछु क्षय करि नाखै ॥ ९४ ॥

चोपाई।

जे परिणाम भये नहि कबही,
तिनको उदै देखिये जबही।
तब अष्टम गुणस्थानक होई,
चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो ऐसे परिणाम पहिलें कबही काल में भए नहा तिन्हि परिनामनि कौ जब ही उद्योत कहतें प्रगटपनौ देखियै है तब आठमा गुनथानक होइ, याकै छैहलें समय चारित्र मोहनीय कर्म भेदिबे कौ अपूर्व करण नामै दूसरौ करण हुई चुकौ, याकौ नाम निवृत्ति पिण है ॥ ९५ ॥

अथ—नवम गुणस्थाना को वर्नन करौ हौं। चौपाई।

अब अनिवृत्तिकरण सुनि भाई,
जहा भाव थिरता अधिकाई।
पूरव—भाव चला—चल जेते,
सहज अडोल भये सब ते ते ॥९६॥

अर्थ—अब नवमा गुनथाना कौ वर्नन करौ हौं—अब अनिवृत्तिकरण गुनथानाकौ व्यवहार कहौं हौं सो भाई

अर्थ—जिन गुनथाना के अंत पद विषै इतने छैलै समय चारित्र मोहनीय कर्म भेदिवै कौ यथा प्रवृत्त नामै प्रथमकरण भयौ, इहा धर्म-ध्यानकी थिरता ऐसी है जहाँ आहार विहार क्रिया है नाहीं सा अप्रमत्त गुनस्थानक होइ, य कथन दिगंबर संप्रदाय को है ॥ ६३ ॥

अथ—अष्टम गुनस्थानक वर्नन । चौपाई ।

अब वरणू अष्टम गुणस्थाना,
नाम अपूरवकरण वखाना ।
कछुक मोह उपशम कर राखे,
अथवा किंचित क्षय करि राखे॥६४॥

अर्थ—अब आठमा गुनस्थान कौ वर्नन करूं हूं । अब आठमौ गुनथानौ वरनौं हौं जाको नाम अपूर्व—करन वखानियै है । अब यहा ते श्रेणि चढ़िवै में जो उपशम धकौ चढ़ै है तौ इहा कछु मोह कौं उपशमाइ राखे अथवा जो क्षपक धकौ चढ़ै है तौ इहां चारित्र मोह को कछु क्षय करि नाख ॥ ६४ ॥

चोपाई।

परिणाम भये नहि कबही,
तिनको उदै देखिये जबही।
न अष्टम गुणस्थानक होई,
चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ६५ ॥

अर्थ—जो ऐसे परिणाम पहिलें कबही काल में भए
तिन्हि परिनामनि को जब ही उद्यात कहत प्रगटपनों
ये है तब आठमो गुनथानक होए, याके पहिलें समय
त्र मोहनीय कर्म भेदिवे को अपूर्व करण नाम दूसरो
ण हुई चुरो, याको नाम निरुचि पिय है॥ ६५ ॥

अथ—नवम गुणस्थाना को वर्नन करों हों। चौपाई।

अब अनिवृत्तिकरण सुनि भाई,
जहा भाव थिरता अधिकाई।
पूरव—भाव चला—चल जेते,
सहज अडोल भये सब ते ते ॥६६॥

अर्थ—अब नवमा गुनथाना को वर्नन करो हों—
अब अनिवृत्तिकरण गुनथानाको व्यवहार कहों हों

तू मुनि जिहि गुनथाना विर्षे थिरता भाव की अधिकाई है अरु जा पूर्व भाव कषाय नोकषाय के उदय तैं, जैतेक चलाचल हुता सो भाव इहा सहज ही सब अडोल भए।

चौपाई।

जहा न भाव उलट अधि आवे,
सो नवमो गुणस्थान कहावे।
चारित्र मोह जहा बहु छीजा,
सोहै चरण करण पद तीजा ॥६७॥

अर्थ—जहा भाव चढिकै अरु तहा सौं उलटिकै अध कहतैं नीचे न आवै ऐसे अनिवृत्ति कहावै इहा अनिवृत्ति को परमार्थ सिद्धांत में और भाति है। सो तौ नवमो अनिवृत्ति गुनथानो कहावे जहा चारित्रमोह कर्म बहुत छीज्यौ। सा यहु चारित्रमोह भेदवेको तीसरौ अनिवृत्तिकरन भया ॥६७॥

अथ—दशम गुनस्थानक वर्नन। चौपाई।

कहूं दशम गुणस्थान दु शाखा,
जहा सूक्षम शिवकी अभिलाखा।
सूक्षमलोभ दशा जहा लहिये,

सूक्षमसापराय सो कहिये ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब दशमा गुनस्थान कौं वर्नन करैं हैं—अबदशमों गुनस्थान कहों हौं जो दुसाखा कहतें उपशम अरु षपक ऐसे दोइ साखाओं वर्तें है जिहि गुनथाना विषैं सूक्ष्म शिव पद की अभिलाषा है। ऐसी जहा सूक्ष्म लोभ दशा पाइयैं सोई सूक्ष्मसपराय कहिय। सपराय ऐसो कषाय को नाम है ॥ ६८ ॥

अथ-एकादश गुनस्थान वर्नन। चोपाई।

अब उपशांत मोह गुणठाना,
कहो तासु प्रभुता परमाना।
जहां मोह उपसमे न भासे,
यथाख्यात चारित परकासे ॥ ६६ ॥

अथ-अब इग्यारमा गुनस्थान कौं वर्नन करैं हैं—अब ग्यारमौं उपशांत मोह नामैं गुनठानो कहो हौं अरु ताकी प्रभुता कौ प्रमाण कहा हौं जिहि गुनथाना विषैं मोह कर्म सबही उपशमैं,उदयमैं भासैं नहीं अरु यथाचारित्रको प्रकाश होहै है जैसो नि.संग आत्माको स्वरूप है तैसो प्रगटै है॥६६॥

दोहरा

जाहि परस के जीव गिर,परे करे गुण रद्द ।
सो एकादशमी दशा,उपशम की सरद्द १००

अर्थ—जो उपशम-श्रेणि चढ़िकै अरु जिन्हि गुनथाना कौं परसि कै अवश्य ही जीव गिरि परै अरु जो गुण प्रगटे है सौ सब रद्द करै सो यहु इग्यारमी दशा भई इतनैं उपशांतमोह गुनठानो भयौ एती उपशमकी सरहद कहतैं मर्यादा भई ॥ १०० ॥

अथ-द्वादशम गुनस्थानक वर्नन । चौपाई ।

केवल ज्ञान निकट जहा आवे,
तहा जीव सब मोह खपावे ।
प्रगटे यथाख्यात परधाना,
सा द्वादशम क्षीण गुणठाना १०१

अर्थ—अब वारमा क्षीण मोह गुणठाणा कौ वर्नन करै हैं—जिहिं गुनठानैं केवलज्ञान निकट आवै है अरु जहा जीव सब मोहकौं खपाइकै और ३ घातिया कर्म खपावै अरु जहा प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगटे

ऐसे प्रकारतें जो है बारमा चीणमोह गुनथाना कहिये१०१

अथ सप्त गुनस्थानक स्थिति कथन । दोहरा ।

षट सप्तम अष्टम नवम, दशम एकादशबार ।
अतमुहूरत एक वा,एकसमै थिति धार १०२

अथ—इहा लों पीछिला ७ गुनठाना विषै जो काल स्थिति है सो कहे है—छटां सातमां आठमा नवमो दशमो इग्यारमो, बारमो ए७गुनथाना है याकी स्थिति एक अंतर मुहूरत की है वा कहते अथवा सात गुणथाना जघन्य एक एक समय थिति धरे है ॥ १०२ ॥

अथ—तेरहवे गुणथाना वर्णन । दोहरा ।

चीणमोह पूरण भयो,करि चूरण चितचाल ।
अब सयोगगुणस्थानकी, वरणू दशा रसाल ॥

अर्थ—मोहमयी चित्त की चाल हुती ताकौ चूरन करि कैं चीणमोह गुणठानौ पूरन भयौ अब सयोगी गुनठाना की जो रसाल दशा है ताकौ वरनौ हौं ॥ १०३ ॥

अथ–अब त्रयोदश गुनस्थानको स्वरूप वर्नन। सवैया३१सा

जाकी दु.खदाता घाती चोकरी विनशगई,

चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है ।
प्रगटि भयो अनत दर्शन अनत ज्ञान,
वीरज अनत सुख सत्ता समाधान है ॥
जामे आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति अस्सी,
इक्यासी चोप्यासि वा पच्यासि परमान है ।
सो है जिनकेवली जगतवासी भगवान,
ताकि ज्यो अवस्था सो सयोगी गुणथान है १०

अर्थ—अब तेरमा सयोगी गुनठानाका वर्नन करे है-
आतम गुण के घात की करनहारी ऐसी ज्ञानावरनी
दर्शनावरनी २, मोहनी ३, अन्तराय ४, ए घाति कर्म
चौकरी दुखदाता हुती सो जाके विनशि गई अरु या
आतम गुणको घात न करे ऐसी वेदनीय१, आयु२, नाम
गोत्र ४ ए च्यारि अघाति कर्म चौकरी रही सो जरी जे
समान रही, दर्शनावरणी कर्म क्षय गये तें, जहां अ
दर्शन कहते केवलदर्शन प्रकट भयो अरु ज्ञानावरनी,
पायेतैं अनत ज्ञान प्रगट भयो । अन्तराय को क्षय
अनन्तवीर्य प्रगट भयो.मोहनी क्षय भयते अनतसुख

अरु समाधि प्रगटी अरु जामें आयुकर्म१,नामकर्म२, गोत्र-कर्म३,वेदनीयकर्मकी ४ प्रकृति रहे है,तामें काहूके आहारक शरीर १,आहारक अंगोपांग २,आहारक संघात ३, आहा-रक बन्धन ४, जिन नाम ५ बिना ८० रहे हैं,काहू कै ८० जिन नाम सहित है तब ८१ है, काहू के आहार चतु रहे अरु जिननाम नाही तब ८४ है काहू के ८४ जिन नाम सहित है ८५ प्रकृति प्रमान है ऐसी दशा को धरन-हार जो है सो जिन होई, केवली होइ जगतवासी भगवान होइ ताकी जो अवस्था है सोई सयोगी गुनस्थान कहिये।

अथ—केवलज्ञानी की स्थिति वर्णन । सवैया ३१ सा ।

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा,
अथवा सु काउसग्ग मुद्रा थिर पाल है ।
खेत्र सपरस कर्म प्रकृती के उदै आये,
बिना डग भरे अंतरिच्छ जाकी चाल है ॥
जाकी थिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि,
अंतरमुहूरत जघन्य जग-जाल है ।
सो है देव ... १८ दूषण रहित ताको,

बनारसि कहे मेरी वंदना त्रिकाल है ॥१०५॥

अर्थ—अब सयोगी गुनस्थान वाले की मुद्रा दिखावें हैं, जो अडोलपनै सर्वथा प्रकारें पर्यंक मुद्राधारी होइ इतनै पद्मासन चालिकें सदा सर्वदा बैठे रहें अथवा काउसग्ग मुद्रा थिरपनें पालें ए कथन दिगंबर सम्प्रदाय की है, अरु बेत्र स्पर्शरूप जा कर्म प्रकृति है, ताकें उदय आवे तें केवली विहार करें हैं, पै और पुरुष ज्यों चल नहीं,तहां केवली डग भरे बिना अन्तरिक्ष कहते आकाश विषें अधर रुप चालें। याही प्ररुपना दिगंबर सम्प्रदायकी है, जिन सयोगी गुनस्थान की थिति आठ वर्ष कम पूर्व कोडि वर्ष की होइ, इतने जन्म तें आठ वर्ष लों केवल ज्ञान उपजै नहीं अरु या गुनथानाकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की होइ। जगत जाल में इतनों ही रहिबौ होइ। इहां लों ऐसी अवस्था का धरनहार होइ सो तो अठारह दूषण रहित देवाधिदेव होइ, बनारसीदास कहै है ताकों मेरी त्रिकाल बन्दना है ॥ १०५ ॥

अथ—अठारह दोष कथन। कुण्डलिया छन्द।

दोष अठारह रहित सो केवली सयोग,

जनम मरण जाके नहीं,नहि निद्रा भय रोग।
नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति,
जरा खेद पर स्वेद, नाहि मद वैर विषै रति।
चिंता नाहि सनेह नाहि,जहा प्यास न भूख न,
थिर समाधि सुख सहित,रहित अठारह दूषण॥

अर्थ—अब अठारह दूषणके नाम कहे हैं। जो अठारह दूषण करि रहित होइ सो सयोगी केवली कहिये। जाके जन्म नहीं १,मरण नहीं २,निद्रा नहीं ३,भय नहीं ४, रोग नहीं ५,इहि ५ दोष निर्मल भये,सोग नहीं ६, विस्मय नहीं ७, मोहमति नहीं ८, जराको खेद नहीं ९,प्रस्वेद नहीं १०,मद नहीं ११,वैर नहीं १२,चिंता नहीं १३, रतिभाव नहीं१४, स्नेह नहीं १५, जाकू प्यास लगै नहीं १६,भूख लगै नहीं १७,अस्थिरपनो नहीं १८, यातैं समाधि सुख सहित थिर रूप है ऐसे १८ दूषित रहित हैं ये १८ दूषण दिगंबर सम्प्रदायके हैं अन्यसम्प्रदायमें १८ दोष न्यारे कहे हैं ॥१०६॥

पुन. कुण्डलिया।

नहीं निरच्छरी सप्त धातु मल नाहि।

केश रोम नख नहि वढे, परम औदारिक माहि ॥
परम औदारिक मांहि,जहां इन्द्रिय विकार नसि,
यथाख्यात चारित्रप्रधान,थिर शुक्लध्यान मसि ।
लोकाऽलोक प्रकाश, करन केवल रजधानी,
सो तेरम गुणस्थान, जहा अतिशयमय वानी ॥

अर्थ—जिहिं गुनथाना की अवस्था में निरच्छरी वानी मस्तक विषैं ॐ कार ध्वनि रूप होइ, अरु शरीर में ७ धातु अरु धातु के मल होतु नाहीं ए दिगंबर सम्प्रदाय मों कह्यौ है अरु जाके शरीर में केश रोम नख ए नाहीं वढे है तोहू औदारिक शरीर माहि पै एतै दोप नहीं याहीं ए देवाधिदेव परम औदारिक शरीर माहि कहिगै, जहा जाकै इंद्रिय विकार नशि गये जहा प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट्यों अरु जहा शुक्लध्यान रूप शशि कहतैं चन्द्रमा सो थिर रूप है अरु जहां लोकालोक के प्रकाश की करनहारी केवल ज्ञान रूप राजधानी विराज रही है सो तरमौ सयोगी गुनथानौ कहिगै तहा ३४ अतिशयमय वानी होइ ॥१०७॥

दोहा ।

यह सयोग गुणथान की, रचना कही अनूप ।
अब अयोग केवल दशा, कहूँ यथारथ रूप १०८

अर्थ—यह सजोगी गुनथाकी सबतें अधिक अनुपम रचना कही अब अयोगी केवली की दशा यथार्थ रूप कहतें जैसी भाति को है तैसी भाति की कहो हों ॥ १०८ ॥

अथ—चतुर्दशम गुणस्थान वर्नन । सवैया ३१ सा ।

जहा काहू जीवकों असाता उदै साता नाहि,
काहूकों असाता नाहि साता उदै पाईये ।
मनवच काया सों अतीत भयो जहा जीव,
जाको जसगीत जगजीत रूप गाइये ॥
जामें कर्मप्रकृतिकि सत्ता जोग जिनकी,
अतकाल द्वै समें मे सकल खपाइये ।
जाकी थिति पच लघु अचर प्रमाण सोइ,
चौदहा अयोगि गुणठाना ठहरायेइ ॥ १०९ ॥

...हि गुनथाना विषै काहू जीव कौ असाता...

वेदनीय का उदै है अरु साता वेदनीयको उदय नाहीं है। इतनी साता वेदनीय सत्तारूप है। अरु काहूकी साता वेदनी यही उदै है अरु असाता उदय में नाही इतन सत्तामें है अरु शैलीशी करन करके मनोयोग वचनयाग कायया सा जहां जीव अतीत भयो इतने योग रहित भयो अरु वाकके अनको वतन जो है सो जगतवेता रूप मारी है,अरु जामें आगी जिनकी सो रहते —सयोगी केवली की भांति कर्म प्रकृतिन की सत्ता रही है अन्तराल विषै अन्त के दोइ समय माहि समस्त खपाइये यह जिन्हि गुनथाना का स्थिति पंच लघु अक्षर अ इ उ ऋ लृ ५ अक्षर कहतें जो काल प्रमान होइ इतनें काल प्रमान थिति है सोई चौदमो अयोगी गुनठानो ठहराइये ॥ १०६ ॥

। दोहा ।

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल ।
आस्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्ष को मूल ११०

अर्थ—जगवासी जीव अशुभ यको भूल में परी है वाको ए चौदहो गुनस्थानसौ चौदहदशा होति है,इहां तत्व दृष्टि तें देखतें आस्रव संवर भाव जो है सोई बंध मोक्ष को

मूल हैं इतनैं आस्रव बंधमूल है, संवर मोक्षमूल है ॥११०॥

अथ—आस्रव संवर व्यवस्था कथन । चौपाई ।

आस्रव संवर परणति जौलों,
जगतनिवासी चेतन तौलों ।
आस्रव संवर विधि व्यवहारा,
दोउ भवपथ शिवपथ धारा ॥१११॥

अर्थ—अब आस्रव संवर की न्यारी २ व्यवस्था कहै है । जब ताईं आस्रव संवर के परिनाम परिनमें तब ताईं चेतन ईश्वर जगत निवासी हुइ रह्यो है, इहां आस्रव की विधि है, सोऊ व्यवहारमें है, अरु संवरकी विधि है, सोऊ व्यवहार में है । ए दोऊ व्यवहारमत १४ धारा रूढ़त संसार मार्ग की धारा अरु मोक्ष मार्ग की धारा है ॥ १११ ॥

अथ—संवरको नमस्कार । चौपाई ।

आस्रव रूप वध उतपाता,
संवर ज्ञान मोक्ष पददाता ।
जा संवर सों आस्रव छीजे,
ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११

ग्रंथसमाप्ति और अन्तिमप्रशस्ति

चौपाई।

भयौ ग्रंथ संपूरन भाषा,
बरनी गुनथानककी साखा।
बरनन और कहालों कहिये,
यथासकति कहि चुप ह्वै रहिये ॥१॥

अर्थ—भाषा समयसार ग्रंथ समाप्त हुआ। और गुन स्थान अधिकारवर्नन किया। इसका और कहा तक वर्नन करिये। शक्तिअनुसार कहकर चुप हो रहना उचितहै॥१॥

चौपाई।

लहिये पार न ग्रंथ उदधिका,
ज्यों ज्यों कहिये त्यों त्यों अधिका।
तातैं नाटक अगम अपारा,
अलप कवीसुरकी मति धारा ॥ २ ॥

अर्थ—ग्रंथरूप समुद्रका पार नहीं पा सकते,ज्यों ज्यों कथन किया जाय, त्यों त्यों बढ़ता ही जाता है, क्यों कि नाटक अपरम्पार है और कविकी बुद्धि तुच्छ है।

भावार्थ—यहा ग्रंथको समुद्रकी उपमा दी है और कविकी बुद्धिको छोटी नदी की उपमा है ॥२॥

दोहा।

समयसारनाटक अकथ, कविकी मति लघु होइ
तातैं कहत बनारसी, पूरन कथैं न कोइ ॥३॥

अर्थ—समयसार नाटक का वर्णन महान है, और कविकी बुद्धि थोड़ी है, इससे पंडित बनारसीदास जी कहते हैं कि उसे कोइ पूरा पूरा नहीं कह सकता ॥ ३ ॥

अथ—ग्रंथ महिमा। सवैया ३१ सा।

जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि,
जीतै किहि भांति चक्री कटकसो लरनौ।
जैसे कोऊ परवीन तारू भुज भारू नर,
तिरै कैसें स्वयंभूरमण सिंधु तरनौ॥
ऊ उद्यमी उछाह मनमाहि धरै

करै कैसे कारिज विधाताको सौ करनो।
तैसे तुच्छ मति मेरी तामे कविकला थोरी,
नाटक अपार मैं कहालो याहि वरनो ४

अर्थ—यदि अकेला योद्धा अपने बाहुबल के द्वारा चक्रवर्ती के दल से लडे, तो वह कैसे जीत सकता है ? अथवा कोई जल तारिणी विद्यामें कुशल मनुष्य स्वयंभूरमण समुद्र को तरना चाहे, तो वैसे पार हो सकता है ? अथवा कोई उद्योगी मनुष्य मनमें उत्साहित होकर विधाता[1] जैसा काम करना चाहे,तो कैसे कर सकता है ? उसी प्रकार मेरी बुद्धि अल्प है या काव्य कौशल कम है और नाटक महान है इसका मं कहा तक वर्णन करू ॥ ४ ॥

जीव नरकी महिमा । सवैया ३१ सा ।

जैसे वटवृक्ष एक, तामें फल है अनेक,
फल फल वहु बीज, बीज बीज वट है।
वटमाहि फल, फल माहि बीज तामें वट,
कीजे जो विचार तो अन तता अघट है

१—यहां ब्रह्मा व मात्र समझना

तैसे एक सत्तामें अनंत गुण परजाय,
पर्जैमें अनंत नृत्य तामें अनंत ठट है।
ठटमें अनंतकला, कलामें अनंतरूप,
रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ५

अर्थ—जिस प्रकार एक वटके वृक्षमें अनेक फल होते हैं, प्रत्येक फलमें बहुतसे बीज तथा प्रत्येक बीजमें फिर वट वृक्षका अस्तित्व रहता है और बुद्धिसे काम लिया जावे तो फिर उस वटवृक्षमें बहुतसे फल और प्रत्येक फलमें बहुतसे बीज और प्रत्येक बीजमें वट वृक्षकी सत्ता प्रतीत होती है, इस प्रकार जीव रूपी नटकी एक सत्तामें अनंत गुण हैं, प्रत्येक गुणमें अनन्त पर्याय हैं, प्रत्येक पर्यायमें अनंत नृत्य हैं, प्रत्येक नृत्यमें अनंत खेल हैं, प्रत्येक खेलमें अनंत कलाएँ हैं, और प्रत्येक कलाकी अनंत आकृति हैं। इस प्रकार जीव बहुत ही विलक्षण नाटक करने वाला है ॥५॥

। दोहा ।

ब्रह्मज्ञान आकाश मे, उडै सुमति खग

यथाप्रकृति उद्यम करै, पार न पावै कोइ ६

अर्थ—ब्रह्मज्ञानरूपी आकाश में यदि श्रुतज्ञानरूपी पक्षी शक्ति अनुसार उड़ने का प्रयत्न करें, तो कभी अन्त नहीं पा सकता ॥ ६ ॥

चौपाई।

ब्रह्मज्ञान-नभ अंत न पावै,
सुमति परोक्ष कहालौं धावै।
जिहि विधि समयसार जिन्हि कीन्हो,
तिन्हिके नाम कहौं अब तीनों ॥७॥

अर्थ—ब्रह्मज्ञानरूप आकाश अनन्त है और श्रुतज्ञान परोक्ष है, कहां तक दौड़ लगावेगा? अब जिन्होंने समय सार की जैसी रचना की है उन तीनों के नाम कहता हूँ।

अथ—ऋषियों के नाम। सवैया ३१ सा।

कुन्दकुन्दाचारिज प्रथम गाथा वद्ध करि,
समयसार नाटक विचारि नाम दयौ है।
ताहिकी परंपरा अमृतचंद भये तिन्हि,
संस्कृत कलश सम्हारि सुख लयौ है॥

प्रगटी बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब,
किए हैं कवित्त हिये बोधि बीज बयो है
सबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव,
नाटक अनादि यो अनादिको भयो है८

अर्थ—इसे पहिले कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राकृत गाथा छन्द मे रचा और समयसार नाम रक्खा। उन्हींकी कृतिपर उन्हींके आम्नायी स्वामी अमृतचन्द्रसूरिने संस्कृतमें कलशा रचकर प्रसन्न हुए। पश्चात् श्रीमाल जाति में पण्डित बनारसीदास जी श्रावक धर्म प्रतिपालक हुये उन्होंने कवित्त रचना करके हृदय में ज्ञान का बीज बोया। यों तो शब्द अनादि है, उसका पदार्थ अनादि है, और अनादि है, नाटक अनादि है, इसलिये नाटक समयसार अनादिकाल से ही है॥ ८॥

अथ—कवि व्यवस्था कथन। चौपाई।

अब कछु कहो जथारथ बानी,
सुकवि कुकविकी कथा कहानी।
सुकवि कहावै सोई,

परमारथ रस वरनै जोई ॥ ६ ॥

कलपित वात हिये नहि आने,

गुरुपरपरा रीति वखाने ।

सत्यारथ सैली नहि छाडै,

मृषावादसों प्रीति न माडै ॥ १० ॥

अर्थ—अब सुकवि कुकवि की थाडीसी नास्तविक चरचा करता हूं । जो परमारथ रस का वर्नन करत हैं, मनमें कपोल कल्पना नहीं करते और ऋषि परम्परा के अनुसार कथन करत हैं । सत्यारथ मार्गको नहीं छोडते और असत्य कथन से प्रीति नहीं जोडते ॥ ६ १० ॥

अथ-सुकवि कथन । दोहरा ।

छद सवद अच्छर अरथ, कहैं सिद्धात प्रमान ।
जो यह विधि रचना रचै,सो है सुकवि सुजान

अर्थ—जा छद शब्द, अक्षर, अर्थकी रचना सिद्धात के अनुसार करते ह वे ज्ञानी सुकवि ह ॥ ११ ॥

अथ-कुकवि कथन । चौपाई ।

अन सुनु कुकवि कहों है जैसा,

अपराधी हिय अंध अनेसा ।
मृषाभाव रसवरनै हित सौं,
नई उकति उपराजै चितसौं ॥ १२ ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आने,
परमारथ पद भेद न जाने ।
वानी जीव एक करि बूझै,
जाको चित जड ग्रन्थ न सूझै १३

अर्थ—अब जैसा कुकवि होता है सो कहता हूं, उसे सुनो ! वह पापी हृदयका अन्धा हठ ग्राही होता है । उसके मनमें जो नई कल्पनाएं उठती हैं उनका और मासांसिक रसका वर्णन बड प्रेमसे करता है । वह मोक्ष-मार्गका मर्म नहीं जानता और मनमें ख्याति लाभ पूजा आदिकी चाह रखता है, वह वचनको आत्मा जानता है, हृदयका मूर्ख होता है, उसे शास्त्रज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ-वानी व्यवस्था कथन । चौपाई ।

वानी लीन भयो जग डोले,
वानी ममता त्यागि न

है अनादि वानी जगमांहीं,
कुकवि ज्ञान यहु समुझै नाहीं ॥१४॥

अर्थ— वह वचन में लीन होकर संसार म भटकता है, वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता। संसार म वचन अनादिकालका है यह तरह कुकवि लोग नहीं समझते ॥ १४ ॥

अथ—वानी व्यवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

जैसे काहू देसमें सलिल-धारा कारजाकी,
नदी सो निकसि फिरि नदीमें समानी है।
नगरमे ठौर ठौर फैलि रही चिहूँ ओर,
जाकै ढिग वहै सोई कहै मेरो पानी है॥
तैसे घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म,
वदन वदन में अनादिही की वानी है।
करम किलोल सों उसासकी बयारि बाजै,
तासों कहै मेरी धुनि ऐसो मूढ प्रानी है

अर्थ—जिम प्रकार किसी स्थान में पानी की धारा

शाखारूप होकर नदी से निकलती है और फिर उसी नदी में मिल जाती है सो जिसके मकान के पास होकर बहती है वही कहता है कि, यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदय रूप घर है और घरमें अनादि ब्रह्म है और प्रत्येकके मुख में अनादि-काल का वचन है, कि कर्म की लहरों से उच्छ्वास रूप हवा बहती है इससे मूर्ख जीव उसे अपनी ध्वनि कहते हैं ॥ १५ ॥

दोहा ।

जैसे मूढ़ कुकवि कुधी गहे मृषा मग दौर ।
रहे मगन अभिमानमें, कहे औरको और १६
वस्तु स्वरूप लखै नहीं, वाहिज दृष्टि प्रवांन ।
मृषा विलास विलोकिकै, करै मृषा गुण गाण

अर्थ—इस प्रकार मिथ्या दृष्टि कुकवि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमानसे मस्त होकर अन्यथा कथन करते हैं, व पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, बाह्य दृष्टिमें असत्य परिणति देखकर झूठा वर्णन करते हैं ॥१६॥१७॥

अथ—मृषागुनगान । सवैया ३१ सा ।

"की गरथि कुच कंचन कलश

है अनादि वानी जगमाहीं,
कुकवि ज्ञान यहु समुझै नांहीं ॥१४।

अर्थ— वह वचन में लीन होकर संसार में भटकता है, वचन की ममता छोडकर कथन नहीं करता। संसार में वचन अनादिकालका है यह तरह कुकवि लोग नहीं समझते ॥ १४ ॥

अथ—वानी व्यवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

जैसें काहू देसमे सलिल-धारा कारजाकी,
नदी सों निकसि फिरि नदीमें समानी है।
नगरमे ठौर ठौर फैलि रही चिहूँ ओर,
जाकै ढिग वहे सोई कहै मेरो पानी है॥
तेसें घट सदन सदनमे अनादि ब्रह्म,
वदन वदन मे अनादिही की वानी है।
करम किलोल सों उसासकी वयारि वाजै,
तासो कहै मेरी धुनि ऐसो मूढ मानी है

अर्थ—जिस प्रकार किसी स्थान में पानी की धारा

शाखारूप होकर नदी से निकलती है और फिर उसी नदी में मिल जाती है सो जिसके मकान के पास होकर बहती है वही कहता है कि, यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदय रूप घर है और घरमें अनादि ब्रह्म है और प्रत्येकके मुख में अनादि-काल का वचन है, कि कर्म की लहरों से उच्छ्वास रूप बना रहती है इससे मूर्ख जीव उसे अपनी ध्वनि कहते हैं॥ १५॥

दोहा।

जैसे मूढ कुकवि कुधी गहे मृषा मग दौर।
रहै मगन अभिमानमे कहे औरकी और १६
वस्तु स्वरूप लखै नहीं बाहिज दृष्टि प्रवान।
मृषा विलास विलोकिके करै मृषा गुण गान

अर्थ—इस प्रकार मिथ्या दृष्टि कुरुचि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमानमे मस्त होकर अन्यथा कथन करते है, वे पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, बाह्य दृष्टि असत्य परिणति देखकर झूठा वर्णन करते हैं ॥१६॥१७॥

अथ—मृषागुनगान। सवैया ३१ सा।

मामकी गरथि कुच कंचन कलश कहै,

कहे मुख चंद जो सलेपमाको घर है ।
हाडके दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
मासके अधर ओठ कहे बिंबफल है ।
हाड दंड भुजा कहैं कौलनाल काम धुजा,
हाडही के थंभा जंघा कहे रंभातरु है ॥
योंही झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि,
येतेपर कहे हमे सारदाको वरु है ॥१८॥

अर्थ—कुकवि मांस के पिण्ड रूप कुचों को सुवर्णघट कहते हैं। कफ खकार आदि के घर रूप मुखको चन्द्रमा कहते हैं। हड्डीके दांतो को हीरा मोती कहते हैं, हाडके दण्डों रूप भुजाओं को कमलकी डंडी अथवा कामदेवकी पताका कहते हैं, हड्डी के खम्भे रूप जांघों को केले के वृक्ष कहते हैं ये इस प्रकार झूठी झूठी युक्तियां गढ़ते हैं, कि हमें सरस्वती का वरदान है॥ १८ ॥

चौपाई ।

मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी,

मिथ्या तिनकी भाषित बाना।
मिथ्यामती सुकवि जो होई,
वचन प्रमान करै मन माहीं ॥ १८ ॥

अर्थ—जो प्राणी मिथ्यादृष्टि और कुकवि हैं, उनका कहा हुआ वचन असत्य होता है, परन्तु जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न तो नहीं होते पर शास्त्रोक्त कविता करते हैं, उनका वचन श्रद्धान करने योग्य होता है ॥ १८ ॥

दोहरा।

वचन प्रमान करै सुकवि, पुरुष हिये परमान।
दोऊ अंग प्रमान जो, सो है सहज सुजान ॥

अर्थ—जिनकी वाणी शास्त्रोक्त होती है और हृदय में तत्त्व श्रद्धान होता है, उनका मन और वचन दोनों प्रामाणिक हैं और वे ही सुकवि हैं ॥ १९ ॥

अथ—समयसार नाटक की व्यवस्था कहते हैं।

अब यह बात कहूँ है जैसें,
नाटक भाषा भयौ सु ऐसें।
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता

अमृतचन्द टीकाके करता ॥ २१ ॥

अर्थ—अब यह बात कहता हूँ कि नाटक समयसार की काव्य रचना किसप्रकार हुई है। इसग्रंथके मूलकर्त्ता कुन्दकुन्द स्वामी और टीकाकार अमृत चंदसूरि हैं ॥ २१ ॥

। चौपाई ।

समयसार नाटक सुख दानी,
टीकासहित संस्कृत बांनी।
पण्डित पढ़ैं सुदिढ़ मति बूझैं,
अलपमती कों अरथ न सूझैं ॥२२॥

अर्थ—समयसार नाटकी सुखदायक संस्कृत टीका पण्डित लोग पढ़ते और विशेष ज्ञानी समझते हैं, परन्तु अल्प बुद्धि जीवों की समझ में नहीं आ सकती है ॥२२॥

चौपाई।

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी,
समयसार नाटकके मर्मी।
तिन्हि ग्रंथकी टीका कीनी,
बालबोध सुगम कर दीनी ॥ २३ ॥

इहि विधि बोध-वचनिका फैली,
समौ पाइ अध्यातम सैली ।
प्रगटी जगत माहि जिनवानी,
घर घर नाटक कथा बखानी ॥२४॥

अर्थ—जैनधर्मी पांडे राजमल जी नाटक समैसार के ज्ञाता ने इस ग्रंथ की बालबोध सहज टीका की। इस प्रकार समय पाकर इस आध्यात्मिक विद्या की भाषा वचनिका विस्तृत हुई। जगत में जिनवानी का प्रचार हुआ और घर घर नाटक की चर्चा होने लगी ॥ २३–२४ ॥

चौपाई।

नगर आगरे माहि विख्याता,
कारन पाइ हुये बहु ज्ञाता ।
पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने,
निशि दिन ज्ञानकथा रस भीने २५

अर्थ–प्रसिद्ध शहर आगरे में निमित्त मिलने पर इसके बहुत से जानकार हुए, उनमें पांच मनुष्य अत्यन्त कुशल ... रात ज्ञानचर्चा में लवलीन रहते थे ॥

दोहरा ।

रूपचन्द पडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगौतीदास नर, कौंरपाल गुनधाम २६
धर्मदास ये पच जन, मिलि बैठहिं इक ठौर ।
परमारथ चर्चा करैं, इन्हिकै कथा न और २७

अर्थ—पहल पण्डित रूपचन्द जी, दूसरे पण्डित चतुर्भुज जी, तीसरे पण्डित भगौतीदास जी, । चौथे पण्डित कुंवर पाल जी, और पाचवें पण्डित धर्मदासजी । य पाचों सज्जन मिलकर एक स्थान में बैठते तथा मोक्ष मार्गकी चर्चा करते थे और दूसरी वार्ता नही करते थे ।

दोहरा ।

कबहो सरस कथा सुनहि, कबहो और सिद्धंत
कबहों बिंग बनाइकै, करै बोध विरतंत॥२८॥

अर्थ—ये कभी नाटक का रहस्य सुनते, कभी और शास्त्र सुनते और कभी तर्क खडी करकेज्ञान चर्चा करते थे

अथ—मित्र कथा । दोहरा ।

चितचकोर अर धरमधर, सुमति भगोतीदास ।

चतुरनाव थिरता भये, रूपचंद परगास ॥२६॥

अर्थ—कुंवरपाल जी का चित्त कारा कोमल था, धर्मदास जी धर्म के धारक थे, भगौतीदास जी सुमतिवान थे, चतुर्भुज जी के भाव स्थिर थे, और रूपचन्द जी का प्रकाश चन्द्रमा के समान था ॥ २६ ॥

दोहरा।

इहि विधि ज्ञान प्रगट भयौ, नगर आगरे माहि,
देश देश महि विस्तरौ, मृषादेश महि नाहि३०

अर्थ—इहि प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान आगरा नगरमें प्रगट भयो अरु वहाते देश देशमें—अन्य देशनिमें नगरनिमें फैलो। मृषा देश धर्म शून्य, अधार्मिक देशनिमें नहीं फैलो।

चौपाई।

जहा तहा जिनवानी फैली,
लखै न सो जाकी मति मैली।
जाके सहज बोध उतपाता,
सो ततकाल लखै यह बाता ३१॥

—जहा तहा जिनवाणी का

जिसकी बुद्धि मलीन है वह नहीं समझ सका। जिसके चित्त में स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह इसका रहस्य तुरन्त समझ जाता है ॥ ३१ ॥

दोहरा।

घट घट अंतर जिन वसै, घट घट अंतर जैन
मति मदराके पानसों, मतवाला समुझै न ३२

अर्थ—प्रत्येक हृदय में जिनराज और जैन धर्म का निवास है परन्तु मतपक्ष रूपी शराब के पी लेने से मतवाले लोग नहीं समझते ॥ ३२ ॥

चौपाई।

बहुत बढाऊ कहांलो कीजै,
कारिजरूप बात कहि लीजै।
नगर आगरे माहि विख्याता,
बानारसी नाम लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥
तामें कविता कला चतुराई,
कृपा करहि ए पांचो भाई।
पंच प्रपंच रहित हिय खोलै

ते बनारसी सो हमि बोले ॥ ३४ ॥

अर्थ—अधिक महिमा कहा तक कहें, मुद्दे की बात यह कह देना उचित है। प्रसिद्ध शहर आगरे में बनारसी नामक स्वल्पज्ञानी हुए, उनमें काव्यकौशल था और ऊपर कहे हुए पांचों भाई उन पर कृपा रखते थे, उन्होंने निष्कपट होकर सरलचित्तसे ह सकर कहा ॥ ३३ ३४ ॥

चौपाई।

नाटक समयसार हित जीका,
सुगमरूप राजमली टीका।
कवितबद्ध रचना जो होई।
भाषा ग्रंथ पढ़ै सब कोई ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीवका कल्याण करनेवाला नाटक समयसार है। उसकी राजमलजी रचित सरलटीका है। भाषामें छंद-बद्ध रचा जावे तो इस ग्रंथको सब पढ़ सकते, हैं ॥ ३५ ॥

चौपाई।

तब बनारसी मनमहि आनी,
कीजे तो प्रगटै जिन वानी

पच पुरुषकी आज्ञा लीनी,
कवितबद्ध रचना तब कीनी ॥ ३६ ॥

अर्थ—तब बनारसीदासजी ने मनमें सोचा, कि यदि इसकी कवितामें रचना करूं। तो जिनवाणीका बड़ा प्रसार होगा। उन्होंने उन पाचो सज्जनोंकी आज्ञा ली और कविता-बद्ध रचना की ॥ ३६ ॥

चौपाई।

सोरह सौ तिरानवा वीतैं,
आसो मास सित पच्छ वितीते।
तिथि तेरसि रविवार प्रवीना,
ता दिन ग्रंथ समापत कीना ॥३७॥

अर्थ—विक्रमसम्वत् सोलहसौ तेरानवे, आश्विनमास, शुक्ल पक्ष, तेरस तिथि, रविवारके दिन यह ग्रंथ समाप्त किया ॥ ३७ ॥

दोहरा।

सुख निधान सक बध नर,साहिब साह किरान।
सहस साह सिर-मुकुटसम, शाहजहा सुलतान ।

अर्थ—उस समय हजारों बादशाहों में प्रधान महा प्रतापी और सुखदायक मुसलमान बादशाह शाहजहाँ था।

दोहा।

जाके राज सुचैनसों, कीन्हों आगम सार।
ईति भीति व्यापी नहीं, यह उनका उपगार है।

अर्थ—उनके राज्यमें आनन्दसे इस ग्रन्थकी रचना की और कोई भय उपद्रव नहीं हुआ, यह उनका उपकार है।

अथ—सब पद्योंकी सख्याकथन। इकतीसा।

तीनसौ दशोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ,
युगलसै पैतालीस इकतीसा आने हैं।
छियासी चौपाई, सैंतीस तेईसा सवैया,
बीस छप्पै अठारह कवित्त बखाने हैं।।
सात पुनही अडिल्ल चारि कुंडलिए मिलि,
सकल सातसै सत्ताइस ठीक ठाने हैं।
बतीस अच्छर के सिलोक कीने, ताके लिखे
...हसै मान अधिक कहे हैं

अर्थ—३१० सोरठा और दोहे, २४५ इकतीसे सवैये, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २० छप्पय, १८ कवित्त (घनाचरी) ७ अडिल्ल, ४ कुंडलिए, ऐसे ये सब मिलकर ७२७ सातसौ सत्ताईस नाटक समयसारके पद्योंकी संख्या है। ३२ अक्षरके श्लोकके प्रमाणसे ग्रंथ संख्या १७०० है ॥ ४० ॥

दोहरा।

समयसार आतम दरब, नाटक भाव अनंत।
सोहै आगम नाम में,परमारथ विरतंत ॥ ४१ ॥

अर्थ—सब द्रव्योंमें आत्मद्रव्य प्रधान है और नाटकके भाव अनंत हैं, सो उसका आगममें सत्यार्थ कथन है ४१

सवैया ३१ सा।

पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हे,
सत्रहसौ बीतै परिवानु आवरस मे।
आसू मास आदि धौसू सम्पूरन ग्रंथ कीन्हा,
वारतिक करिकैं उदार वार ससिमें ॥
जो पै यहु भाषा ग्रंथ सबद सुबोध याको.

ताहू विनु सम्प्रदाय नावें तत्र वसमें ।
यातें ज्ञानलाभ जानि स तनिको वैन मानि,
वातरूप ग्रन्थ लिख्या महाशांत रसमें

अर्थ—विक्रम संवत् १७०० सत्रहसौ, आसोज वदी पड़िवा, सोमवार के दिन यह भाषा छन्द मय सुबोध ग्रंथ लिखकर पूर्ण कियो है। मोसों अनेक सज्जननिनें आज्ञा करी हुती उनकी आज्ञा मानि मनें यह ग्रंथ लिख्यौ है ४९

दोहा

देशी भाषाको कह्यो, अरथ विपर्यय कीन ।
ताको मिच्छा दुक्कडू, सिद्ध साख हम दीन ४२

अर्थ—देशी भाषा मय समयसार कों करते यदि कहू प्रमादतें अर्थ की विपरीतता भई होइ तो हम सिद्ध भगवान की साखिसों तिसकी शुद्धता के अर्थि मिच्छा मे दुक्कड प्रतिक्रमण करों हों ॥ ४२ ॥

इति श्री समयसार नाटक सिद्धांत समाप्त

प्रशस्ति ।

नंदनन्दि नागेंदुवत्सरे विक्रमस्य च, पापसितेतर ५चमी तिथौ, धरणीसुतवासरे, श्री शुद्धदन्तीपत्तने श्रीमवि विनयसिंहास्यसुराज्ये, वृहत् खरतरगणे निखिलशास्त्रौघ- पारगामिनो महीयासः श्रीक्षेमकीर्तिशाखोद्भवाः पाठकोत्तम- पाठकाः श्रीमद्रूपचन्द्रजिद्गणयस्तच्छिष्य प० विद्याशील- मुनेस्तच्छिष्यो गनसारमुनिः समयसारनाटकग्रन्थं लिखितम् ।

श्रीमद्गवड़ीपुराधीश-प्रसादाद्वाचक भूयात् पाठकानां श्रोतृणां ज्ञातायां शश्वत् । श्रीरस्तु ।

— सवैया ३१ ।

खरतरगच्छनाथ विद्यमान भट्टारक, जिनभक्तिसूरिजूके धर्मराजधुरमें । खेमशाख मांझि जिनहर्षजू वैरागी, कवि शिष्य सुखवद्धन शिरोमणि सुधरमें । ताके शिष्य दयासिंघ गणि गुणवंत भरे, धर्म आचारज निरत्यात श्रुतधरमें । ताका परसाद पाइ रूपचन्द आनन्द सों, पुस्तक बनायौ यहु सोनगिरिपुरमें ॥ १ ॥ ये मोदी थापि महाराज जाको सन्मान दीनो, फतेचन्द पृथ्वीराज पुत्र नथमलके । फतेचंद जूके पुत्र जसरूप जगन्नाथ, गोत गणचुर मैं धरैया शुभ

बालके ॥ तामें जगन्नाथ जूके बूझवे के हेतु हम, व्यौरिके सुगम कीन्हे बचन दयाल के । बाचत पढ़त अब आनन्द सदा एकरो संग ताराचन्द अरु रूपचन्द बालके ॥२॥





